प्रवचन-क्रम

पहला प्रवचन

मन दर्पण कहलाय

जीवन-सत्य के संबंध में थोड़ी सी बातें न केवल हम विचार करेंगे, बल्कि कैसे सत्य के जीवन में प्रवेश किया जाए, कैसे हम स्वयं छलांग लगा सकते हैं और सत्य का स्वाद ले सकते हैं, इस संबंध में प्रयोग भी करेंगे। बात का तो कोई बहुत मूल्य नहीं है, विचारों की कोई बहुत कीमत नहीं है, क्योंकि विचार मनुष्य के सारे प्राणों को न तो छूते हैं और न समस्त प्राणों को डुबाने में समर्थ हैं। जीवन में जो भी अर्थपूर्ण है, उसे पूरे प्राणों से अनुभव करने की तैयारी करनी पड़ती है। जैसे हम किसी को प्रेम करते हैं तो बुद्धि भी डूब जाती है, हृदय भी। देह भी डूब जाती है, श्वास भी डूब जाती है। सारा प्राण और सारा व्यक्तित्व प्राण में डूब जाता है और प्रेम का अनुभव होता है।

ऐसे ही जीवन की अनुभूति भी, यदि हमारा पूरा व्यक्तित्व डूब जाए, तो ही हो सकती है। जो लोग केवल विचार करते हैं, वे अत्यंत क्षुद्र से अंश का जीवन का प्रयोग करते हैं, वह सत्य का कोई अनलिखा हुआ नहीं है। इन तीन दिनों में जो विचार भी हम करेंगे वह भी केवल इसलिए, ताकि हम छलांग ले सकें। वह सीढ़ी की भांति होगा, जिस पर से आगे निकल जाना है और कूद जाना है। जैसे पानी में छलांग लेने के लिए कोई किसी पत्थर पर खड़ा होता है, ऐसे हम इन तीन दिनों में विचार करेंगे। लेकिन विचार कोई आधार नहीं है, उससे कूद जाना है और छलांग ले लेनी है। जो रुक जाता है वह बात को नहीं समझ पाया है, तो विचार हम करेंगे वह इसलिए ताकि छोड़ा जा सके और निर्विचार में कूदा जा सके। और इसलिए मैं स्वागत करता हूं, क्योंकि अगर थोड़े से लोग भी संसार में इस बात के लिए उत्सुक हो जाएं कि उन्हें जीवन के अर्थ को और रहस्य को जानना है, तो यह सारी जमीन एक और ही तरह की संस्कृति का निर्माण कर सकती है। इधर इन तीन दिनों में मैं क्या आपसे कहूंगा, वह तो आने वाले दिनों में बात होगी, आज तो कुछ थोड़ी सी बात और कहनी है। सबसे पहले तो यह एक छोटी सी कहानी आपसे कहूं, शायद वही आधार बन जाएगी और तीन दिन हम उसकी विस्तार से चर्चा कर सकेंगे।

दो राजकुमार, जब वे युवा थे, एक ही गुरुकुल में पढ़े। फिर पढ़ने के बाद विदा हो गए। दीक्षांत हुआ और गुरु से विदा लेकर वे अलग-अलग रास्तों पर चले गए। और बाद में--वर्षों के बाद एक तो बड़ा राजा हो गया और एक के पास जो था, उसको भी छोड़ कर भिखारी हो गया। वह भिखारी वर्षों बाद, घूमता हुआ राजा की राजधानी में आया, राजा के महल में ठहरा। राजा ने उससे पूछाः तुम दूर-दूर के देशों से घूम कर आए हो, मेरे लिए क्या लाए हो? मित्र थे वे पुराने, बचपन से गहरा उनका प्रेम था और यह पूछना बिल्कुल स्वाभाविक था। उस मित्र ने, जो कि संन्यासी था और भिखारी था, उसने कहाः मैंने बहुत सोचा कि मैं क्या ले चलूं तुम्हारे लिए, लेकिन जो भी मैं सोचता था, पाता था, वह तो तुम्हारे पास होगा ही। ऐसा क्या है जो तुम्हारे पास न हो? तो मैं बहुत सोचता था, बहुत दुकानों पर गया, बहुत सी चीजें देखीं, लेकिन जो भी सोचता था, सोचता था, यह तो तुम्हारे पास होगा। तो जो तुम्हारे पास होगा उसे भेंट में ले भी गया तो क्या अर्थ है? फिर बहुत सोचा, बहुत खोजा, मुझे कुछ समझ नहीं पड़ा। आखिर एक छोटी सी चीज खरीद लाया हूं, जो कि तुम्हारे पास नहीं होगी। उसने अपनी झोली से वह चीज निकाली और उस राजा को भेंट की।

आप भी कल्पना नहीं कर सकते कि वह चीज क्या रही होगी, क्योंकि राजा बड़ा था, उसके पास सब कुछ था। और एक भिखारी उसको क्या भेंट दे सकता है! ऐसे रास्ते में मैं भी सोचने लगा कि आपको क्या भेंट दूंगा? इन तीन दिनों में कौन सी बात आपको दूं? सभी कुछ आपके पास होगा और मैं क्या आपको दे सकता हूं? फिर मुझे वह कहानी खयाल आ गई और मुझे लगा, मैं भी वही आपको भेंट दे दूं, जो उस भिखारी ने उस राजा को भेंट दिया था।

शायद ही आपको खयाल में आए, कभी किसी के खयाल में नहीं आ सकता कि उसने क्या भेंट दिया। उसने बड़ी छोटी चीज भेंट दी थी। बहुत ही छोटी सी चीज थी, उसका कोई मूल्य भी नहीं था--वैसे उसका बड़ा मूल्य है। और कई बार ऐसा होता है कि जिन चीजों का कोई मूल्य नहीं होता है जीवन में, उनका ही असल मूल्य होता है। और जो बहुत मूल्यवान चीजें होती हैं, अंत में पाया जाता है, उनका कोई भी मूल्य नहीं था। मैंने व्यर्थ ही उनके बोझ को ढोया।

उसने दिया था एक छोटा सा दर्पण। और राजा से कहा था कि इसे रख लो, इसमें कभी-कभी अपना चेहरा देख लिया करो। अजीब सी बात थी।

मैं भी इन तीन दिनों में दर्पण ही आपको देना चाहता हूं, जिसमें आप अपना चेहरा देख सकें। और इससे बड़ी कोई बात नहीं है कि अपना चेहरा दिखाई पड़ जाए। बहुत कम लोग हैं, जो अपने को देख पाते हैं। दुनिया में सब कुछ देख लेना आसान है, अपने को देखना बहुत कठिन है। और ऐसा दर्पण बहुत थोड़े लोगों को उपलब्ध हो पाता है, जिसमें वे अपनी प्रतिछवि देख सकें और अपने को पहचान सकें। उस फकीर ने दिया था एक दर्पण कि इसे अपने पास रख लो, इसमें अपने को देख लेना। ऐसा ही दर्पण मैं भी इन तीन दिनों में आपको देना चाहता हूं, जिसमें आप अपने को देख सकें।

एक दर्पण तो वह होता है, जो बाजार में मिलता है, खरीदते हैं और देख लेते हैं। लेकिन, जो दर्पण मैं देना चाहता हूं, वह खरीदा नहीं जा सकता। खरीदा जा सकता होता तो कभी के लोग उसे खरीद लेते। किसी से चुराया भी नहीं जा सकता। और मैं भी आपको दे दूं, तो भी आप उसमें अपना चेहरा तब तक नहीं देख सकते, जब तक कि आप उस दर्पण को खुद बनाने की कोशिश न करें; क्योंकि मेरा दिया हुआ दर्पण पत्थर की तरह होगा, उसमें कोई आपकी झलक नहीं बनेगी, और उसे दर्पण समझ कर अगर आप देखते रहे तो आपको अपने चेहरे का कोई भी पता नहीं चलेगा।

बहुत से शास्त्र इसी तरह के दर्पण हैं, जिनमें हम झांकते हैं और कुछ भी पता नहीं चलता है। अगर उस पत्थर को ही आप ढोते रहे तो उसके वजन के नीचे दब जाएंगे। आपको प्रेम करने वाले लोगों ने बहुत से दर्पण आपको इस तरह दिए हैं--महावीर ने, बुद्ध ने, क्राइस्ट ने। वे आपको प्रेम करते थे, इसलिए दर्पण दिए। लेकिन उनके देने से ही दर्पण दर्पण नहीं होता। आपके लिए पत्थर है। उसको आप ढोते रहे हजारों साल से। और आदमी इस तरह बहुत से प्रेमियों द्वारा दिए गए दर्पणों के पत्थरों से दबते-दबते मर गया है। उसके प्राणों पर बहुत भार है, उससे छुटकारा होना कठिन हो गया है। तो मैं भी आपको दर्पण दे दूं, वह आपके लिए पत्थर होगा। वह दर्पण तभी बन सकता है, जब उसके साथ श्रम करें और मेहनत करें, और उसे निखारें और चमकाएं, उसे साफ करें तो वह दर्पण बन सकता है। मैं दर्पण दूंगा, आपके हाथ में जाने से पत्थर हो जाएगा। क्योंकि यह दर्पण कोई किसी को दे नहीं सकता, जिसमें खुद को देखा जा सके। देने वाले का प्रेम है कि वह आपको दे देगा, लेकिन आप तक पहुंचेगा नहीं। आपके हाथ में पत्थर ही पहुंचेगा।

उस राजा को भी उस फकीर ने दर्पण दिया और उसने देखा। उसने कहा, इसमें तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता। मैं भी आपको दूंगा। आप भी कहेंगे, इसमें कुछ दिखाई नहीं पड़ता। उसमें दिखाई पड़ नहीं सकता। उसमें दिखाई पड़ने के लिए उस दर्पण को बहुत निखारना है, बहुत साफ करना पड़ेगा। और वह आपके अतिरिक्त कोई भी नहीं कर सकता है। कोई तीर्थंकर, कोई अवतार, कोई ईश्वर, कोई गुरु, कोई भी नहीं कर सकता है। और अगर उन पर भरोसा रखा तो हाथ में पत्थर ही रहेगा, और खुद को जानना असंभव हो जाएगा। उस दर्पण को तो दिया जा सकता है, लेकिन उसको दर्पण बनाना बड़ी कठिन बात है। उसके लिए कुछ करना पड़ेगा। उसकी हम चर्चा करेंगे कि कैसे उस दर्पण को साफ किया जा सकता है।

एक और छोटी कहानी कहूं। आज तो सिर्फ दो-तीन कहानी भर कहने का मन है। और उनके साथ कहूंगा कि आप सो जाएं। थोड़ा सोचेंगे, विचारेंगे और उन कहानियों को मन में लेकर सो जाएंगे। हो सकता है वे कहानियां आपके भीतर सपना बन जाएं। हो सकता है, वे रात भर आपके साथ रहें, सुबह जब आप उठें तब वे कहानियां फिर आपके मन में ताजी हो जाएं और फिर मैं तीन दिन धीरे-धीरे उनको फैलाऊंगा और उनकी बात करूंगा। एक और कहानी हैः

एक सम्राट के दरबार में दो बड़े कलाकार आए और उन दोनों ने यह दावा किया कि मुझसे श्रेष्ठ कलाकार इस समय पृथ्वी पर और कोई नहीं है। दोनों का यह दावा था। तो राजा ने कहा कि हम क्या करें? तो जरूर हमें निर्णय करना है कि कौन श्रेष्ठ है, क्योंकि उसे हम कलागुरु के पद पर नियुक्त करना चाहते हैं। लेकिन कौन श्रेष्ठ है, कैसे निर्णय हो? उन दोनों ने कहाः हम अपनी कलाकृतियां बनाएं और निर्णय हो जाए। राजा ने कहा कि ठीक है। समय दिया गया वर्ष भर का। पहले कलाकार ने बहुत से रंग मांगे, तूलिकाएं मांगीं, बहुत से काम करने वाले कारीगर मांगे। दूसरे से पूछा गया, दूसरे ने कहा कि नहीं, कुछ कला हमारी ऐसी है कि न उसमें रंग की जरूरत होती है, न तूलिका की जरूरत होती है। अजीब बात थी। ऐसी कोई कला नहीं होती जिसमें रंग की और तूलिका की जरूरत न हो और चित्र बन जाएं।

पहला कलाकार पर्दे बांध कर एक दीवाल पर चित्र बनाने में लग गया। दूसरे कलाकार ने भी पर्दे बांध दिए, लेकिन भीतर वह क्या करता था, यह कभी किसी को पता नहीं चल पाया, क्योंकि न तो वह रंग ले गया, न रोगन ले गया, न तूलिका ले गया, न कभी कुछ सामान ले गया। क्या करता था भीतर, किसी को कुछ पता नहीं। वर्ष पूरा हुआ, राजा देखने आया। पहले कलाकार ने दीवाल पर एक अदभुत चित्र को उभारा था। वह अदभुत था। वैसा चित्र राजा ने पहले कभी देखा नहीं था। वह दंग रह गया। उसने बड़े धन्यवाद दिए। उसने दूसरे चित्रकार से कहाः तुम्हारा चित्र भी देखना चाहता हूं। और तुम्हारे संबंध में तो बड़ी-बड़ी अफवाहें उड़ रही हैं कि तुम क्या करते हो पर्दे के भीतर। तुम न कुछ ले जाते हो, न तुम कुछ लाते हो। तुम वहां क्या करते हो? दूसरे ने भी अपना पर्दा हटा दिया। सारे लोग दंग रह गए। सम्राट तो और दंग रह गया। वही चित्र जो पहले कलाकार ने बनाया था, उससे भी सुंदर चित्र इस दीवाल पर था। चित्र तो नहीं बनाया गया था, दीवाल घिस-घिस कर चिकनी की गई थी और दर्पण बना दी थी। दीवाल पूरी की पूरी दर्पण कर दी थी। पहली दीवाल का चित्र उसमें प्रतिबिंबित हो रहा था--उस दर्पण में। पहला चित्र तो चित्र ही था। यह प्रतिबिंब बहुत गहरा था, और इसने एक अलौकिक शोभा और रहस्य और एक मिस्ट्री ग्रहण कर ली थी। उस कलाकार ने कहाः हम तो सिर्फ दर्पण बनाना जानते हैं।

दर्पण कुछ अदभुत बात है। और जो मनुष्य दर्पण बनाना जान लेता है, इस जगत में कोई रहस्य नहीं है जो उस दर्पण में प्रतिबिंबित न हो जाए। और जो मनुष्य दर्पण बनाना जान लेता है, परमात्मा कहीं भी छिपा

हो, उस दर्पण में प्रतिबिंबित हो जाएगा। और जो मनुष्य दर्पण बनाना जान लेता है, वही केवल स्वयं को और सत्य को जानने में समर्थ हो सकता है।

तो दर्पण तो मैं आपको दूंगा, दर्पण बनाने की बात भी आपसे करूंगा। बनाना आप पर निर्भर है, वह किसी और पर निर्भर नहीं है। यह तो तीन दिन के लिए मैंने भूमिका की बात कही कि क्या हम यहां करेंगे। यह मन कैसे दर्पण बन जाए? यह मन कैसे पत्थर से दर्पण बन जाए? यह कैसे निर्मल हो जाए--स्वच्छ, कि प्रतिबिंबित कर सके सब, जो चारों तरफ है उसे। यह कैसे इतना शांत हो जाए कि चारों तरफ जो है, वह उसके भीतर प्रतिफलित होने लगे, रिफ्लेक्ट होने लगे--इसकी हम बात करेंगे।

उसकी तैयारी के लिए कुछ दो चार छोटी-छोटी बातें हैं, जो मैं आपसे कहूं। शिविर में साधना के लिए आए हैं तो कुछ खयाल मन में लेकर आए होंगे। साधना बड़ी डराने वाली बात है और डराने वाला शब्द है। बड़ी गंभीर, सीरियस! लेकिन मैं देखता हूं कि जीवन में सत्य को वे ही लोग जान सकते हैं जो न तो छिछले हों, और न बहुत गंभीर हों। जो लोग बहुत गंभीर होते हैं वे भी सत्य को नहीं जान पाते और जो छिछले होते हैं वे भी सत्य को नहीं जान पाते। दोनों के बीच में एक सम-स्थिति चाहिए मन की, जब न तो हम बहुत छिछले हैं और न बहुत गंभीर हैं, न तो हम बहुत क्षुद्र में संलग्न हैं और न तो हम बहुत सीरियस होकर बैठ गए हैं निराश और मुंह लटका कर। जीवन में जो भी जाना जा सकता है वह अत्यंत समता में, अत्यंत मध्य में, बहुत बीच में जाना जाता है।

तो न तो मैं यह कहूंगा, यहां तीन दिन आप बहुत गंभीर रहेंगे, क्योंकि गंभीरता कुछ बीमारी की बात है। वह अच्छा लक्षण नहीं है। और जिन देशों में भी धार्मिक लोग बहुत गंभीर हो जाते हैं, उन देशों में जीवन धीरे-धीरे सूख जाता है, रसहीन हो जाता है। इस देश में ऐसा दुर्भाग्य हुआ है, इस मुल्क में। धर्म ने अति गंभीरता ओढ़ ली, उसके कारण जीवन का सारा सौंदर्य, सारा रस, जीवन का सारा आनंद क्षीण हो गया है। उसके मैं पक्ष में नहीं हूं। रोते हुए संत मुझे संत नहीं मालूम होते हैं। जीवन एक सरलता और प्रफुल्लता से भरा होना चाहिए।

तो इन तीन दिनों में आप बहुत गंभीर नहीं होंगे। उसका यह अर्थ नहीं है कि आप बैठ कर अखबारों की चर्चा करेंगे, ताश खेलेंगे और फिल्मों की चर्चा करेंगे और रेडियो सुनेंगे, यह भी अर्थ नहीं है। यह दूसरी रोग की स्थिति है। दो तरह के रोग हैं--एक छिछलेपन का रोग है, एक गंभीरता का रोग है। इन दोनों रोगों से जो बचता है, उसके जीवन में एक समता आनी शुरू होती है।

अभी मैं ट्रेन में था तो आप सबकी बातें सुनता रहा। मेरे डिब्बे में भी बहुत लोग थे, उनकी बातें सुनता रहा। सामने के डिब्बे में भी लोग थे, दर्पण से उनकी भी शक्लें दिखाई पड़ती थीं, उनकी बातों का भी अंदाज लगता था। स्टेशन पर था, प्लेटफार्म पर था, वहां भी आप बातें कर रहे थे।

क्या बातें हम कर रहे हैं? शायद ही हमने कभी यह सोचा हो कि यह क्या बातें हम कर रहे हैं? इनके करने का कोई अर्थ है? इनके करने से कोई प्रयोजन है? इनके करने से कोई लक्ष्य है? इनको करके हम क्या पाना चाहते हैं और क्या होना चाहते हैं, या कि बस हम कर रहे हैं! हम कोई पागल हैं जो बिना बातें किए नहीं रह सकते हैं, तो हम बात कर रहे हैं! जो आदमी मौन रहने में असमर्थ है, उसे जानना चाहिए कि उसके भीतर कुछ न कुछ पागलपन है। जो आदमी बिना बात किए रहने में असमर्थ है, जानना चाहिए, उसके भीतर कोई रोग है। सारी दुनिया बात कर रही है। सुबह से शाम तक बात कर रही है। कौन सी बातें हैं? शायद हमने कभी खयाल भी न किया हो कि कौन सी बातें कर रहे हैं!

इन तीन दिनों में थोड़ा खयाल करना जरूरी है कि हम व्यर्थ की बातें न करें; क्योंकि जो मन बहुत व्यर्थ की बातें करता है, वह मन बहुत सार्थक चिंतन नहीं कर सकता। जो मन व्यर्थ की बातें करता है वह सार्थक चिंतन कैसे कर सकेगा? असंभव है यह, क्योंकि वही तो मन है। और जो क्षुद्र-क्षुद्र बातों में लगा है, वह कैसे सार्थक को खोज पाएगा? जरूरी है कि सार्थक की तरफ हमारी उड़ान हो और पहले हम क्षुद्र से थोड़ा अपने को मुक्त करें। और यह मुक्त होना कोई कठिन बात नहीं है, केवल एक यांत्रिक आदत बन गई है, जिसका हमें कोई पता नहीं है। हम बस किए जा रहे हैं, हमें कोई बोध नहीं है कि हम कर रहे हैं। तीन दिनों में इसका थोड़ा स्मरण रखना जरूरी है। और जैसे ही खयाल आ जाएगा, वैसे ही आप पाएंगे कि वहीं बात टूट जाएगी। अपने पर भी कृपा करें, और दूसरे पर भी; क्योंकि बात करने का रोग व्यक्तिगत नहीं है। अगर आप अकेले में कर रहे हों तब भी ठीक है, आप दूसरे के साथ कर रहे हैं, दूसरे को भी नुकसान पहुंचा रहे हैं।

कुछ बीमारियां होती हैं, जो अकेले झेली जाती हैं, कुछ बीमारियां ऐसी होती हैं, जो सामूहिक प्रचारित होती हैं। बातचीत ऐसा ही रोग है, जिसके लिए समूह चाहिए। आप कर रहे हैं, दूसरे के साथ कर रहे हैं। वह खुद ही पागल हालत में है, वह खुद ही दिमाग में काफी बातें भरे हुए है, आप और बढ़ाए दे रहे हैं उनकी। किसी पड़ोसी के पास जाकर अपनी बातें वे भी निकालेंगे, पड़ोसी किसी और पर निकालेगा। ऐसे बीमारियां फैलती चली जाती हैं। एक-दूसरे पर हम निकालते चले जाते हैं। सुबह से उठ कर अखबार पढ़ लेते हैं, फिर वही अखबार हम बोलने लगते हैं दूसरों से। दूसरे तीसरों से बोलने लगते हैं। और सारी दुनिया में इस तरह एक बहुत ही क्षुद्र पर हमारा चिंतन और विचार चलता है। इस तल को थोड़ा सा सचेत होकर तोड़ देना आवश्यक है, तो भीतर प्रवेश हो सकता है। यह कोई बहुत ज्यादा कोशिश करने की बात नहीं है, सिर्फ होश आना काफी है कि यह मैं क्या कर रहा हूं।

विचार के लिए बात के लिए, थोड़ा सोच कर तीन दिन देख कर चलेंगे कि मैं यह कौन सी बातें कर रहा हूं! अगर मैं न करूं तो कोई हर्ज है? अब तक मैंने इन बातों को किया है, कुछ मिला है? कोई अर्थ हुआ है? केवल मैं खबर दे रहा हूं कि मैं फिजूल आदमी हूं, इसलिए फिजूल की बातें कर रहा हूं। जितना आदमी के भीतर सार्थकता का अनुभव होने लगेगा, उतना उसकी फिजूल की बातें झड़ने लगेंगी, गिरने लगेंगी। तो थोड़ा इसका बोध होना चाहिए।

दूसरी बात--जब हम उन्हीं-उन्हीं बातों को करते रहेंगे, जिनको आप अपने घर करते रहे थे, यहां भी करते रहेंगे, तो आपको खयाल होगा कि आप माथेरान आए; आप माथेरान नहीं आए, क्योंकि आपका जो मन है वह करीब-करीब उन्हीं घेरों में और उन्हीं दायरों में घूम रहा है, जिन पर कहीं और घूमता था। आप वहीं हैं। आपके शरीर को माथेरान आने से कोई फायदा नहीं है। आपका मन यहां आ जाए तो फायदा है, तो फर्क है।

आपका मन यहां कैसे आएगा, अगर आपके एसोसिएशंस मन के वहीं लगे रहे? अगर आपकी आदतें वही करती रहीं जो आप घर पर करते थे, तो आप करीब-करीब वही बने रहेंगे। आप कहीं भी जाएं, आप वहीं रहेंगे, क्योंकि आपका मन वही काम करता रहेगा जो वहां करता था। थोड़ा सा उस संबंध को शिथिल करना, तोड़ देना जरूरी है, तो ही आप यहां आए, नहीं तो नहीं आए।

तो मैं निवेदन करता हूं--ऐसे तो आप आ गए हैं, इन तीन दिनों में अगर सच में ही यहां माथेरान आ जाएं, तो बड़ी कृपा होगी। और उस आने के लिए जरूरी है कि मन का जो घेरा आप घर से लेकर आए हैं वह थोड़ा तोड़ दें। और हमारा मन बड़े यंत्र की तरह काम करता है।

मेरे एक बड़े मित्र हैं, एक बड़े वकील हैं। उन्होंने मुझे बताया कि उनको आदत थी कि जब वे अदालत में खड़े होते थे और कोई ऐसा आर्ग्युमेंट का मौका आ जाता, कोई ऐसी दलील का मौका आ जाता, जो बहुत कठिन पड़ती, तो जैसे कुछ लोग सिर खुजलाने लगते हैं, वैसे ही वे अपने कोट का ऊपर का बटन घुमाने लगते। वह उनकी जिंदगी भर की आदत थी। जब भी उनको कोई कठिन मामला आ जाता तो वे कोट का बटन घुमाने लगते। और घुमाने से उनके भीतर चिंतन गतिमान हो जाता था। उनके विरोध में कोई वकील था, जो कई दफा उनसे हार चुका था। वह इसे देखता रहा था, इसे अध्ययन करता रहा था। उसने एक दिन उनके ड्राइवर को मिला कर अदालत में आने के पहले उनके कोट का पहला बटन तुड़वा दिया। वे अपना कोट हाथ पर रखकर अदालत में चले गए। उन्होंने ओढ़ा। तब तक उन्हें खयाल भी नहीं आया, जब तक कि मौका नहीं आया। जब ठीक मौका आया और कोई उनको बात कहनी थी, जिसके लिए वे उलझ गए। वे जल्दी से कोट के बटन पर हाथ ले गए, लेकिन बटन नहीं था। वह जिंदगी में पहला मुकदमा हार गए। उनका मस्तिष्क एकदम से ठप्प हो गया। एक एसोसिएशन था, एक संबंध था उस बटन से। बटन का क्या संबंध था मस्तिष्क से? लेकिन रोज की एक आदत थी। वह आदत--जैसे ही स्पर्श करते थे बटन को, उनका मस्तिष्क काम करने लगता था।

ऐसी हमारी रोज की आदतें हैं, जिनसे हमारा मस्तिष्क काम करता है। इन आदतों को जो नहीं पहचानता है, वह मस्तिष्क को बदल नहीं सकता है। रोज की हमारी आदतें हैं। मैं लोगों को जानता हूं, दिन-रात सुबह से सांझ तक न मालूम मुझे कितने लोगों से मिलना पड़ता है। दो वर्ष पहले जो आदमी आया था, दो वर्ष बाद आता है, मैं पाता हूं कि वह वही बातें कर रहा है जो दो वर्ष पहले उसने मुझसे की थीं। वही बातें। कल आया था तब भी उसने वे ही बातें की थीं, दो महीने पहले आया था तब भी उसने वही बातें की थीं, दो वर्ष पहले आया था तब भी उसने वे ही बातें की थीं। अब तो मैं करीब-करीब आदमी के आने के पहले जान जाता हूं कि यह आदमी क्या बातें करेगा। वह तो वही बातें करेगा जो उसने की हैं। और उसे इसका कोई पता नहीं है कि मैं वर्षों से वही बातें कर रहा हूं, वही बातें दोहरा रहा हूं जिनका कोई अर्थ नहीं है। आप खुद ही विचार करेंगे तो आपको पता चलेगा। कल आपने यही बातें की थीं, परसों आपने यही बातें की थीं, पहले भी यही की थीं। आप यह कर क्या रहे हैं? आप कोई कोल्हू के बैल हैं जो एक ही चक्कर में घूम रहे हैं? आप तोड़िएगा इस आदत को या नही? जीवन की गति सीधी रेखाओं में होती है, गोल चक्करों में नहीं। और जो गोल चक्करों में घूमता है, वह नष्ट होता है।

इन तीन दिनों में गोल चक्कर में न घूम कर थोड़ी सीधी गति करने की कोशिश करें। थोड़ी सी आदतें जिनके घेरे में हम बंद हैं और जिनके आस-पास हम घूमते रहते हैं, उनको थोड़ा तोड़ें और जागें और देखें कि कहां गड़बड़ है! अगर तीन दिनों में थोड़ी सी भी सजगता का प्रयोग किया, तो आपको भी दिखाई पड़ेगा कि आप भी एक गोल घेरे में बंधे हुए हैं, घूम रहे हैं। तो आप पहुंचिएगा कहां? जो गोल-गोल चलता है, वह कहीं भी नहीं पहुंच सकता है। पहुंचने के लिए सीधी गति चाहिए और पहुंचने के लिए गोल घेरों से बचना आवश्यक है। लेकिन मन आदतें बना लेता है, और उनमें घूमता रहता है। बस उसको आदत का मौका मिला, वह शुरू कर देता है। तो इस पर थोड़ा सा तीन दिनों में खयाल रखें कि बंधी हुई आदतों के घेरे में न घूमें। जो हमारी कंटीन्युटी है मन के भीतर, जो एक लगातार क्रम है, वह टूटना चाहिए, तो ही तो जीवन में कुछ नया हो सकता है।

सत्य है अज्ञात, अभी आपको सत्य का कोई पता नहीं हैं, तो उस अज्ञात सत्य को जानने के लिए आपका जो ज्ञात घेरा है मन का, वह टूटना चाहिए, नहीं तो नहीं जान सकते हैं। जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह है

अज्ञात, वह है अननोन। तो जो नोन है, जो जाना हुआ है, उससे काम नहीं चलेगा। उस जाने हुए रास्ते को कहीं न कहीं छोड़ कर अनजान रास्तों पर प्रवेश करना पड़ेगा। लेकिन मन डरता है। परिचित रास्तों पर चलने में तो आसानी मालूम होती है, क्योंकि वे परिचित हैं। अपरिचित रास्ते पर मन भयभीत होता है। लेकिन जिसे सत्य को जानना हो, परमात्मा को, या प्रेम को, सौंदर्य को, उसे तो अपरिचित रास्ते खोजने होंगे। इतना साहस जिसमें नहीं है, साधना उसका रास्ता नहीं हो सकती।

तो थोड़ा सा परिचित घेरा तोड़ना पड़ेगा। जिन फिल्म अभिनेताओं की आपने कल तक बातें कीं और जिन राजनेताओं की... और इन दोनों में कोई बेहतर और बुरा नहीं है, करीब-करीब एक से हैं। चाहे वे राजनेता हों और चाहे वे अभिनेता हों। और अगर चुनाव ही करना हो तो राजनेताओं से अभिनेता बेहतर। उनकी चर्चा बेहतर--दुनिया में अभी कोई बड़ा खतरा नहीं हुआ है, कोई बड़ा युद्ध नहीं हुआ, कोई बड़ी परेशानी नहीं हुई। लेकिन राजनेता हैं और अभिनेता हैं, उन्हीं के आस-पास हमारा सारा सोचना है। जैसे पुरानी कहानियां हुआ करती थीं--एक था राजा और एक थी रानी, ऐसे ही आजकल के अखबार हैं, उसमें एक हैं इंदिरा जी और एक हैं नंदा जी और कथा चल रही है। और उसी कथा को आप दोहरा रहे हैं और रोज-रोज दोहरा रहे हैं। कोई नंदा जी, इंदिरा जी से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है, सिर्फ तुक मिल गई, इसलिए मैंने बात कही। और तुक का तो बड़ा महत्व है। अगर ठीक से तुक मिलाना सीख जाएं तो राष्ट्रकवि तक हो सकते हैं। लेकिन उसके लिए दिल्ली रहना जरूरी है। उसके लिए और कहीं रहिएगा तो काम नहीं हो सकता। इसलिए मैंने कहा, सिर्फ तुक मिल गई, मुझे कुछ मतलब नहीं है उनसे, कोई भी हों।

लेकिन हमारा दिमाग, बस ये घेरे हैं हमारे दिमाग के। इनके घेरों में हम चलते हैं और फिर हम सोचना चाहते हैं, मोक्ष क्या है? फिर हम पूछना चाहते हैं सत्य क्या है? फिर हम पूछना चाहते हैं जीवन क्या है? आत्मा क्या है? पूछना चाहते हैं, मृत्यु होती है या नहीं? इतने महानतर जीवन की समस्याओं पर इतने क्षुद्र अखबारी मन को ले जाकर चलने का रास्ता नहीं है कोई। इतने महानतर जीवन के, गंभीरतर जीवन के रहस्यपूर्ण मार्गों पर चलने के लिए मस्तिष्क की तैयारी चाहिए। तैयारी तो बहुत क्षुद्र है। इस तैयारी को तोड़ने की जरूरत है।

तीन दिनों में कृपा करें, अखबार से थोड़ा बचें। इस संसार को इस समय जो सबसे बड़ी बीमारियां पकड़े हुए हैं, उनमें से अखबार एक है। उससे थोड़ा बचें। राजनेता और अभिनेताओं को तीन दिनों के लिए विदा दें। थोड़ा मन को, कुछ और गहरे जीवन के मार्ग हैं, उन तक ले जाने के लिए थोड़ा उनसे छुटकारा लें। और कुछ गहरे मार्ग क्या हैं, उनकी तो मैं बात करूंगा। उनको कैसे पहचानें उनकी तरफ कैसे जाएं?

अगर इस क्षुद्र से उलझे रहते हैं तो फिर आपके लिए कोई मार्ग नहीं है, कोई रास्ता नहीं है। उसमें कोई कुछ भी नहीं कर सकता। इधर इन तीन दिनों में इसका थोड़ा विचार करेंगे--खुद का भी, औरों का भी। क्या बात करते हैं, उसका विचार करेंगे।

चौथी बात--जहां तक बन सके इन तीन दिनों में, ज्यादा से ज्यादा चुप और एकांत खोजेंगे। जब हम मिलेंगे तब तो एकांत नहीं होगा, हम सबकी भीड़ होगी यहां। लेकिन जो खाली समय होंगे, उनको ज्यादा महत्वपूर्ण समझेंगे, मिलने के समय की बजाय। आमतौर से आपको यही खयाल होगा कि शिविर में वही समय महत्वपूर्ण है जब हम मिलेंगे। सुबह जैसे अभी जटू भाई ने खबर दी आपको--सुबह घंटे भर मिलेंगे, दोपहर मिलेंगे, रात मिलेंगे। नहीं, वह समय ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है। उस वक्त तो भीड़-भाड़ होगी। उस वक्त तो मैं कुछ बातचीत कहूंगा, आप सुनेंगे। वह बहुत महत्वपूर्ण समय नहीं है। जो महत्वपूर्ण समय है वह खाली गैप बीच

के, जब हम नहीं मिलेंगे। उस वक्त आप क्या करिएगा? और उस वक्त जो आप करिएगा, उसी पर निर्भर होगा कि जब आप मिलेंगे तो आप क्या करिएगा, नहीं तो फर्क नहीं पड़ेगा। अगर उस वक्त आप कुछ गड़बड़ करते हैं, तो जब मिलेंगे, उस वक्त कुछ ठीक हो नहीं सकता। उस वक्त आप क्या करिएगा? वह समय महत्वपूर्ण है। वही महत्वपूर्ण है। वह जो खाली वक्त होगा, उस वक्त थोड़ा एकांत खोजिए। मित्रों से थोड़ा बचिए, मित्रों से थोड़ा सावधान रहिए। दुनिया में शत्रु उतना नुकसान नहीं करते हैं, जितना मित्र करते हैं। क्योंकि शत्रु तो दूर-दूर रहते हैं, मित्र बिल्कुल पास-पास रहते हैं; मित्र भीड़ बनाते हैं; और भीड़ खतरनाक है।

तो थोड़ा मित्रों से सावधान रहिए, और यहां कृपा करके मित्रता को विदा कर दीजिए। यहां आप अकेले हैं, ऐसा मानकर तीन दिन रहिए। कोई यहां मित्र नहीं है आपका। यहां तो पहाड़ियां हैं, वे आपकी मित्र हों तो अच्छा। दरख्त हैं, वे आपके मित्र हों तो अच्छा। चांद है, तारे हैं, झील है, ये आपके मित्र हों, तो अच्छा। यहां चले जाइए। थोड़ा इनसे मैत्री बनाइए। उनके सूत्र तो मैं कहूंगा कि कैसे इनसे मैत्री बन सकती है।

जो आदमी केवल मनुष्यों से मैत्री जानता है, उस आदमी ने अभी जीवन की बहुत गहरी बातें नहीं जानीं। जिसने दरख्तों से भी मैत्री बनाई है, वह कुछ रहस्य जान गया है। जिसने पत्थरों से भी दोस्ती की है, वह कुछ बड़ी गहरी बातों को उपलब्ध कर जाएगा। जो चांद-तारों से थोड़ी देर निकट बैठा है, उसके प्राणों में कुछ स्पंदित हो जाएगा। मनुष्य से मैत्री कोई महत्वपूर्ण बात नहीं है। और मैं यह भी आपसे निवेदन कर दूं कि जो दरख्तों से मैत्री कर लेता है और पशुओं से, फूलों से और तारों से, वही केवल मनुष्य से भी मैत्री कर सकता है, क्योंकि जो अभी पत्थरों से मैत्री करने में असमर्थ है, वह मनुष्य से मैत्री करने में कैसे समर्थ हो सकता है? मनुष्य तो पत्थर से बहुत गहरा है, दरख्त से बहुत गहरा है, चांद-तारों से बहुत गहरा है। तो जो अभी चांद-तारों से, पौधों से भी परिचित नहीं हो पाया, वह मनुष्य से कैसे परिचित हो पाएगा? एक स्त्री के साथ उसे पत्नी मान कर जिंदगी भर रह लेना एक बात है, उससे परिचित होना बहुत कठिन है। एक पति के साथ जिंदगी भर रह लेना एक बात है, उससे परिचित होना बहुत कठिन है। परिचित होना बहुत कठिन है, क्योंकि परिचित होने का हमें कोई मार्ग ही नहीं मालूम है।

तो यहां तो कृपा करके मनुष्यों से थोड़ा कम दोस्ती रखें और यह चारों तरफ जो प्रकृति फैली है, इससे थोड़ी ज्यादा। क्योंकि परमात्मा अगर कहीं है और मिल सकता है, तो प्रकृति के रास्ते के सिवाय और कहीं नहीं मिल सकता है। द्वार अगर कहीं है, तो यह चारों तरफ फैला हुआ है। यह जो फैलाव है, इसमें है। इसमें उसकी झलक है कहीं। यह जो सन्नाटा है चारों तरफ--जैसे कोई छोटा सा पक्षी आवाज दे रहा है। रात के एकांत में बैठ कर इसको सुनना। मेरी बात सुनने से वह ज्यादा महत्वपूर्ण है। यह जो सन्नाटा चारों तरफ घिरा हुआ है, यह जो पक्षी चिल्ला रहा है, अगर आधा घंटा इसकी आवाज भर को सुना, आपके प्राण कंपित हो जाएंगे, आप दूसरे व्यक्ति हो जाएंगे। लेकिन आप मेरी बात को महत्वपूर्ण समझेंगे और इसकी आवाज को नहीं। और मैं आपसे फिर पुनः-पुनः निवेदन करता हूं कि मैं कुछ भी नहीं कह रहा हूं, उसमें कोई मूल्य नहीं है। अगर इसे आप सुनने में समर्थ हो जाएं और आधा घंटे शांति से सिर्फ सुनते रहें, आप पाएंगे, आपके भीतर एक ट्रांसफार्मेशन हो रहा है। सन्नाटा जो बाहर है, वह भीतर भी आने लगेगा। धीरे-धीरे बाहर-भीतर दोनों तरफ सन्नाटा हो जाएगा और आप अनुपस्थित हो जाओगे, एब्सेंट हो जाओगे। आप वहां नहीं होंगे। उस घड़ी में कुछ होगा, जो अदभुत है; जो अलौकिक है।

तो यहां इन तीन दिनों में, जो खाली वक्त होगा, मित्रों के साथ न बिता करके अकेले में और एकांत में बिताने की कोशिश करना। तो ही जब हम मिलेंगे, तब कुछ बात हो सकेगी, कुछ समझ हो सकेगी और काम हो

सकेगा। ज्यादा बातें मुझे नहीं कहनी हैं। खूब ज्यादा से ज्यादा सोना। कम सोना बुरा होता है साधक के लिए। पूरा सोना जरूरी है। भोजन थोड़ा कम, नींद गहरी और भोजन थोड़ा कम, साधक के लिए सहयोगी होता है। तो भोजन थोड़ा कम लेना, नींद थोड़ी गहरी लेना। लोगों से थोड़ा बचना, अकेले में जाना। और एकांत जितना ज्यादा तीन दिनों में मिल सके, उतना उसे अनुभव करना। और बाकी जो बातें मुझे कहनी हैं, वह कहूंगा। उन बातों पर विचार, चिंतन, लेकिन दूसरों से बातचीत नहीं; उन बातों पर भी दूसरों से बातचीत नहीं। उन बातों पर भी अपना ही निर्णय, अपना ही विचार व्यक्तिगत।

अक्सर यह होता है--मैंने जो कहा, आप गए और चार लोगों से उसके संबंध में बात करने लगे। वह चार मिल कर, मैंने जो आपसे कहा, आपके मस्तिष्क में इतना मचा देंगे कि फिर आपको कुछ भी खयाल न रहेगा कि मैंने आपसे क्या कहा। तो किसी की मत सुनना। मेरी बात सुनी है, उसे मानने की बिल्कुल जरूरत नहीं। अकेले में बैठ कर उस पर खुद ही सोचना। मनुष्य अगर अकेले में बैठ कर अपनी बुद्धि पर विचार करे और विश्वास करे अपनी बुद्धि पर और चिंतन करे, तो बहुत सरलता से, बहुत स्पष्ट सत्यों पर पहुंच सकता है। लेकिन वह दूसरों से पूछता है। जिस क्षण वह दूसरों से पूछता है और विचार लेता है, उसी क्षण वह कनफ्यूजन में पड़ने की तैयारी करने लगता है।

तो इन पर सोचना, विचार करना अकेले में, मानने की कोई भी जरूरत नही है। लेकिन दूसरों से उन पर विचार और विवाद करने से कोई अर्थ नहीं।

ये थोड़ी सी बातें मुझे कहनी थीं। और बाकी इनके आधार पर आपको जो ठीक लगे, वह आप सोच लेंगे। और छोटी-छोटी और बहुत सी बातें कहने की कोई जरूरत नहीं है। अंततः इतना ही कहता हूं, आप यहां अकेले हैं, तीन दिन इस बात को स्मरण रखें। यहां और कोई नहीं है आपके अलावा। आप बिल्कुल अकेले हैं यहां। और सच तो यही है कि हम सारे लोग बिल्कुल अकेले हैं। हमारे अलावा शायद कोई भी नहीं है। लेकिन अकेलेपन से डरने की वजह से हम मित्रों को पकड़े हुए हैं और सोचते हैं, यह भी है और यह भी है। कोई नहीं है, शायद हम अकेले हैं। शायद अकेले होना ही सच है हमारा। लेकिन हम भीड़ बनाए हैं और समाज बनाए हैं ताकि अकेले होने से डर न लगे। किसी का कंधा पकड़े हैं, किसी का हाथ। किसी को प्रेम कर रहे हैं, किसी को मित्र, किसी को पत्नी, किसी को पति कह रहे हैं और इकट्ठा किए हुए हैं कि मुझे यह पता न चले कि मैं अकेला हूं। लेकिन स्मरण रखें, बिल्कुल अकेले हैं आप। और बिल्कुल अकेले आप जीते हैं और बिल्कुल अकेले आपको मरना पड़ेगा।

इसको सूत्र मान कर चलें कि जब मृत्यु में आप अकेले हो ही जाने वाले हैं, तो यह असंभव है कि जीवन में आप किसी के साथ रहे हों। साथ रहे होते तो मौत में साथ होता। मौत अकेला कर देती है। तो बहुत स्पष्ट है यह बात कि जीवन में भी आप अकेले रहे होंगे। साथ होने का केवल भ्रम था। जो व्यक्ति अकेले होने की सचाई को थोड़ा अनुभव करता है और जीता है, धीरे-धीरे वह इस बात को पहचान लेता है कि वह बिल्कुल अकेला है। और इस अकेलेपन की पहचान ही उसे क्रमशः मृत्यु में मरने पर जो अनुभव होता है, उस अनुभव में जीवित ही ले जाती है। जीते जी ही वह मौत में प्रविष्ट हो जाता है अकेला होकर। और जो व्यक्ति जीते जी मौत को जान लेता है, उसके लिए मौत मिट जाती है। वह अमृत के अनुभव को उपलब्ध हो जाता है।

बस, और ज्यादा मुझे नहीं कहना है। ये ही थोड़ी सी बातें हैं।

आज रात तो सो जाएं, क्योंकि सब अब सोने की स्थिति में हैं। यह मैंने कहा भी था कि अब सब सोने की तैयारी में हैं, तब उनसे मैं जागने की बातें कहूंगा तो गड़बड़ होगा, लेकिन वे माने नहीं। उन्होंने कहा, चाहे कोई सोने की तैयारी में हो, चाहे कुछ हो, आप कहें। अब जो मैं कह रहा हूं, वे सब जागने की बातें हैं, और सोने का

वक्त है, और करीब-करीब सब सो ही गए हैं। तो अब सो ही जाएं। और सुबह जब जागें, तब मैंने जो कहा है, उस पर थोड़ा सा विचार करें।

मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना है, और इन तीन दिनों के लिए इतने दूर से आकर इकट्ठे हुए हैं, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद करता हूं।

बहुत लोग मेरे पैर छू लेते हैं, उसी वक्त मेरा मन होता है, मैं भी उनके पैर छुऊं, क्योंकि इसके सिवाय कोई और उत्तर नहीं हो सकता है। लेकिन इतने-इतने लोगों के अलग-अलग पैर छूना कठिन होगा, शायद वे मुझे छूने भी न दें, इसलिए मैं इकट्ठे सबके पैर छू लेता हूं। सबके पैरों में मेरे प्रणाम स्वीकार करें। सबके भीतर जो परमात्मा बैठा है, वही किसी दिन जागे, इसकी कामना करता हूं।

दूसरा प्रवचन

ज्ञान का घना अँधेरा

मेरे प्रिय आत्मन्!

मैंने आपको कहा, एक दर्पण मैं आपको भेंट करना चाहता हूं। लेकिन फिर मुझे याद आया कि उसमें तो थोड़ी भूल हो गई है। दर्पण तो आपके पास ही है, लेकिन उस पर बहुत धूल जमी हुई है। उस धूल को ही अलग किया जा सके तो दर्पण कहीं और से पाने की कोई जरूरत नहीं है और धूल कुछ ऐसी है, जिसे अलग कर देना बड़ी आसान बात है, कठिन नहीं।

सुना होगा आपने, सत्य को या आत्मा को या मोक्ष को पा लेना बहुत कठिन है। निश्चित ही, अगर सरल से सरल बात भी गलत ढंग से की जाए, तो कठिन हो जाती है। हम यदि सूरज के पास पहुंचना चाहते हों और पीठ करके चलते हों, तो पहुंचना कठिन हो जाएगा। लेकिन वह कठिनाई, जहां हम जाना चाहते हैं, उस लक्ष्य में नहीं, बल्कि हमारे गलत चलने में है। मनुष्य-जाति में बहुत थोड़े से लोग मोक्ष के आंनद को उपलब्ध हुए हैं। इसलिए नहीं कि मोक्ष बहुत दुरूह है, बल्कि इसलिए कि मनुष्य-जाति ने कुछ गलत रास्ता मोक्ष की तरफ चलने का पकड़ा हुआ है। जिन रास्तों से हम पहुंचना चाहते हैं, वे ही रास्ते हमारे लिए बाधाएं हैं। और जो सीढ़ियां हमने सोची हैं कि हमें आनंद की तरफ ले जाएंगी, वे ही हमें दुख के नरक में उतार देती हैं। और इसलिए सारी कठिनाई हो गई है।

यह कठिनाई जीवन के आनंद को, आत्मा को, या मोक्ष को पाने की नहीं है; हमारी समझ में, हमारे विचार में, हमारे संस्कार में कुछ आधारभूत भूलें हैं, इसलिए यह कठिनाई है। जैसे मैं निरंतर कहता हूं कि अगर कोई व्यक्ति अंधेरे को मिटाने की कोशिश में लग जाए, तो अंधेरे को मिटाना कठिन हो जाता है--कठिन क्या, असंभव हो जाता है। लेकिन अगर कोई दीया जलाए तो अंधेरे को मिटाने से ज्यादा सरल बात इस जमीन पर दूसरी नहीं है। लेकिन अगर हम मिटाने में लग जाएं तो हम मिट जाएंगे, अंधेरा नहीं मिट सकता है। तो शायद हम कहेंगे कि अंधेरे को मिटाना बहुत कठिन बात है। लेकिन अंधेरे को मिटाना बहुत सरल बात है। रास्ता अंधेरे को मिटाने का नहीं है, बल्कि दीये को जलाने का है।

ठीक वैसे ही दर्पण तो हमारे पास है, जिसमें हम आत्मा की छवि को देख सकें, लेकिन बहुत धूल इकट्ठी है। और मैं देखता हूं, वह धूल हमने ही इकट्ठी की हुई है। और वे लोग, जो आत्मा का दर्शन करना चाहते हैं, ज्यादा धूल इकट्ठी कर लिए हैं उन लोगों की बजाय, जिन्हें आत्मा की कोई फिक्र और चिंता नहीं है। यह और भी आश्चर्यजनक है। जो लोग आत्मा की तरफ बिल्कुल उत्सुक नहीं हैं, उनके दर्पण भी इतने धूल से भरे हुए नहीं हैं, जितने उन लोगों के हैं, जिनको हम धार्मिक कहते हैं, जो धर्म में उत्सुक हैं और आत्मा की तरफ चलना चाहते हैं।

एक व्यक्ति, अभी मैं एक गांव में था, वहां आए और उन्होंने मुझसे कहा कि कौन सी कमी है? मैं तो चौबीस घंटे परमात्मा को स्मरण कर रहा हूं। एक श्वास बिना उसके स्मरण के नहीं जाने देता। नींद तक धीरे-धीरे मेरी नष्ट हो गई है। मैं रात को उसका ही नाम जपता रहता हूं। चौबीस घंटे, खा रहा हूं, पी रहा हूं, उसका नाम जप रहा हूं। सो रहा हूं तो उसका नाम जप रहा हूं। सब धंधा छोड़ दिया जीवन का। बस एक ही धंधा बना रखा है, ईश्वर के स्मरण का। फिर भी क्या बात है? रोता हूं, चिल्लाता हूं, पुकारता हूं, लेकिन कोई सुनाई नहीं।

यह जो आदमी है, उनको मैंने कहा, आप जो कर रहे हैं, उसी के कारण परमात्मा से दूर हो गए हैं। कोई राम-राम का नाम चौबीस घंटे जपता रहे, तो इससे पागल हो जाएगा, मुक्त वह थोड़े ही है! बल्कि सच तो यह है कि अगर वह पागल न हो तो चौबीस घंटे राम का नाम जप भी नहीं सकता है। वह पहले से ही पागल रहा होगा। विक्षिप्त मन का यह लक्षण है कि वह कुछ थोड़ी सी चीजों को पकड़ कर उनको दोहराता रहता है। पागल मन कुछ थोड़ी सी चीजों को पकड़ कर दोहराता रहता है। रिपीटिशन जो है, वह पागल के मन की बुनियादी बात है।

तो जो आदमी राम-राम, राम-राम जप रहा हो, वह आदमी परमात्मा को तो उपलब्ध नहीं होगा, बल्कि इस बात की खबर दे रहा है कि उसके मस्तिष्क में कोई बुनियादी खराबी हो गई है। क्योंकि जो मस्तिष्क स्वस्थ है, शांत है, वह दोहराता नहीं है। और दोहराने से कोई प्रयोजन भी नहीं है। और जितना ज्यादा दोहराया जाएगा, उतना मस्तिष्क जड़ हो जाएगा। रिपीटिशन जड़ता लाता है। किसी भी एक चीज को पकड़ कर आप दोहराते जाएं तो मस्तिष्क जड़ हो जाएगा। उसकी चेतना कम हो जाएगी। परमात्मा को पाने के लिए चेतना बढ़नी चाहिए, और राम-राम जप कर चेतना कम कर रहे हैं। तो फिर परमात्मा को पाना कठिन हो जाएगा। लेकिन सारी दुनिया को यह सिखाया गया है कि भगवान का नाम जपेंगे तो भगवान के पास पहुंच जाएंगे। और तब अगर भगवान के पास पहुंचना कठिन हो जाता हो, तो इसमें कोई भगवान का कसूर नहीं है।

ठीक और बहुत सी बातें हैं और यह सब मन के ऊपर धूल की तरह इकट्ठी होती चली जा रही हैं। जिस आदमी को सत्य को पाना है, उसके मन की स्थिति नॉनटेंस होनी चाहिए। उसके मन की स्थिति बिल्कुल शांत, तनावरहित होनी चाहिए। लेकिन जो लोग परमात्मा में, या धर्म में उत्सुक होते हैं, उनके मन बहुत टेंस, बहुत तनाव से भर जाते हैं। साधारण जनों से भी वे ज्यादा तनावग्रस्त हो जाते हैं।

एक आदमी धन की खोज में है, वह भी तनावग्रस्त होता है, क्योंकि धन पाना है। एक आदमी यश पाने की खोज में है, वह भी तनाव में होता है, क्योंकि यश पाना है। एक आदमी को मोक्ष पाना है, वह भी तनाव में होता है। धन और यश को पाने की जिसकी खोज है, उसका तनाव बहुत ज्यादा नहीं होता है, क्योंकि धन और यश दोनों दिखाई पड़ते हैं, पार्थिव हैं, दूसरे लोगों के पास अनुभव होते हैं, पाए जा सकते हैं। लेकिन जिसको मोक्ष पाना है, उसका तनाव बहुत गहरा हो जाता है--बिल्कुल अदृश्य, बिल्कुल अज्ञात, जिसका कोई पता नहीं हैं।

ऐसी किसी चीज को पाने में लगा हुआ आदमी बहुत तनाव से भर जाता है। और उसके भीतर यह शंका भी मन में बनी रहती है कि कहीं मैं जीवन को व्यर्थ तो नहीं खो रहा हूं? मुझसे बड़े से बड़े साधुओं ने, निपट एकांत में यह पूछा है कि हमें यह डर और शंका आती है कि हमने कहीं भूल तो नहीं की? कहीं हमने यह गलती तो नहीं कर दी है? सारी दुनिया जो कर रही है, शायद कहीं वही तो ठीक नहीं है? यह मोक्ष है भी? यह आत्मा का अनुभव जैसी कोई चीज भी है? या हम किसी भ्रम में पड़ गए हैं, किसी इलुजन में? तो ऐसी खोज वाले आदमी का मन और भी तनाव से भर जाता है, और भी टेंस हो जाता है। और जबकि सत्य को जानने के लिए मन बिल्कुल शांत और सब तरह के तनाव से मुक्त चाहिए।

संन्यासी बहुत तनावग्रस्त हो जाता है, क्योंकि आप जो खोज रहे हैं वह तो बहुत आसान है। वह जो खोज रहा है, एक तो उसे पक्का पता नहीं कि वह है भी? ऐसा दूसरे लोग कहते हैं कि वह है। फिर वह जो खोज रहा है वह उसकी सारी प्रकृति के विरोध में है, सारी प्रकृति को दबा रहा है। अपने सेक्स को दबा रहा है, अपने क्रोध को दबा रहा है। अपने अहंकार को दबा रहा है, इन सबको दबा रहा है। और एक अदृश्य की खोज में जा रहा है,

जिसका उसे कोई पता नहीं है। भीतर से धक्के लग रहे हैं कि प्रकृति उसको तोड़ देना चाहती है और उधर उसे मोक्ष पाने की आकांक्षा खींचती है। इन सबके बीच वह अत्यंत तनाव से ग्रस्त हो जाता है। और मन जितना तनाव से भर जाए, उतना सत्य को जानने में असमर्थ हो जाता है।

सत्य को जानने की पहली शर्त तो यह कि मन में कोई तनाव, कोई बेचैनी, कोई अशांति, कोई अधैर्य न हो। मन ऐसा शांत हो जैसे कभी-कभी कोई झील हो जाती है, जब हवाएं नहीं होती हैं, या दरख्त हो जाते हैं, जब हवाएं नहीं होती हैं, पत्तों में सन्नाटा छा जाता है, कोई दीये की ज्योति हो जाती है--हवाएं नहीं होती हैं, और ज्योति ठहर जाती है और उसमें कोई कंपन नहीं होते हैं। ऐसी मन की कोई स्थिति में सत्य जाना जाता है। लेकिन जिसका मन दौड़ रहा है, भाग रहा है कुछ पाने के लिए, वह शांत कैसे होगा? मोक्ष जो पाना चाहता है, उसको मोक्ष मिलना असंभव है। जो कुछ भी पाना नहीं चाहता, वह मोक्ष को उपलब्ध हो जाता है। क्योंकि पाने की दौड़ एक तनाव है। शांति जो पाना चाहता है, उसे नहीं मिल सकती। जो कुछ भी नहीं पाना चाहता है, वह शांत हो जाता है। हम सब शांति चाहते हैं, सत्य चाहते हैं, लेकिन यह हमें दिखाई नहीं पड़ता कि चाह के साथ तनाव और अशांति आ जाती है। और तब भार इकट्ठे होते जाते हैं। इस चाह के पीछे हम बहुत सी बातें इकट्ठी करते हैं।

जब आप सत्य को चाहते हैं, क्यों चाहते हैं? यह बात उतनी महत्वपूर्ण नहीं है, जितनी आप सत्य को पाना चाहते हैं। यह ज्यादा महत्वपूर्ण बात है कि आप क्यों पाना चाहते हैं? यह बात महत्वपूर्ण नहीं है कि आप शांत होना चाहते हैं, यह ज्यादा महत्वपूर्ण है कि आप क्यों शांत होना चाहते हैं? जो आदमी अशांत नहीं है, वह शांत तो नहीं होना चाहेगा। शांत होने का अर्थ हुआ कि आप अशांत हैं। आपके भीतर अशांति है और आप शांत होना चाहते हैं।

क्या यह उचित न होगा कि हम जानें कि अशांति के कारण क्या हैं, बजाय इसके कि हम शांति की खोज करें? अशांत मन शांत कैसे हो सकता है? लेकिन जितने लोग अशांत हैं वे सभी शांत होना चाहते हैं? और अशांत मन जो भी करेगा उससे और भी अशांति बढ़ती हैं। शांति की कोशिश करेगा, उससे भी अशांति बढ़ेगी। क्योंकि अशांत मन से जो भी कृत्य होगा वह अशांति लाएगा। अशांत मन ध्यान करने बैठेगा तो भी अशांति बढ़ेगी। आप देखे होंगे, घरों में लोग सामायिक को बैठते हैं, ध्यान को, या नमाज को बैठते हैं। वे ज्यादा क्रोधी हो जाते हैं, उन लोगों की बजाय, जो ध्यान नहीं करते, सामायिक नहीं करते। एक ही कारण है उसका। वे अशांत लोग हैं। अशांत मन से वह अगर माला फेरने बैठे हैं तो माला फेरना भी अशांति को बढ़ा देगा। वे ज्यादा क्रोधी हो जाएंगे। ज्यादा उनके भीतर दंभ बढ़ जाएगा। यही कारण है, तथाकथित धार्मिक लोग ज्यादा अशांत हो जाते हैं। जब कि धार्मिक को होना चाहिए शांत।

ऋषि-मुनियों की कथाएं आपने सुनी होंगी। उनके क्रोध का तो कोई मुकाबला नहीं है। उनके अभिशाप एक जन्म पर भी खत्म नहीं होते, आगे के जन्मों तक वे नष्ट कर देते हैं। और फिर भी हम पागल हैं, उनको ऋषि-मुनि कहे जाते हैं। इसमें हमें कोई बेतुकापन, असंगति नहीं दिखाई देती! आपको इतना क्रोध नहीं है जितना ऋषि-मुनियों की कथाओं में पता चलता है। यह क्रोध कहां से आया? ये अशांत लोग थे। अशांति से तपश्चर्या निकली, तपश्चर्या से और अशांति बढ़ गई, और क्रोध बढ़ गया।

इसलिए यह बात महत्वपूर्ण नहीं है कि मन को शांत होने की चेष्टा करें। महत्वपूर्ण यह है कि आप अशांत क्यों हैं, क्या कारण है अशांति का? कहीं ऐसा तो नहीं है कि अशांत होने की स्थिति से एस्केप करने के लिए आप शांति की तलाश में निकल गए हों? कहीं ऐसा तो नहीं है कि अशांत हो गए हैं, बुरी तरह, अब वहां भीतर

देखना भी नहीं चाहते हैं, अब वहां घबड़ाहट है, तो अब शांत होने की कोई तरकीब निकालते हैं। आंख बंद करके बैठ जाएंगे पांच-दस मिनट तो आप सोचते हैं कि शांत हो जाएंगे? इतनी बचकानी, इतनी बच्चों जैसी बात नहीं है। इतनी बच्चों जैसी बात नहीं है कि आप दस मिनट आंख बंद करके बैठ गए, तो आप शांत हो जाएंगे।

जीवन के भीतर पूरे कारण खोजने जरूरी हैं कि मैं अशांत क्यों हूं? और जब तक अशांति का स्पष्ट बोध न हो, क्या-क्या कारण हैं, अशांति के, तब तक कोई मनुष्य शांत नहीं हो सकता। और बड़े आश्चर्य और रहस्य की बात यह है कि जो व्यक्ति अपने अशांति के कारणों को जान लेता है, वे कारण उससे छूटने शुरू हो जाते हैं--मात्र जानने से। ठीक-ठीक जान लेना कि मैं क्यों अशांत हूं, अशांति से मुक्ति की शुरुआत हो जाती है; क्योंकि यह असंभव है कि कोई व्यक्ति जानते हुए अशांति को चुने। इससे ज्यादा असंभव और कोई बात नहीं है कि कोई व्यक्ति जानते हुए दुख को चुने। कोई व्यक्ति जानते हुए उसको चुने जो पीड़ा लाती है। जानते हुए कोई भी नरक में प्रवेश को राजी नहीं होगा। लेकिन फिर भी हम सब नरक में प्रविष्ट हो जाते हैं। कहां, किस स्थल पर भूल हो जाती है, हम जानते नहीं हैं। हमें ज्ञात नहीं है। हम शांति तो खोजना चाहते हैं, लेकिन अशांति के कारण न हमें जानने की इच्छा है, और न हम खोज करते हैं। जब कि सदा उचित यही है। एक आदमी बीमार पड़े तो बजाय इसके कि वह स्वास्थ्य की खोज में पहाड़ों पर घूमे, ज्यादा बेहतर है कि वह बीमारी के कारण खोजे, निदान करवाए, बीमारी के कारण जाने। स्वास्थ्य नहीं खोजा जा सकता, बीमारी के कारण मिटाए जा सकते हैं। और जब बीमारी नहीं रह जाती तो जो शेष रह जाता है, उसी का नाम स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य कहीं अलग से नहीं पाया जा सकता।

अगर हम आपसे पूछें, स्वास्थ्य की क्या परिभाषा है? तो आप कहेंगे, जब कोई बीमारी न हो। जब कोई बीमारी न हो तो स्वास्थ्य है। शायद ऐसा कहना उचित होगा कि स्वास्थ्य तो हमारे साथ है, बीमारी हमारे ऊपर आ जाती है। अगर हम सारी बीमारियों को अलग कर दें तो हम स्वस्थ हैं। स्वास्थ्य लाया नहीं जा सकता, स्वास्थ्य हमारे भीतर है। बीमारी आती है और जाती है। लेकिन हम स्वास्थ्य की खोज में निकल जाएं तो भूल हो गई। फिर बहुत कठिन बात हो गई, फिर समस्या खड़ी हो गई। जो लाया नहीं जा सकता, उसे कहां से लाइएगा? बीमारी आई है, वह अलग हो सकती है। और यह भी स्मरण रखें, स्वास्थ्य का अर्थ ही क्या होता है? वह जो स्वयं में है। स्वस्थ का अर्थ होता हैः जब हम स्वयं में ठहर जाएं, वह स्थिति। स्वयं में स्थित हो जाने की स्थिति--उसका अर्थ ही यह होता है। जो व्यक्ति स्वयं में ठहर गया वह स्वस्थ है। शरीर स्वयं में ठहर जाए तो शरीर स्वस्थ है, मन स्वयं में ठहर जाए तो मन स्वस्थ है, आत्मा स्वयं में ठहर जाए तो आत्मा स्वस्थ है।

बुद्ध एक पहाड़ से निकले एक बार। एक हत्यारे ने उन्हें पकड़ लिया। लेकिन पकड़ने के पहले उसने सूचना दी। बुद्ध आते थे, उसने चिल्ला कर कहा कि भिक्षु, रुक जाओ। क्योंकि मैंने यह व्रत लिया हुआ है, एक हजार आदमियों की हत्या करनी है।

और इस बात पर आप हंसना मत कि उसने यह कैसा अजीब व्रत लिया! हममें से सारे लोग करीब-करीब इसी तरह के व्रत लिए हुए हैं। और जो आदमी जितने ज्यादा लोगों की हत्या कर देता है वह आदमी उतना ही बड़ा हो जाता है। हिंसा के अलावा बड़े आदमी को तौलने का हमारे पास कोई उपाय भी नहीं है। हिटलर बड़ा है, नेपोलियन बड़ा है, क्योंकि हिंसा की ताकत जितनी उनके पास बड़ी है। एक राजनीतिज्ञ बड़ा है, क्योंकि उसके पास हिंसा की ताकत है। वह पद बड़ा है, जहां से हिंसा की जा सके। धन हिंसा कर सकता है इसलिए धन भी बड़ा है। राज्य हिंसा कर सकता है, इसलिए राज्य-पद भी बड़ा है। हिंसा से ही सब बड़प्पन तौला जाता रहा

है। और मनुष्य का जो इतिहास है वह इस तरह के हिंसक लोगों का इतिहास है। तो उसको भी खयाल था कि एक हजार आदमी मार डालूंगा तो बड़ा आदमी हो जाऊंगा।

ठीक भी है। किसी आदमी को जिंदा करना तो आपके वश की बात नहीं है कि आप यह कसम ले लें कि मैं एक हजार आदमियों को जिंदा करूंगा, तो बड़ा आदमी हो जाऊंगा। इसलिए बड़े आदमी होने का एक ही उपाय है कि जितने ज्यादा लोगों को मार सकें। जिंदा करने का तो कोई उपाय नहीं है। प्रेम के द्वारा तो हमें कोई उपाय दिखता नहीं, इसलिए घृणा के द्वारा बड़े होने का उपाय दिखता है।

उसने कसम ली थी। उसने देखा भिक्षु आता है, थोड़ी दया खा गया होगा। उसने चिल्ला कर कहा कि मैं कोई भिक्षुओं पर दया करने वाला व्यक्ति नहीं हूं। मुझे तो एक हजार आदमी मारने हैं। तुम वापस लौट जाओ अन्यथा तुम भी मरोगे। लेकिन बुद्ध तो उसकी तरफ बढ़ते ही गए। वह दुबारा चिल्लाया कि भिक्षु रुक जाओ, मत बढ़ो मेरी तरफ। मत चलो आगे। बुद्ध ने कहाः अगर तुम मेरी बात सुन सको--क्योंकि बहुत कम लोग हैं जो सुनने में समर्थ होते हैं--तो मैं यह निवेदन करूं, अनेक वर्ष हुए तब मैं रुक गया हूं, तब से मैं चला ही नहीं। तुम चल रहे हो। तुम रुक जाओ। मुझे मत कहो रुकने के लिए, मैं तो रुका हूं। वह हैरान हुआ हत्यारा। बुद्ध चल रहे थे, वह तो बैठ कर अपने फरसे पर धार रख रहा था। तो उसने कहाः यह तो बड़ी अजीब बात कहते हो। बड़े पागल मालूम होते हो। खुद चल रहे हो मेरी तरफ, मैं तो बैठा हुआ हूं। बैठे को चलता हुआ कहते हो? खुद चलते हुए अपने को कहते हो, मैं रुक गया हूं। बुद्ध ने कहाः जैसा मैं देख रहा हूं तुमसे कह रहा हूं। इधर वर्षों से मैं चला नहीं, क्योंकि जिस दिन मेरा मन ठहर गया, उस दिन भीतर सब रुक गया और गति नहीं है। तुम यद्यपि बैठे हुए हो, बैठे हुए मालूम पड़ते हो, लेकिन बैठे हुए नहीं हो। मन चल रहा है। तुम अस्वस्थ हो। मन चलता है तो यह अस्वस्थ लक्षण है। मन अपने में ठहर जाए तो स्वस्थ होता है। स्वास्थ्य की खोज नहीं होती, हां, बीमारी का निदान हो सकता है और चिकित्सा हो सकती है।

बीमारी क्या है? मनुष्य की बीमारी क्या है? कौन सी धूल है, जो उसके ऊपर आ गई है और इकट्ठी हो गई है? यह बीमारी अतिथि है, गेस्ट है आपकी। इसे विदा किया जा सकता है। और अगर आप कहीं होस्ट को खोजने निकल गए, फिर बहुत मुश्किल है। अगर आप कहीं--मेहमान का विचार किए तब ठीक है, लेकिन अगर मेजबान को ही खोजने निकल गए तो बहुत कठिन है। यह जानना जरूरी है कि कौन सी चीजें मेरे ऊपर आकर इकट्ठी हो गई हैं?

जो सबसे पहली बात आज की सुबह मैं आपसे कहना चाहता हूं, और बहुत आधारभूत, वह यह कि मनुष्य के ऊपर जो सर्वाधिक घनी धूल इकट्ठी हुई है, वह ज्ञान की है। इसे सुन कर थोड़ी परेशानी होगी, क्योंकि हम मानते हैं, जो अज्ञानी है, वह सत्य से वंचित हो जाता है। यह बात तो ठीक है। जो अज्ञानी है वह सत्य से वंचित होता है। इससे एक तर्क निकलता है हमारे मन में, फिर जो ज्ञानी है वह सत्य को उपलब्ध हो जाता है। यह दूसरी बात गलत है। अज्ञानी जरूर सत्य से वंचित रह जाता है, लेकिन ज्ञानी भी सत्य को उपलब्ध नहीं हो जाता। हां, जो सत्य को उपलब्ध हो जाता है, उसको जरूर ज्ञानी कहा जा सकता है। और इन दोनों बातों में जो फर्क है वह समझ लेना जरूरी है।

जो सत्य को उपलब्ध हो जाता है, उसे तो ज्ञानी कहा जा सकता है, लेकिन हरेक ज्ञानी सत्य को उपलब्ध नहीं होता। क्योंकि ज्ञान तो उधार इकट्ठा किया जा सकता है। ज्ञान तो बाहर से आकर संगृहीत किया जा सकता है। इसीलिए तो मनुष्य जाति नीचे गिरती जा रही है। क्योंकि ज्ञान इकट्ठा करने के उपाय बढ़ते जा रहे हैं। महावीर को इतने उपाय नहीं थे जितने हमको हैं। और महावीर के पीछे और लौट जाएं तो और भी उपाय कम

थे। और पीछे लौट जाएं तो और भी उपाय कम थे। अगर दुनिया से किसी भांति उधार ज्ञान इकट्ठे करने के उपाय कम हो जाएं तो दुनिया में ज्ञान फिर से वापस जग सकता है। लेकिन उधार ज्ञान उपलब्ध करने के उपाय हैं बहुत सरल। और तब वास्तविक ज्ञान की जगह सब्स्टीट्यूट, पूरक ज्ञान मिल जाता है। जो सस्ता मिल जाता है, आसानी से मिल जाता है, उसे हम इकट्ठा कर लेंगे। और वह इकट्ठा ज्ञान बाधा बन जाता है।

अज्ञान बाधा है, ज्ञान भी बाधा है। फिर मार्ग क्या है? ये दो ही मार्ग दिखाई पड़ते हैं। मार्ग कोई तीसरा है जिसकी मैं बात करूंगा।

अज्ञान इसलिए बाधा है कि आदमी को पता ही नहीं होता कि वह क्या कर रहा है, क्या हो रहा है, जीवन कहां जा रहा है? इस पीड़ा से घबड़ा कर वह ज्ञान इकट्ठा करना शुरू कर देता है। तो शास्त्र हैं, सिद्धांत हैं, सदगुरु हैं, उनके वचन हैं, उनको इकट्ठा कर लेगा। और हम सबने इस तरह के वचन इकट्ठे कर लिए हैं। अगर मैं आपसे पूछूं, आत्मा है? तो आप कहेंगे, है। यह आपको किसने कहा, कैसे आपने जाना? यह आपका ज्ञान कैसे बना? अगर मैं आपसे कहूं, ईश्वर है? कोई कहेगा है, कोई कहेगा, नहीं है। लेकिन यह आपको पता कैसे चला? यह आपने कैसे जाना? यह ज्ञान आपको कहां से आया? यह आस-पास से आया होगा। हवा में ज्ञान तैर रहा है, हवा में विचार चल रहे हैं, हजारों साल के विचार चल रहे हैं। हर बच्चा पैदा होने के बाद उनको पकड़ना शुरू कर देता है। इकट्ठा कर लेता है भीतर। फिर इसी ज्ञान के सहारे वह जीता है।

और स्मरण रखें, जगत में उधार ज्ञान से ज्यादा असत्य और कोई चीज नहीं है। उधार ज्ञान ही एकमात्र मिथ्या ज्ञान है। और कोई ज्ञान मिथ्या नहीं है। सम्यक ज्ञान वह है, जो स्वयं से आए और मिथ्या ज्ञान वह है जो दूसरों से आए। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह दूसरे कौन हैं। वह महावीर हो सकते हैं, बुद्ध हो सकते हैं, कृष्ण हो सकते हैं, क्राइस्ट हो सकते हैं, इससे कोई फर्क नहीं होता है। उनका ज्ञान सही है या गलत, यह भी सवाल नहीं है। आपके लिए पराया है, यह मिथ्या होने के लिए काफी है। पराया होने से मिथ्या हो जाता है। पराया होने से झूठा हो जाता है। असत्य हो जाता है। और न केवल असत्य हो जाता है, बल्कि सत्य के आगमन में सबसे बड़ी दीवाल हो जाता है। लेकिन हम सब ज्ञानी हैं--कोई थोड़ा होगा, कोई ज्यादा होगा, कोई और ज्यादा होगा। धन्यभाग हैं, उनके, जो थोड़े ज्ञानी हैं। अभागे हैं वे, जो बहुत ज्यादा ज्ञानी हैं। क्योंकि उतनी ही बड़ी दीवाल उनको मिटानी पड़ेगी। यही तो वजह है कि युवा भी सत्य को आसानी से जान पाता है, बूढ़ों को और कठिन हो जाता है। क्योंकि तब तक ज्ञान काफी संगृहीत हो जाता है, अनुभव काफी इकट्ठे हो जाते हैं, और अनुभव के साथ दम्भ भी इकट्ठा हो जाता है। और ज्ञान के संग्रह के साथ अहंकार मजबूत हो जाता है।

क्या हमारा यह ज्ञान, अज्ञान को छिपाने की तरकीब से ज्यादा कुछ और है? क्या हमारा यह जानना है कि आत्मा है--ज्ञान है? क्या आपको कभी भी कोई झलक मिली है आत्मा की? क्या शरीर के अतिरिक्त कभी भी और किसी चीज से आपका स्पर्श हुआ है? क्या कभी परमात्मा की कोई भी ध्वनि आप तक पहुंची है? क्या कहीं उस अदृश्य की कोई भी अनुभूति आपको हुई है? नहीं। अगर वह हो जाती तो जीवन दूसरा हो जाता। अगर वह जरा भी स्पर्श हो जाता तो जीवन इससे कुछ और हो जाता। आप दूसरे ही आदमी हो जाते। आपका दूसरा ही जन्म होता। वह नहीं हुआ। हां, शब्द सुने हैं, गीता पढ़ी है, कुरान पढ़ा है, महावीर और बुद्ध की वाणी पढ़ी है। वह प्रीतिकर लगती है। वह प्रीतिकर इसलिए लगती है कि आप अशांत हो और उसमें शांति का आश्वासन है। इसलिए प्रीतिकर लगती है। वह प्रीतिकर इसलिए लगती है कि आप अज्ञान में हो, उसमें ज्ञान की झलक है; इसलिए प्रीतिकर लगती है।

लेकिन अगर उसे संग्रह कर लिया तो आप कही नहीं पहुंच सकोगे, आप रुक जाओगे। आप वहीं रुक जाओगे। जिसको आपने नौका समझा था वही डुबाने वाली हो जाएगी। उधार नौकाओं पर नहीं बैठा जा सकता। उससे तो कागज की नौकाएं भी कहीं ले जा सकती हैं, क्योंकि फिर भी होंगी तो वह। उधार नौका तो होती ही नहीं। वह तो सिर्फ कल्पना है। आपका यह खयाल कि आत्मा है, कल्पना से ज्यादा और क्या है? हां, जरूर आपने कुछ तर्क भी इकट्ठे कर रखे होंगे कि इसलिए आत्मा है, इसलिए आत्मा है। स्मरण रखिए, जिस आदमी ने तर्क इकट्ठे कर रखे हैं--इसलिए आत्मा है, समझ लेना, उसे आत्मा का पता नहीं है। क्योंकि जिसे पता है उसे तर्क का कोई सवाल नहीं है। आर्ग्युमेंट का कोई सवाल नहीं है। अगर कोई आदमी कहे, इसलिए ईश्वर है तो समझ लेना, उसे ईश्वर का कोई भी पता नहीं है, क्योंकि "इसलिए" तो बुद्धि की बात है। जिसे पता होता है उसके लिए कोई "इसलिए" नही रह जाता है।

रामकृष्ण के पास एक दफा केशव मिलने गए। कलकत्ते के बहुत लोग इकट्ठे हो गए सुनने के लिए क्योंकि इस बात का बहुत डर था कि रामकृष्ण की फजीहत होगी। केशव तो प्रकांड पंडित थे, बहुत शास्त्र जानते थे, शायद सौ वर्षों में बंगाल ने वैसा पंडित पैदा नहीं किया। अदभुत उनकी स्मृति थी। रामकृष्ण तो बिल्कुल गंवार थे। उन जैसा गंवार भी दुनिया ने बहुत कम पैदा किया। बिल्कुल गंवार थे, निपट! कुछ भी नहीं जानते थे। तो बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई थी कि रामकृष्ण की तो फजीहत होनी निश्चित है। केशव के सामने बिचारे की क्या गति होगी! केशव भी सजकर, तैयार होकर गए थे। पंडित हमेशा तैयार होकर जाता है। क्योंकि पंडित के पास तो कुछ होता है नहीं, तैयारी होती है। वह बिल्कुल तैयार होकर गए थे। वह सब दलीलें तय करके गए थे कि क्या-क्या कहना, क्या-क्या कहना। वह क्या कहेंगे तो उसके उत्तर भी तैयार करके गए थे। उधर रामकृष्ण को उनके भक्तों ने कहा कि आप भी कुछ तैयारी करिए। उन्होंने कहाः मैं क्या तैयारी करूं? मुझे कुछ समझ में नहीं आता, मैं क्या तैयारी करूं। तैयारी किस बात की? लेकिन उन्होंने कहा, बड़ी मुश्किल हो जाएगी। आपके साथ-साथ हम सबकी भी फजीहत होगी।

भक्तों को ज्यादा डर होता है कि गुरु की फजीहत न हो जाए। बहुत डर होता है। इसलिए तो भक्त लड़ते हैं गुरुओं के नाम पर कि कहीं महावीर की फजीहत न हो जाए, इसलिए जैन मरे जाते हैं। कहीं क्राइस्ट की फजीहत न हो जाए, क्रिश्चियन मरे जाते हैं। भक्तों को बड़ी फिकर होती है, क्योंकि गुरु के साथ उनका अहंकार जुड़ जाता है। उनका गुरु बड़ा तो वे भी बड़े। उनका गुरु जीता तो वे भी जीते। उनका गुरु हारा तो वे भी हारे। इसलिए तो सारी दुनिया में ये संप्रदाय खड़े हुए हैं। यह गुरुओं से हमारा अहंकार जुड़ गया। अगर महावीर बड़े हैं तो जैनी को लगता है कि मैं बड़ा हो गया। भीतर उसका अहंकार ऊपर सरक गया। महावीर सिद्ध हो जाएंगे कुछ भी नहीं, ना-कुछ, तो जैनी के अहंकार का पारा नीचे गिर जाएगा। इसलिए महावीर को बड़े से बड़ा बताना है सब बातों में। कृष्ण को बड़े से बड़ा बताना है हिंदू को, क्राइस्ट को बड़े से बड़ा बताना है। यह भी डर है कि कहीं हमारा गुरु दूसरे के गुरु से नीचे न पड़ जाए। इसलिए उसको इतना बड़ा बताते चले जाते हैं, इतने मिरेकल जोड़ते जाते हैं, उनके पीछे चमत्कार जोड़ते चले जाते हैं, कि सब झूठा हो जाता है। यानी आखिर में कथा रह जाती है, असली आदमी खो जाता है।

तो सब घबड़ाए, शिष्य घबड़ा गए। लेकिन कोई रास्ता नहीं था। आखिर केशव आ ही पहुंचे। वे सब डरे हुए थे। केशव तो तैयार थे, उन्होंने आते से ही पूछा कि क्या ईश्वर है? रामकृष्ण ने कहाः पहले तुम्हीं बताओ। तो केशव बताने लगे कि नहीं है। वे तो तय करके आए थे कि विवाद करना है। तो वह बताने लगे कि नहीं है। वह एक-एक दलील देने लगे--इसलिए ईश्वर नहीं है। उनकी एक दलील पूरी होती थी, रामकृष्ण उठ कर उनको

गले लगा लेते थे। वह थोड़े घबड़ाए। यह तो बड़ी पागलपन की बात हो गई। इनसे आए थे लड़ने, दलील दे रहे हैं, ईश्वर के विरोध में, वह आदमी गले लगाता है, रास्ता क्या बने? उनके शिष्य धीरे-धीरे फीके पड़ने लगे, उनके साथ जो आए थे। लेकिन होगा क्या इसका, हल क्या होगा? केशव की दलील भी धीरे-धीरे फीकी पड़ने लगी। शिष्य उदास होने लगे, क्योंकि लड़ाई होने लगे तो चित्त आगे बढ़े, जोश आए। वह जोश का कोई कारण न रहा। रामकृष्ण गले लगाते हैं। केशव ने पूछा कि मैं समझा नहीं कि बात क्या है? आप क्या कर रहे हैं? रामकृष्ण ने कहाः तुम्हें गले लगा कर बार-बार भगवान को धन्यवाद दे रहा हूं। काहे, किस बात का धन्यवाद? मैं तो कह रहा हूं, ईश्वर नहीं है।

रामकृष्ण ने कहाः इसीलिए तो! इतनी अदभुत प्रतिभा, इतना अदभुत विचार, इतनी अदभुत बुद्धि मेरे लिए ईश्वर का सबूत हो जाती है। मुझे तो एक पत्ते में प्राण दिखाई पड़ता है तो मेरे लिए ईश्‍वर हो जाता है। मुझे तो चांद निकलता है रात में तो ईश्वर हो जाता है। मुझे तो एक तितली उड़ती है तो ईश्वर हो जाता है। एक फूल खिलता है तो ईश्वर हो जाता है। तो मनुष्य की प्रतिभा ऐसी विकसित हुई है तुम्हारे भीतर, तो मेरे लिए तो ईश्वर हो गई। तो तुम प्रमाण देते हो ईश्वर के न होने के, मेरे लिए तुम प्रमाण हो गए हो। अब मैं क्या करूं? अब मैं क्या करूं और क्या न करूं? इसलिए उठ-उठ कर तुम्हें गले लगाता हूं, धन्य हो भगवान! जाते वक्त केशव को कहा, एक बात स्मरण रखना, जिसके भीतर ऐसी विलक्षण विचार की शक्ति हो, वह कितने दिन ईश्वर से दूर रहेगा? इतना भर स्मरण रखना, और मुझे कुछ कहना नहीं है। कोई दलील नहीं दी ईश्वर के होने के लिए। लेकिन, केशव ने दलीलें दीं। हारकर लौटे। घर आकर लिखा कि आज एक आदमी से हार गया, क्योंकि वह लड़ा ही नहीं।

और दुनिया में केवल उससे ही हार होती है जो लड़ता नहीं है। जो लड़ता है, वह तो कभी जीतता नहीं। जो लड़ा है, वह कभी जीतता नहीं है; क्योंकि लड़ता है तभी कोई आदमी जब उसे हारने का डर होता है, जब हारने का डर ही नहीं होता तो वह लड़ता ही नहीं। जब हारने का डर ही नहीं होता तो वह आपको भी जीतने का मजा दे देता है। और यहीं कुछ बातें टूट जाती हैं।

जिन्होंने ईश्वर के प्रमाण दिए हैं कि ईश्वर इसलिए है और इसलिए है और इसलिए है, वे सभी नास्तिक रहे होंगे। उनको खुद शक रहा होगा। उन्होंने जाना नहीं होगा, इसलिए प्रमाण दिए।

आप भी जो ज्ञान इकट्ठा किए हुए हैं, वह प्रमाणों पर खड़ा हुआ है या अनुभव पर? कोई प्रमाण पर खड़ा हुआ है आपका ज्ञान, वह समझना उधार है। अनुभव पर खड़ा हो तो समझना कि सच्चा है, वास्तविक है। अनुभव पर नहीं खड़ा है। सब प्रमाण पर खड़ा हुआ है। और सब प्रमाण एक-दूसरे प्रमाण को चाहते हैं।

अभी एक मित्र मिले। मैंने उनसे यह पूछा, पूछते ही चला गया। वह बोले, मैं तो मानता हूं इसलिए कि महावीर ने कहा है कि आत्मा है। तो महावीर की बात क्यों मानते हो? कि महावीर सर्वज्ञ हैं। यह तुमको किसने कहा? यह किसी और ने कहा है, और आचार्यों ने कहा है कि वे सर्वज्ञ हैं। यह आचार्यों को पता है, यह तुमको किसने कहा? आखिर आप मानने पर खड़े होंगे तो यह तो अंधी गली हो जाएगी, जिसमें आपको फिर एक को मानना पड़ेगा, फिर दूसरे को, फिर तीसरे को; और वह कहीं समाप्त नहीं होगी। यह आपसे किसने कहा कि आत्मा है? तो कहते हैं कि महावीर ने कहा है। महावीर ठीक ही कहते हैं, यह आपको कौन कहता है? तो महावीर सर्वज्ञ हैं, वह गलत कह ही नहीं सकते। यह किसने बताया आपको? यह कोई और आचार्य आपको बताता है। वह आचार्य ठीक कहते हैं, झूठ नहीं बोलते, प्रोपेगंडा नहीं करते महावीर का, यह आपसे किसने कहा?

इस भूलभुलैया में कोई रास्ता है? और इस अंधेरी गली में जब आप दूसरों पर विश्वास करते चले जाएंगे तो कोई हर्ज है। नहीं, इस भांति आप झूठे ज्ञान के लिए बल इकट्ठा कर रहे हैं। झूठे ज्ञान के लिए सहारे इकट्ठे कर रहे हैं। महावीर सर्वज्ञ हैं, कृष्ण भगवान के अवतार हैं, क्राइस्ट ईश्वर के पुत्र हैं, अपने झूठे ज्ञान के लिए सहारे इकट्ठे कर रहे हैं। लेकिन कितने ही सहारे इकट्ठे कर लें, झूठा ज्ञान झूठा है। जिस ज्ञान के लिए आपके अनुभव में आधार नहीं है, उस ज्ञान को आप झूठा जानना। सिवाय उसके कोई आधार होता ही नहीं। सिवाय उसके कोई आधार नहीं होता है।

तो हमारा ज्ञान निराधार है। निराधार ज्ञान बाधा बन जाता है। उसको पैर ही नहीं है, वह चलेगा कैसे? वह काम कैसे करेगा? उसमें कोई प्राण ही नहीं है। और यह हमने बहुत इकट्ठा किया हुआ है। आपके पाप उतनी बाधा नहीं हैं, आपका ज्ञान ज्यादा बड़ी बाधा है। पाप तो आप बड़े छोटे-मोटे करते हैं, ज्ञान आपका बहुत बड़ा है। पाप कोई बड़े आप कर भी क्या सकते हैं? आदमी कितने बड़े पाप कर सकता है? आदमी की ताकत कितनी है? बड़ी छोटी सी ताकत है। ताकत से बाहर पाप भी क्या करेगा! पाप कोई बहुत बड़े आप नहीं कर सकते। क्या पाप करिएगा? ऐसा कौन सा पाप करिएगा जो पहले मनुष्य ने नहीं किया है? कौन से बड़े पाप आप कर सकते हैं?

और पाप आप करते ही क्यों हैं? पाप इसलिए करते हैं कि अज्ञान है। और वह भी छोटे-छोटे पाप हैं, छोटी-छोटी बेईमानियां हैं, छोटे-छोटे धोखे हैं। और वे सब इसीलिए हैं कि आप खुद बुनियादी रूप से धोखे में हैं, इसलिए बाकी सारे धोखे पैदा होते हैं। बुनियादी रूप से जो आदमी धोखे में है, उससे सारे धोखे पैदा हो जाते हैं। बुनियादी रूप से आपको धोखा बहुत गहरा है। आप मान रहे हैं कि मेरे भीतर आत्मा है और आपको पता नहीं है। यहां से धोखा शुरू हो गया है, बेईमानी शुरू हो गई। फिर वह बेईमानी दुकान तक जाएगी, बाजार तक जाएगी। फिर साधु और संन्यासी समझाते हैं, दुकान पर बेईमानी मत करो, बाजार में बेईमानी मत करो। कैसे नहीं करोगे? जो आत्मा तक में बेईमानी कर रहा है, जो उधार आत्मा को मान रहा है, जिसका उसे कोई पता नहीं है। यहां तो बहुत जड़-मूल में बेईमानी होगी। और जो अपने को धोखा दे रहा है वह किसको धोखा देने से बचेगा? तो मैं आपसे नहीं कहता कि दुकान में बेईमानी न करना। आप तो करोगे, बच नहीं सकते। असंभव है बचना। क्योंकि आप तो प्राणों के प्राण में बेईमानी किए हुए बैठे हैं। आप वहां धोखा दिए हुए हैं, वहां डिसेप्शन है, वहां वंचना चल रही है भीतर। सबसे बड़ी वंचना यह है कि जो ज्ञान मेरा नहीं है, उसको मैंने समझा हुआ है कि मेरा है। और उस ज्ञान के लिए मैं मर भी सकता हूं, लड़ भी सकता हूं। उस ज्ञान के लिए हत्या भी कर सकता हूं। और शहीद भी हो सकता हूं उस ज्ञान के लिए जो मेरा नहीं है।

यह ज्ञान तो बांध लेता है। मनुष्य के ऊपर ज्ञान के बड़े गहरे बंधन हैं। इसे तोड़ना जरूरी है। इसे तोड़ने से क्या होगा? इसे तोड़ने से बड़ी घबड़ाहट होगी, क्योंकि आप बिल्कुल अज्ञानी मालूम पड़ेंगे। अगर आप सोचेंगे तो आप पाएंगे, मुझे आत्मा का कोई भी पता नहीं है, मुझे परमात्मा का कोई पता नहीं है, मुझे मोक्ष का कोई पता नहीं, मुझे नरक-स्वर्ग का कोई पता नहीं है। मुझे यह भी पता नहीं, मैं क्यों पैदा हुआ? मुझे यह भी पता नहीं, मैं क्यों हूं? मुझे यह भी पता नहीं कि मैं कल कहां जाऊंगा, क्या होगा? मृत्यु के बाद क्या होना है, मुझे कुछ भी पता नहीं है।

अगर सीधी-सीधी पहली सच्ची बात जीवन में आ सकती है, तो वह कि मुझे कुछ भी पता नहीं है। और अगर यही बात नहीं आती तो आपके भीतर धार्मिक व्यक्ति का जन्म असंभव है। अगर यह बुनियादी आधारभूत बात आपको खयाल में नहीं आती है। आपको क्या पता है? तो ईमानदारी से सोचिए तो आपको पता चलेगा कि

कुछ भी पता नहीं है। सब अज्ञान है--कुछ भी पता नहीं है। ऐसी तो सीधी और साफ स्थिति है। अज्ञान का बोध, ज्ञान की दिशा में पहला चरण है। लेकिन, जिन्हें अज्ञान का ही बोध नहीं है, जिनका पहला कदम ही नहीं उठ पाता, बाकी कदम कैसे उठेंगे?

तो आज की सुबह मैं यह कहना चाहता हूं कि अज्ञान का बोध जीवन में क्रांति का पहला चरण है। और अज्ञान के बोध में दो शब्द हैं, जिन पर थोड़ा खयाल करना। एक तो अज्ञान और एक बोध। ये दोनों विरोधी शब्द हैं, और यही सारा सीक्रेट, सारा रहस्य है जीवन का। अज्ञान और बोध विरोधी शब्द हैं। जिस व्यक्ति को अज्ञान का बोध होना शुरू हो जाता है कि मैं निपट अज्ञान में हूं, उसके भीतर ज्ञान का पहला बीज शुरू हो गया। बोध पहला बीज है। अज्ञान का बोध जिसे हो रहा है उसके भीतर पहला बीज बोध का पड़ा--पहला, अवेयरनेस का, होश का। अंडरस्टैंडिंग का पहला बीज उसके भीतर पड़ा आया।

अब इस बोध को विकसित किया जा सकता है। और यह सीधे तथ्य की बात है। इसके लिए किसी शास्त्र को मानने की जरूरत नहीं है कि आप अज्ञानी हैं। इसके लिए मेरी बात मानने की जरूरत नहीं है कि आप अज्ञानी हैं। यह तो आप खोजेंगे तो आपके सामने स्पष्ट हो जाएगा कि आप अज्ञानी हैं। अज्ञान हमारी भूमिका है। हम कुछ भी नहीं जान रहे हैं, हमें कुछ भी पता नहीं है। लेकिन शास्त्रों ने इस भूमिका को नष्ट कर दिया है, क्योंकि शास्त्रों ने हमारे भीतर जगह बना ली है। और जब भी जीवन में कोई समस्या खड़ी होती है, उत्तर हम नहीं देते, शास्त्र हमारे भीतर से दे देते हैं।

जैसे मैं आपसे पूछूं कि मरने के बाद क्या होगा? आप कहेंगे, आत्मा है, अपने कर्मों का फल भोगेगी, और आवागमन होगा। अगर आप ईसाई हैं या मुस्लिम हैं, तो आप दूसरा उत्तर देंगे, क्योंकि आपने दूसरे शास्त्र पढ़े और सीखे हैं। अगर आप जैन हैं तो दूसरा उत्तर देंगे, अगर हिंदू हैं तो दूसरा उतर देंगे। ये उत्तर आपसे नही आ रहे हैं, उन शास्त्रों से आ रहे हैं जो आपने पढ़े हैं।

क्या यह जरूरी नहीं है कि हम इस बात को समझें कि हमारे भीतर से कोई भी उत्तर नहीं आता? अभी मैं पूछता हूं, क्या आत्मा है? अगर आप इस बात की खोज करेंगे कि मेरे भीतर से कोई उत्तर आए, तो कोई उत्तर नहीं आएगा। जो उत्तर आएगा वह शास्त्र का होगा, समुदाय का होगा, सीखा हुआ होगा। तो इसमें कौन सी चीज सच्ची है--वह भीतर से उत्तर का न आना, वह सच्चा है, या ये किताब से आए हुए उत्तर? वह उत्तर का न आना वास्तविक है। वह कोई हमारी श्रद्धा नहीं है, वह हमारा अनुभव है।

तो बिल्कुल आधार से ही कोई भवन खड़ा होता है। ईंट बिल्कुल नींव की पहले रखनी पड़ती है। पहली नींव की ईंट यह है कि हम इस बात को स्पष्ट रूप से अनुभव कर लें कि हमारे पास कोई भी ज्ञान नहीं है। हम निपट अज्ञानी हैं।

अगस्तीन हुआ है एक फकीर। उसने अज्ञान को डिवाइन इग्नोरेंस कहा है। इस अज्ञान के बोध को, दिव्य अज्ञान की अनुभूति कहा। मुझे प्रीतिकर लगती है, यह बात ठीक है। हमारे भीतर दिव्यता की शुरुआत हो सकती है। अज्ञान का बोध प्राथमिक रूप से स्पष्ट हो जाना चाहिए।

क्या होगा उससे? आप कहेंगे, यह बोध भी हो जाए तो क्या होगा? आपके व्यक्तित्व में अभी एक परिवर्तन शुरू हो जाएगा। आपके फिजूल प्रश्न गिर जाएंगे, फिजूल खोजें गिर जाएंगी। फिर मोक्ष की खोज का कोई सवाल नहीं रहा। फिर आत्मा है या नहीं, इसकी खोज का कोई सवाल नहीं रहा। फिर जन्म पुनर्जन्म होता है या नहीं, इस बेवकूफी में पड़ने की कोई वजह नहीं रही। तब तो सीधी वजह यह हो गई कि मेरे पास कोई बोध ही नहीं है जीवन को जानने का, मेरे पास कोई द्वार नहीं दिखता। मैं बिल्कुल अंधकार में खड़ा हूं, क्या

करूं? जो आदमी अंधकार में खड़ा होता है, उसे सबसे पहले जो बोध आता है, वह प्रकाश को पाने का आता है, और कोई बोध नहीं आता। उसे पुनर्जन्म का खयाल नहीं आता। उसे परमात्मा के कितने सिर होते हैं, चत्तुर्मुखी होते हैं कि हजार हाथ होते हैं, इसका खयाल नहीं आता। यह कोई नानसेंस उसके दिमाग में पैदा ही नहीं होती।

उसे तो पहला बोध यह आता है कि अंधकार घना है। प्रकाश कैसे मिले? तब वह यह नहीं पूछता कि कितने नरक हैं और कितने स्वर्ग हैं! तब वह नहीं पूछता कि किन-किन कर्मों के द्वारा मनुष्य का आवागमन होता है! तब वह यह नहीं पूछता कि भगवान ने दुनिया किस तारीख को कब बनाई, कितने दिन में बनाई! छः दिन में बनाई कि सात दिन में बनाई और रविवार बनाने के बाद विश्राम किया कि नहीं किया? यह वह नहीं पूछता। वह यह सारी बातें नहीं पूछता है। महावीर सर्वज्ञ हैं या नहीं, वह यह नहीं पूछता। उसे महावीर से क्या लेना-देना? क्राइस्ट भगवान के पुत्र हैं या नहीं, यह नहीं पूछता। क्योंकि भगवान और भगवान के पुत्र, इनका मुझे क्या पता हो सकता है, मुझे अपना कोई पता नहीं। वह यह नहीं पूछता कि मोहम्मद सीधे शरीर के सहित स्वर्ग चले गए या मर कर गए? सारी बातें उसे समझ में आती हैं, मूढ़तापूर्ण हैं। जो इनको पूछ रहा है, वह व्यर्थ की बातें पूछ रहा है। और ऐसी मूर्खताओं से हजारों ग्रंथ भरे हुए हैं, हजारों मस्तिष्क भरे हुए हैं, जो सुबह से सांझ तक इनका विचार कर रहे हैं और सोच रहे हैं कि यह धार्मिक चिंतन है।

यह कोई धार्मिक चिंतन नहीं है। इससे ज्यादा अज्ञानपूर्ण व्यर्थ की दिशा कोई नहीं हो सकती। लेकिन इस पर खोज-बीन चलती है। इस पर लोग समय खराब करते हैं, मन खराब करते हैं। जिस आदमी को अंधकार का बोध होता है, वह यह पूछता है कि प्रकाश कहां है? कैसे प्रकाश उपलब्ध हो सकता है? कैसे मैं प्रकाश को पा सकता हूं? उसके लिए और कोई आकांक्षा दूसरी नहीं होती। जिसके घर में आग लगी हो वह यह पूछता है कि दरवाजा कहां है? मैं बाहर कैसे निकल जाऊं? वह और कुछ नहीं पूछता। इस वक्त और सारी बातें, और सारे प्रश्न उसके लिए व्यर्थ हो जाते हैं।

अज्ञान अगर हमें चारों तरफ से घेर ले तो हमारे भीतर वह लपट उठनी शुरू होगी जो प्रकाश की खोज बनती है, अभीप्सा बनती है। लेकिन अज्ञान का बोध ही हमें न पकड़े, तो हमारे भीतर प्यास ही पैदा नहीं होती, खोज ही पैदा नहीं होती। इसलिए, मैं कह रहा हूं कि शास्त्रों और शब्दों और सिद्धांतों ने हमारी खोज को मंदा कर दिया है, धीमा कर दिया है, फीका कर दिया है। दुनिया भर में कोई सत्य की खोज के लिए बहुत उत्सुक नहीं है। न होने का कारण यह है कि उसने उधार सत्य इकट्ठे कर लिए हैं और उनके कारण से खोज की पीड़ा अनुभव नहीं होती। अगर मुझे इस वक्त ऐसा लगे कि कोई रास्ता नहीं है मेरे जीवन में। मुझे कोई पता नहीं कि कहां जाऊं, क्या करूं? अगर मैं बिल्कुल घबड़ा कर खड़ा हो जाऊं, मुझे कोई समझ में न पड़े, तो उस स्थिति में क्या होगा? मेरे भीतर एक क्रांति शुरू हो जाएगी। मेरे भीतर एक परिवर्तन शुरू हो जाएगा। मैं चौंक जाऊंगा, मैं अवाक रह जाऊंगा। मुझे ठहर कर दो क्षण सोचना पड़ेगा। विचार पैदा होगा, खोज पैदा होगी, प्यास पैदा होगी, अभीप्सा पैदा होगी।

अज्ञान का बोध अनिवार्य है साधना के किसी भी क्रम में। लेकिन आप तो जहां भी जाएंगे, वहां आपको ज्ञान सिखाया जाएगा। अज्ञान तो कोई सिखाता नहीं। आप जहां भी जाएंगे वहां और ज्ञानी होकर वापस लौटेंगे। कुछ किताबें सीख लाएंगे, कुछ शब्द सीख लाएंगे और ज्ञानी होकर आएंगे। अगर इस शिविर से आप अज्ञानी होकर वापस लौट जाएं और आपका ज्ञान यहीं छूट जाए तो समझ लें, बहुत बड़ा काम हो गया। आपकी जिंदगी में एक अदभुत बात हुई। आप एक भार को छोड़ कर आए, अगर आप यहां से बिल्कुल अज्ञानी होकर लौट जाएं। अगर आपसे रास्ते में कोई पूछे, आत्मा है? और आप पूरे मन से कह सकें, कि मुझे पता नहीं। आपसे

कोई पूछे--ईश्वर है? और आप कह सकें कि मुझे पता नहीं। मैं बिल्कुल अज्ञानी हूं, मुझे कुछ भी पता नहीं। अदभुत है यह बोध। इससे एक विनम्रता, एक ह्युमिलिटी पैदा होगी, अहंकार गल जाएगा। क्योंकि ज्ञान अहंकार को मजबूत करता रहता है। यह बात कि मुझे पता नहीं, यह स्पष्ट आपके हृदय से यह आवाज--कि मुझे कुछ भी पता नहीं, मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। मुझसे ज्यादा अज्ञानी शायद ही कोई हो, मुझे कुछ भी पता नहीं--अगर आपके पूरे प्राणों से यह बात आई तो आप पाएंगे, आपके भीतर एक क्रांति हो रही है--इस बात के आने से ही। इस बात के आने से यह क्रांति होगी कि आपके भीतर एक नवीन विनम्रता, ह्युमिलिटी पैदा होगी। आप पिघल जाएंगे। भीतर दंभ गल जाएगा। आप समझेंगे, जिसे कुछ भी पता नहीं उसकी स्थिति भी क्या? क्या है, कहां है, कौन है, कुछ भी पता नहीं।

इसको मैं पहला चरण कहता हूं। और चरणों की बात करूंगा, लेकिन आज तो मैं यही कहूंगा कि आपको किसी न किसी भांति अपने ओरिजिनल इग्नोरेंस को खोज लेना है। वह जो हमारा मौलिक अज्ञान है, उसे खोज लेना है। और यह जो हमारा उधार का ज्ञान है, उससे थोड़ा हट जाना है। अपने भीतर वह जगह खोज लेनी है, जहां हम बिल्कुल अज्ञान में हैं। जहां हमें कुछ भी पता नहीं। जहां हम न जैन हैं, न हिंदू हैं, न बौद्ध हैं, क्योंकि यह तो सिखाए हुए ज्ञान के फासले हैं। अगर आपको इसका पता चल जाए कि मुझे पता नहीं है कुछ भी, फिर आप कह सकते हैं कि मैं जैन हूं? फिर आप कैसे कहेंगे कि मैं जैन हूं? फिर आप कैसे कहेंगे कि मैं मुसलमान हूं? फिर आप कैसे कहेंगे कि मैं हिंदू हूं? आप कहेंगे कि मुझे कुछ पता नहीं कि परमात्मा है, मुझे कुछ पता नहीं कि आत्मा है? मुझे यही पता नहीं कि मैं क्या हूं? तो मैं कैसे कहूं कि कौन ठीक कहता है, महावीर ठीक कहते हैं कि कृष्ण ठीक कहते हैं कि बुद्ध ठीक कहते हैं कि कौन ठीक कहता है, मैं कैसे कहूं? मुझे तो कुछ पता नहीं। जिसे सत्य का पता हो वह बता सकता है, कौन सत्य कहता है। मुझे तो सत्य का पता नहीं। मैं तो निपट अज्ञानी आदमी हूं।

इस झूठे ज्ञान ने दुनिया में मनुष्य को तोड़ दिया है। अगर दुनिया का ओरिजिनल इग्नोरेंस, हर आदमी के भीतर जो मौलिक अज्ञान की स्थिति है, वह स्पष्ट हो जाए तो दुनिया में फिर कोई संप्रदाय नहीं हो सकते। संप्रदाय तो इस झूठे ज्ञान पर बंटे हुए हैं। आप कोशिश करके नहीं कर सकते कि आप हिंदू और जैन का समन्वय हो जाएं, और फलां-ढिकां और अल्ला ईश्वर तेरे नाम, इसको कहने लगें तो कुछ फर्क हो जाएगा? इससे कुछ होने वाला नहीं है। आपको यह पता चलना चाहिए कि मेरे अज्ञान ने मुझे जैन बनाया है, मेरे अज्ञान ने मुझे हिंदू बनाया है। इसलिए कि उस अज्ञान को मैंने एक खास ढंग के ज्ञान से ढांक लिया तो मैं जैन हो गया। एक-दूसरे ने अपने अज्ञान को खास ढंग से ढांक लिया तो वह हिंदू हो गया, तीसरे ने उस अज्ञान को तीसरे तरह के ज्ञान से ढांक लिया तो वह फलां हो गया। हमने कपड़े पहन रखें हैं, भीतर हम सब नंगे हैं, और कपड़े हम सबके अलग हैं। कोई हिंदू के पहने है, कोई मुसलमान के, कोई ईसाई के, लेकिन आदमी भीतर नंगा है। अगर हम सब नंगे खड़े हो जाएं, तो पहचानना मुश्किल है, कौन हिंदू है, कौन ईसाई है, कौन मुसलमान है। वह जो हमारी ओरिजिनल नेकेडनेस है, वह जिसको मैं कह रहा हूं मौलिक आधारभूत अज्ञान, उसे अगर नहीं पकड़ते हैं तो आगे कोई बात नहीं हो सकती है। बहुत जड़ से ही बात पकड़नी पड़ेगी, फिर कुछ काम हो सकता है, फिर कोई नया भवन खड़ा हो सकता है, कोई नई जीवन-दृष्टि का जन्म हो सकता है।

यह थोड़ी सी बात आज की सुबह मुझे कहनी थी। इस पर और चर्चा करूंगा। कुछ इस पर आपके प्रश्न भी आ जाएंगे तो उनसे भी चर्चा हो जाएगी तो और पहलू साफ हो सकेंगे। इसके आगे और कुछ बातें कल आपसे करूंगा।

अभी ध्यान के लिए बैठेंगे सुबह के। तो ध्यान के लिए दो-तीन बातें समझ लेनी जरूरी हैं। ध्यान के संबंध में जो भी आपने सुन रखा है उस शब्द से मेरा वह अर्थ नहीं है, जो भी सुन रखा हो। जो भी समझ रखा हो, उससे मेरा वह अर्थ नहीं है। आमतौर से ध्यान का मतलब होता है, किसी पर ध्यान। मेरी दृष्टि में जहां हमारे अतिरिक्त और कुछ भी मौजूद है, वहां ध्यान नहीं है। चाहे राम की मूर्ति मौजूद हो, चाहे कोई शब्द मौजूद हो, चाहे कोई और मौजूद हो--कोई बिंदु, कोई चित्र। जहां हमारे अतिरिक्त कुछ भी मौजूद है, वहां ध्यान नहीं है। जहां मैं ही अकेला बच रहा और कुछ भी न बचा, वहां ध्यान है।

ध्यान किसी पर नहीं किया जा सकता, क्योंकि किसी पर करने का मतलब होगा मेरे अलावा और भी कुछ मौजूद है। ध्यान का अर्थ हैः मेरे मन के भीतर कुछ भी मौजूद न रह जाए। धीरे-धीरे मेरे मन के भीतर सब हट जाए और खाली सन्नाटा रह जाए। यह कैसे होगा? क्योंकि हमारे मन के भीतर तो कुछ न कुछ बना रहता है।

दो प्रकार के ध्यान हम प्रयोग करेंगे--एक सुबह और एक रात्रि। दोनों को थोड़ा अलग विभाजित किया है। रात्रि का सोने के पूर्व का ध्यान है, वह मैं रात को समझाऊंगा। सुबह का ध्यान जगने का ध्यान है।

मनुष्य अपने चित्त की दो ही स्थितियों से परिचित है--एक तो जागना और एक सोना। दो स्थितियां मन की हमारी परिचित हैं। इन दोनों स्थितियों के लिए यह दो ध्यान व्यवस्थित किए हैं। यह सुबह का ध्यान है, यह जागरण का ही ध्यान है। इसमें जागना है। भीतर जितने ज्यादा हम जाग सकें। कैसे जागना है? नहीं, बहुत मुश्किल से कुछ लोग जागे हुए होते हैं। अधिक लोग सोए हुए होते हैं। सोया हुआ होना हमारी बहुत गहरी आदतों में से है। हम करीब-करीब सोए हुए चलते हैं, सोऐ हुए बातें करते हैं, सोए हुए खाना खाते हैं। यह सोए हुए होने को तोड़ने की बात है।

जैसे उदाहरण के लिए मैं कहूं--जगह-जगह लोगों से कहा--अगर यहां हम सारे लोग बैठे हैं। शायद कभी कभी आपको किसी क्षण में जागने का अनुभव होता हो; सभी को होता है किसी न किसी क्षण में। अगर एकदम से कोई आकर आपकी छाती पर छुरा रख दे, आप अकेले जा रहे हैं किसी रास्ते से, एकदम से कोई आए और छुरा रख दे। आप एक सेकेंड को जाग जाएंगे। एक सेकेंड को; फिर शायद सो जाएंगे, लेकिन एक सेकेंड को आपके भीतर सन्नाटा हो जाएगा। सब भीतर ठहर जाएगा। एक सेकेंड को सब बात रुक जाएगी और भीतर एक होश मालूम होगा जो कभी मालूम नहीं हुआ था।

एक फकीर हुआ जापान में। वह तलवार चलाना सिखाता था। दूर-दूर से लोग उसके पास आते और तलवार चलाना सीखते। जापान के बादशाह ने अपने लड़के को भेजा और कहलवाया कि मैं बूढ़ा हो गया हूं, तो जल्दी से जल्दी एक साल में सिखा कर उसे वापस कर देना। उस फकीर ने कहा, फिर इसे और कहीं भेजो, क्योंकि जिसे सीखने की जल्दी होती है, वह जल्दी के कारण ही सीख नहीं पाता। सीखने की जल्दी होगी तो सीख नहीं पाएगा। यहां तो बड़े धैर्य की जरूरत है। तो अगर तुम्हें मरने की जल्दी हो तो लड़के को और कहीं सिखाओ। अगर तुम कुछ दिन रुक सकते हो तो हम इसको ले सकते हैं। एक ही शर्त पर, और वह शर्त यह होगी कि अब हमसे दुबारा मत पूछना कि लड़का कब सीख कर बाहर आएगा? खैर, उसके सिवाय कोई वैसा गुरु नहीं था। उसी के पास भेजना पड़ा इसी शर्त पर।

दो साल तक तो उसने लड़के की कोई फिकर ही नहीं की। वह घर की बुहारी लगाता था। कपड़े धोता था; गुरु के पैर दाबता था। लड़का भी परेशान था, उसका बाप भी परेशान था कि शुरुआत कब होगी? अभी तो शिक्षा शुरू नहीं हुई है, अंत का तो कोई सवाल ही नहीं है। एक दिन शुरुआत हुई। वह लड़का बुहारी लगा रहा

था, पीछे से गुरु ने आकर लकड़ी की तलवार से उस पर चोट कर दी। वह बेचारा बुहारी लगा रहा है। उसको पता भी नहीं, पीछे से गुरु आया, लकड़ी से उसने चोट की, वह चौंक कर खड़ा हो गया। उससे पूछाः यह क्या करते हैं आप? उसने कहाः मैंने शिक्षा तुम्हारी शुरू कर दी। अब तुम सम्हल कर रहना। अब किसी भी वक्त-बेवक्त मैं तुम पर चोट करूंगा। तुम झाड़ू लगाते होगे, मैं चोट कर सकता हूं। तुम खाना खा रहे होगे, मैं चोट कर सकता हूं। तुम सो रहे होगे, मैं चोट कर सकता हूं। लड़का बहुत हैरान हुआ कि यह कैसी शिक्षा है! उसे अभी कुछ बताया नहीं गया और चोटें शुरू हो गईं। उसने पूछा कि यह बात क्या है? गुरु ने कहा, तुम इसकी फिकर न करो तो तुम्हें धीरे-धीरे समझ में आएगी कि बात क्या है! बाकी अब तुम तैयार रहना। अब तुम चौंके हुए रहना। अब तुम चौकन्ने रहना। अब मैं कभी भी चोट करूंगा।

वे चोटें शुरू हो गईं। दिन में दस-बीस मौके आते थे। लड़का कुछ पढ़ रहा है किताब, वह पीछे से आकर चोट कर दे। बड़ा मुश्किल काम था, इसमें बचाव भी नहीं हो सकता था। लेकिन जब दस-पांच दिन ऐसा चला तो लड़के के भीतर एक बोध निरंतर सरकने लगा। वह चौकन्ना रहने लगा, कहीं चोट तो नहीं हो रही है? वह पढ़ रहा है तो उसे खयाल है कि कहीं चोट तो नहीं हो रही? वह खाना खा रहा है तो वह जागा हुआ है, बोध है भीतर कि चोट तो न हो जाए। एक महीना बीतते-बीतते चौबीस घंटे उसके भीतर होश की एक धारा बहने लगी कि कहीं चोट न हो जाए, कहीं चोट न हो जाए! दो महीने बीतते-बीतते तो गुरु के पैर की छोटी सी आहट भी सुनाई पड़ने लगी, क्योंकि जितना भीतर होश बढ़ा, उतनी छोटी-छोटी चीजों की सेंसिटिविटी बढ़ती है, संवेदनशीलता बढ़ती है। गुरु उस कमरे में से इधर को चला कि वह तैयार हो जाए, वह आ रहा है। तीन महीने बीतते-बीतते यह हो गया कि गुरु चोट करे तो उसका हाथ पहले उठ जाए। वह पीछे है अलग, इधर अपना काम कर रहा है, उधर गुरु ने चोट की, उसका हाथ उठ जाए। गुरु ने कहा कि ठीक है, बात कुछ बनती है। लेकिन उसने कहाः आप मुझे कुछ सिखाते नहीं। उन्होंने कहाः मैं तुम्हें बड़ी बात सिखा रहा हूं जो सबसे बुनियादी है। फिर तलवार सीख लेना तो बड़ी आसान बात है। होश सीख लेना बड़ी कठिन बात है। और तलवारबाजी में सबसे बड़ी बात होश है। क्योंकि वह आदमी कहां चोट करेगा, वहां एक सेकंड का फासला नहीं होता है। उसकी चोट करने के पहले आपकी तलवार बचाव करने के लिए पहुंच जानी चाहिए। तो तो काम होता है, नहीं तो गए! उसके चोट करने के पहले आपकी तलवार बचाव के लिए पहुंच जानी चाहिए। मतलब यह हुआ कि उसके मन में चोट करने का खयाल उठे, उसके पहले आपके मन में बचाव का खयाल आ जाए, तो बचे नहीं तो गए। इसलिए पहले होश जगा रहे हैं।

तीन महीने बीते, चार महीने बीते, फिर तो वह सोते में उस पर हमला करने लगा। वह लड़का सोया है, जाएगा, उस पर चोट कर देगा। लड़का बड़ा घबड़ाया। उसने कहा कि जागने में बात ठीक थी, मैं सोता हूं, रात, चोट करते हैं? तुम फिक्र न करो। तुम कोशिश सोने में भी होश रखने की करना, क्योंकि मैं चोट करूंगा, रात में दस-पांच दफा चोट करूंगा। जब भी मेरी नींद खुलेगी--बूढ़ा आदमी, उसकी नींद खुली रहती थी। रात चोट होने लगी, एक महीना बीता। रात में भी भीतर, उसके पूरे मन के भीतर, उसके पूरे अनकांशस माइंड तक एक भाव सरकने लगा कि चोट होगी। वह सोया है, लेकिन उसे पता है कि चोट होगी। धीरे-धीरे नींद में भी गुरु आता है, तो उसके पैर उसे सुनाई पड़ने लगे, पैर की चाप, वह उठ कर बैठ जाए। गुरु ने कहाः अब ठीक हुई बात। फिर तो धीरे-धीरे नींद में भी उसका हाथ उठ जाए। वह चोट करे, उसका हाथ वह रोक ले। ऐसे छः महीने बीते। सोते-जागते उसके भीतर एक होश पैदा हो गया।

उसने एक दिन सोचा, यह गुरु मुझ पर तो इतनी चोटें करता है। एक दिन उसे खयाल आया। खयाल आना बिल्कुल स्वाभाविक था। गुरु पढ़ रहा था बाहर बैठा, तो सोचा, आज मैं भी चोट करके देख लूं। वह मुझ पर रोज चोट करता है, तो मैं भी तो चोट करके देखूं। यह उसके मन में खयाल आया। गुरु ने बाहर से चिल्लाया, कहा कि मैं बूढ़ा हूं, सोच कर खयाल करना। मैं तो बूढ़ा आदमी हूं, तू तो जवान है। बहुत घबड़ा गया, उसने कहा कि मैंने तो अभी सोचा ही था। उसने कहाः एक वक्त आएगा जब तेरा होश और बढ़ेगा, तो जो दूसरे के भीतर विचार बनता है वह तक, उसकी पगध्वनि भी सुनी जा सकती है और जानी जा सकती है।

इसको मैं जागरण कह रहा हूं। जागरण का यह मतलब नहीं कि आपकी आंखें खुली हैं और आप बैठे हुए हैं। यह बहुत स्थूल तल पर जागा हुआ होना है। यह जागा हुआ होना नहीं है।

तीसरा प्रवचन

विवेक का अनुशासन

बहुत से प्रश्न हैं। मनुष्य का मन ऐसा है कि उसमें प्रश्न लगते हैं, जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं। और हम यह भी सोचते हैं कि शायद प्रश्नों का कोई हल हो जाए, इसलिए उत्तर की खोज करते हैं। लेकिन उत्तर की खोज से प्रश्न का हल न कभी हुआ है, और न होगा। प्रश्न क्यों उठता है भीतर? जब तक इस बात की खोज न हो तब तक प्रश्न मिटता नहीं है। प्रश्न उठता है, मन की अशांति से और मन के अज्ञान से। उस अशांति को और उस अज्ञान को तो हम मिटाना नहीं चाहते, प्रश्न को हल करना चाहते हैं। तो ज्यादा से ज्यादा यही हो सकता है कि प्रश्न तो हल न हो, उत्तर सीखने में आ जाए। इसीलिए तो हमने बहुत से उत्तर सीख लिए। हमने प्रश्न पूछे और उत्तर मिल गया और उत्तर हमने सीख लिए। लेकिन उत्तर सीखने से भी प्रश्न समाप्त नहीं होता।

अनेक प्रश्न पूछे हैं।

क्या पुनर्जन्म है?

अगर मैं कह दूं कि है, तो क्या प्रश्न समाप्त हो जाएगा? और क्या मुझसे पहले यह प्रश्न औरों से आपने नहीं पूछा होगा? और उन्होंने कहा होगा है या नहीं है, लेकिन आपका प्रश्न तो बना हुआ है; वह तो समाप्त नहीं हुआ। पूछा है, ईश्वर है? मैं कह दूं, है या नहीं; क्या होगा? आपका प्रश्न समाप्त हो जाएगा? आप फिर किसी और से पूछेंगे। प्रश्न तो वहीं का वहीं खड़ा रहेगा। प्रश्न जहां है, वह वहीं खड़ा रहेगा। कोई उत्तर न तो प्रश्न को छूता है और न समाप्त करता है। प्रश्न भीतर बना रहता है और उत्तर भी इकट्ठे होते चले जाते हैं। प्रश्न ही काफी मुसीबत थी, फिर उत्तर और मुसीबत बन जाते हैं, क्योंकि अनेक-अनेक तरह के उत्तर इकट्ठे हो जाते हैं, विरोधी उत्तर इकट्ठे हो जाते हैं। प्रश्न ही परेशानी दे रहा था, अब ये उत्तर भी परेशानी देंगे। क्योंकि ये बहुत किस्म के होंगे, और फिर इन उत्तरों से भी प्रश्न पैदा होने शुरू हो जाएंगे। मूल प्रश्न अपनी जगह होगा और हर उत्तर नये प्रश्न ले आएगा।

किसी ने पूछा है कि यह दुनिया किसने बनाई है, तो कह दिया कि ईश्वर ने। इससे कुछ हल नहीं हुआ। वह जो प्रश्न पूछने वाला मन है, वह पूछेगा, ईश्वर क्यों है या ईश्वर को किसने बनाया? जो उत्तर दिया गया है, वह नये प्रश्न ले आएगा। और अभी तक कोई फिलॉसफी ऐसा उत्तर नहीं दे सकी है, जिससे और प्रश्न पैदा न हुए हों। इधर पांच हजार वर्ष के मनुष्य का अनुभव यही है कि दार्शनिकों ने और तत्व-चिंतकों ने मनुष्य के प्रश्न तो समाप्त नहीं किए, उत्तर बहुत दिए हैं; और हर उत्तर नये प्रश्नों की बाढ़ ले आया। ऐसे प्रश्न बढ़ते गए, उत्तर वहीं के वहीं खड़े हैं।

पहले आदमी के सामने जो प्रश्न थे, वे अभी भी हमारे सामने वैसे के वैसे खड़े हैं। और उत्तर बहुत ज्यादा हो गए। फिर उत्तरों के साथ द्वंद्व और संघर्ष आया और नये प्रश्न आए। तो मैं यह सबसे पहले कह देना चाहता हूं कि मैं आपके प्रश्नों के उत्तर नहीं दे रहा हूं, क्योंकि उत्तर से तो कोई हल होता नहीं। फिर मैं क्या कर रहा हूं?

मैं दो बातें करना चाहूंगा--एक तो आपके प्रश्न को समझना चाहूंगा, और आपसे भी निवेदन करूंगा कि महत्वपूर्ण यह नहीं है कि आप उत्तर खोजें, महत्वपूर्ण यह है कि आपके प्रश्न की पूरी-पूरी पकड़, पूरी खोज, आप

क्यों पूछ रहे हैं? क्यों यह प्रश्न आपके मन में उठा, क्या कारण है? इस प्रश्न में घुसना जरूरी है। इसके भीतर जाना जरूरी है। तो प्रश्न में मैं भीतर चलूंगा। उत्तर देने का मेरा उतना प्रयोजन नहीं है। लेकिन प्रश्न को अगर हम पूरा समझ लें, तो हो सकता है कि प्रश्न हल हो जाए। उत्तर से तो प्रश्न हल नहीं होता।

एक व्यक्ति--अभी मैं गांव में था--आए और उन्होंने कहा, क्या आत्मा मरने के बाद बचती है? क्या आत्मा अमर है? यह तो उनका सीधा प्रश्न है, इसमें भी इस तरह के प्रश्न हैं कि क्या आत्मा अमर है? क्या पुनर्जन्म है? क्या शरीर की मृत्यु के साथ हम भी मर जाते हैं? ऐसे बहुत से प्रश्न हैं। उन्होंने मुझसे पूछाः क्या आत्मा अमर है? अब अगर उत्तर देना है, तो दो ही उत्तर हो सकते हैं। अगर मैं मानता हूं कि आत्मा अमर है, तो कह दूं कि हां। और नहीं मानता हूं तो कह दूं, नहीं है। या मेरा अनुभव अगर हो तो मैं कह दूं हां या नहीं। फिर क्या होगा? बात वहीं अटक कर रह जाएगी, आगे नहीं बढ़ेगी। लेकिन मुझे तो यह दिखाई पड़ता है, तो मैंने उनसे कहा, आप यह क्यों पूछते हैं कि आत्मा अमर है? सच में आत्मा से कोई संबंध है? आपको आत्मा से कोई लगाव है? आत्मा के लिए आपकी कोई खोज है? जीवन भर आपने आत्मा की खोज के लिए क्या किया? वे बड़े धनपति हैं, उन्होंने बहुत धन इकट्ठा किया है। उससे तो आत्मा की खोज का कोई संबंध नहीं। वे एक राज्य के भूतपूर्व मंत्री हैं, और इस समय हिंदुस्तान में तो न मालूम कितने भूतपूर्व मंत्री हैं। कोई वक्त ऐसा आएगा, हिंदुस्तान में सभी भूतपूर्व मंत्री होंगे। लेकिन इससे तो आत्मा की खोज का कोई संबंध नहीं है।

तो मैंने उनसे पूछाः आपने आत्मा की खोज के लिए क्या किया है, जो आपके लिए यह प्रश्न उठ आया है कि आत्मा अमर होती है या नहीं? मैंने कहाः नहीं, यह आपका असली प्रश्न नहीं है और अगर इसका उत्तर आप खोजते रहे, तो कोई हल नहीं हो सकता, क्योंकि यह प्रश्न ही झूठा है। अगर ठीक से अपने भीतर आप खोजेंगे--मैंने उनसे निवेदन किया--तो आप अब ब.ूढे होने लगे हैं और मौत का डर आपके भीतर सरकने लगा होगा। मौत से डर, भय--क्या मैं भी मर जाऊंगा जो कि भूतपूर्व मिनिस्टर था? कि वे ही लोग मरे जो मिनिस्टर नहीं रहे, या कि मैं भी मरूंगा? या कि वे ही लोग मरेंगे जो कि दरिद्र थे और भीख मांगते थे? या कि मैं भी मरूंगा, जिसके पास बहुत बड़ा भवन है, बहुत धन है? क्या मुझे भी मरना होगा? जो कि बहुत विशिष्ट आदमी था? मौत जैसे-जैसे करीब आ रही है, आपको यह भय लग रहा है कि क्या मुझे भी मरना होगा? और आप मरना नहीं चाहते, क्योंकि कौन मरना चाहता है? मृत्यु का भय है, और मरना कोई नहीं चाहता। इसलिए हम पूछते हैं, क्या आत्मा अमर है? और जब कोई कह देता है, हां आत्मा अमर है, तो हम कहते हैं, यह व्यक्ति बड़ी सच्ची बातें कह रहा है। क्यों? क्योंकि आपकी आशा को समर्थन दे रहा है, आपको आश्वासन दे रहा है कि मत घबड़ाओ, मरोगे नहीं।

वह भीतर जो मृत्यु का भय है, उससे बचाव दे रहा है, सिक्योरिटी दे रहा है। एक सुरक्षा दे रहा है। तो फिर ऐसे आदमी के आस-पास लोग पैर छूने को इकट्ठे होते हैं जो आदमी कहता है कि नहीं, आत्मा अमर है। जितने मृत्यु से डरने वाले लोग हैं वे किसी न किसी रूप में आत्मा की अमरता के सिद्धांत में विश्वास करने लगते हैं। इस आत्मा की अमरता के सिद्धांत में उनकी कोई ज्ञान की खोज नहीं है। मृत्यु का भय है।

तो मैंने उनसे कहा, यह सवाल नहीं है कि आत्मा अमर है या नहीं, सवाल यह है, कि क्या आपके भीतर मृत्यु का भय है? और अगर मृत्यु का भय है, तो हम उसी को समझें कि मृत्यु का भय क्यों है, बजाय उत्तर खोजें कि आत्मा अमर है या नहीं है?

क्यों डरे हुए हैं मरने से? केवल वही आदमी मृत्यु से डरा होता है जो ठीक से जी नहीं पाया। जो ठीक से जीआ था वह मृत्यु से डरेगा कैसे? असल बात यह है कि मृत्यु से वही डरता है, जो नाममात्र को जिंदा है, जीवन

का जिसे पता ही नहीं। नहीं तो मृत्यु से डरेगा कैसे? अगर जीवन का मुझे पता हो जाए, तो जीवन की कोई मृत्यु हो ही कैसे सकती है? जीवन और मृत्यु तो विरोधी बातें हैं। जो जीवन है, वह जीवन होने के कारण ही मरने में असमर्थ है। जो मृत है, वह मृत होने की वजह से जीवित होने में असमर्थ है। अगर मुझे जीवन का बोध हो जाए, तो मैं वही कहूंगा जो एक फकीर सेक्सियाद से किसी ने पूछा और उसने कहा। वही आप कहेंगे अगर आपको बोध हो जाए।

एक फकीर के पास कोई गया और उसने पूछाः मृत्यु क्या है? उस फकीर ने कहाः तुम कहीं और जाओ, क्योंकि हम जहां रहते हैं वहां कोई मृत्यु नहीं है। हमारा अब तक उससे मिलना नहीं हुआ।

जैसे सूरज से कोई पूछे कि अंधेरा क्या है? सूरज क्या कहेगा? अभी तक उसका मिलना ही नहीं हुआ--अभी तक। वैज्ञानिक बताते हैं, कई-कई अरब वर्षों से सूरज जल रहा है, चल रहा है, यात्रा कर रहा है। अभी तक उसका मिलना नहीं हुआ है अंधेरे से। और क्या कभी मिलना हो सकता है सूरज का अंधेरे से? नहीं हो सकता है। कोई रास्ता नहीं है कि सूरज का और अंधेरे से मिलना हो जाए। एक ही रास्ता है कि सूरज ही बुझ जाए तो बात अलग है, फिर सूरज नहीं होगा। अंधेरा ही होगा। या तो अंधेरा हो सकता है, या सूरज हो सकता है। दोनों का मिलना नहीं हो सकता। तो या तो भीतर जीवन है या भीतर मृत्यु है। दोनों साथ-साथ नहीं हो सकते हैं। और जीवन का अब तक मृत्यु से कोई मिलना नहीं हुआ। अगर आपको मृत्यु का भय लगता हो तो जानना, आपको अभी जीवन का पता नहीं है, अभी आपका जीवन से कोई संबंध नहीं हो पाया है। आप मरे ही हुए हो। अब और क्या मरोगे! आप जो हो, मरे ही हुए हो और क्या मरोगे! और इसीलिए जो मरा हुआ आदमी है, मौत से डरा रहता है। उसको धीरे-धीरे भीतर लगा रहता है कि मैं मरा हुआ तो हूं।

वह जो मृत्यु का भय है, वह मरे होने की निरंतर जो अनुभूति होती है--लेकिन मरा हुआ आदमी क्या मरेगा? आप जिंदा हैं, आपको जीवन का अनुभव है? आपने जाना कि मैं जीवित हूं? नहीं, इसका आपको कोई सीधा पता नहीं है। और इसीलिए आप मौत से डरे हुए हैं। नहीं तो जीवन की अनुभूति के बाद मृत्यु का कोई प्रश्न नहीं है, भय का कोई सवाल नहीं है। फिर जब यह भय भीतर पकड़ता है, तो हम अच्छे-अच्छे प्रश्न बनाते हैं कि क्या आत्मा अमर है? क्या शरीर और आत्मा अलग हैं? और फिर इनके उत्तर होते हैं। वे उत्तर हमें कहीं नहीं ले जा सकते, क्योंकि प्रश्न जहां था, वहां तक तो हमने बात पकड़ी नहीं, पहुंचे नहीं।

इसलिए इन तीन दिनों में प्रश्नों में प्रवेश की कोशिश करूंगा। उत्तर देने की कोई मंशा नहीं है, क्योंकि न मैं कोई आपका गुरु हूं, जो आपको उत्तर दूं। वैसे गुरु बहुत हैं मुल्क में, जिनसे उत्तर मिल सकते हैं। और उनकी वजह से दुनिया में जितनी परेशानी है, उतनी किसी की वजह से नहीं है। उन्होंने बहुत आपको उत्तर सिखा दिए हैं, आपको तोता बना दिया है। मैं आपको तोता नहीं बनाना चाहता, न कोई उत्तर सिखाना चाहता हूं। मैं तो यह निवेदन करना चाहता हूं कि प्रश्न आपके भीतर है तो उत्तर बाहर से कैसे आएगा? जहां प्रश्न है वहीं उत्तर खोजना होगा। नहीं, प्रश्न तो भीतर है, उत्तर बाहर है, दोनों का मेल कहां होगा? वे मिलेंगे कहां, एक-दूसरे को काटेंगे कहां?

प्रश्न भीतर है तो जरूर ही उत्तर भी भीतर ही खोजा जा सकता है। प्रश्न बाहर हो तो उत्तर भी बाहर खोजा जा सकता है। विज्ञान इसीलिए तो बाहर उत्तर खोजने में समर्थ हो गया है, क्योंकि उसके प्रश्न भी बाहर हैं। लेकिन धर्म बाहर उत्तर खोजने में समर्थ नहीं हो सकता, उसके प्रश्न भीतर हैं। विज्ञान के, साइंस के सब प्रश्न बाहर हैं। इसलिए वह उत्तर खोजने में बाहर ही समर्थ हो गया है। जहां प्रश्न हैं, वहीं उत्तर खोज लिया गया। प्रयोगशालाएं बना ली गईं बाहर की दुनिया में और खोज शुरू हो गई। लेकिन आत्मिक और जीवन के प्रश्न तो

भीतर हैं, और उनको भी बाहर खोजने जाईएगा तो कोई हल नहीं है। उनको खोजने तो भीतर जाना पड़ेगा। इसलिए उत्तर की खोज में मत जाइए, प्रश्न की जड़ को खोजिए, उसकी रूट्स कहां हैं? वह आपके भीतर पैदा क्यों हो रहा है?

मैं आपसे पूछता हूं, क्यों पूछना चाहते हैं आत्मा अमर है? जरूर मृत्यु का भय होगा। और आश्वासन चाहते हैं कि कोई कह दे कि आत्मा अमर है तो हम विश्वस्त हो जाएं। लेकिन मैं आपसे निश्चित कहता हूं, आप मरोगे; आप बच नहीं सकते। जो बचेगा उसका अभी आपको पता नहीं है, वह आप अभी हो ही नहीं। जो मरेगा, वही आप अभी हो। आपका नाम मरेगा, आपका शरीर मरेगा, आपका विचार मरेगा, आपकी वासनाएं मरेंगी, आपका धन, आपके मित्र, आपका सब छूटेगा। अभी आपको उसका कोई पता नहीं है, जो नहीं मरता। आप तो पक्का ही मरोगे, इतना तय समझना। आप बचने वाले नहीं हो। और आपके बचने की जरूरत भी क्या है? आपके होने का फायदा भी क्या है? आप बचे हैं, इससे अर्थ भी क्या है, प्रयोजन भी क्या है? है क्या आपके भीतर, जिसको बचाने के लिए इतने परेशान हैं? कुछ भीतर, जो बचाना चाहिए, जिसकी इस जगत में होने की जरूरत है?

साधारणतः हम सिवाय बोझ और भार के क्या हैं? साधारणतः हम क्या है? क्या है हमारे भीतर, जो बचे? नहीं, हमारे भीतर कुछ भी नहीं है जिसको हम जानते हैं; जो बचे। मगर इसे बचाने की इच्छा भीतर होती है। और इसे बचाने की इच्छा तब तक होती रहेगी, जब तक उसका पता न चले जो कि बचता है। हमेशा बचा हुआ है। तब तक यही हमारी आत्मा बनी हुई है--यही। जब आप पूछते हैं, आत्मा बचेगी? तो आप पूछते हैं, राम बचेंगे, विष्णु बचेंगे, कृष्ण बचेंगे? न; न राम बचेंगे, न विष्णु बचेंगे, न कृष्ण बचेंगे, क्योंकि यह तो आत्मा ही नहीं है। आपका नाम, आपका रूप, आपका शरीर, आपका व्यक्तित्व, यह कोई नहीं बचेगा, यह सब जाएगा। यह तो जाने वाला है। यह तो जा रहा है, चौबीस घंटे हाथ के बाहर जा रहा है। यह तो आप अभी जब यहां आए थे और जब यहां से लौटेंगे तो उसमें से बहुत सा हिस्सा मर चुका होगा। उसको आप लेकर इस जगह पर आए, तीन दिन के भीतर उसमें से बहुत कुछ मर जाएगा। आप वही आदमी थोड़े वापस लौटोगे, जो आए थे! रोज मर रहे हैं, रोज मरे जा रहे हैं। वह तो मर रहा है, वह तो बहती हुई धार है, जिसको आप बचाना चाह रहे हैं। उसमें कुछ बचता नहीं है।

देह प्रतिक्षण बदल रही है, मन प्रतिक्षण बदल रहा है। सब बदल रहा है। नाम के धोखे में बात अटकी है। आपको लगता है, वही मेरा नाम है जो कल था। इसलिए सोचते हैं कि मैं वही हूं। अगर आपकी पहले दिन की तस्वीर आपके सामने रख दी जाए, जिस दिन आप पैदा हुए, दुनिया में, वह आदमी खोजना कठिन है, जो पहचान ले कि यह मेरी ही तस्वीर है। और अगर मां के पेट में जिस दिन, पहले दिन आपका कंसेप्शन हुआ, जिस दिन वह अणु आप बने मां के पेट में, अगर वह आपके सामने रख दिया जाए, आप कहोगे, बड़े पागलपन की बात है कि यह भी मैं था। लेकिन अगर आप वह नहीं थे, तो अभी जो आज हैं, यह आप कैसे हो सकते हैं? वह भी एक घड़ी थी आपकी जिंदगी की, यह भी एक घड़ी है। वह भी बीत गई है, यह भी बीत जाएगी। अगर वह जो मां के पेट में आप अणु बने थे वह नहीं थे तो आप अभी जो हैं, यह भी कैसे रहेंगे? यह भी उसी प्रोसेस, उसी प्रक्रिया का एक क्षण है। यह भी बीत रहा है, यह भी बीता जा रहा है। आप सोचते रहेंगे और यह बीत जाएगा।

जन्म के बाद हम प्रतिक्षण मर रहे हैं। और बड़े आश्चर्य की बात है, बड़ी तेजी से मर रहे हैं। जन्म के बाद आदमी बहुत तेजी से मरता है। फिर धीरे-धीरे मरने की रफ्तार कम हो जाती है, ज्यादा नहीं है। बूढ़ा आदमी धीमे मरता है, बच्चा बहुत जल्दी मरता है। जब पहले दिन बच्चा पैदा होता है, उसका हृदय एक सौ चालीस दफा

धड़कता है उतनी देर में, जितनी देर में बूढ़े का हृदय सत्तर दफे धड़कता है। जितनी तेजी से हृदय धड़कता है उतनी मौत करीब आती है। तो बच्चे तेजी से मरते हैं बूढ़े की बजाय। ठीक भी है, जो जिंदा ज्यादा है वह उतना जल्दी मरता है। बूढ़ा तो मरने के ही करीब पहुंचने लगा, इसलिए वह धीमे मरने लगता है। रफ्तार कम होने लगती है मरने की। पहले दिन से यह मरने का क्रम है। और इसी मरने के क्रम को हम जीवन समझ लेते हैं, इससे भूल हो जाती है। फिर हम पूछते हैं, क्या आत्मा अमर है? भूल कुछ हो जाती है। फिर हम पूछते हैं, क्या आत्मा अमर है? भूल कुछ और है। इस जीवन को हम जीवन समझे हुए हैं, जो कि जीवन नहीं है। जो कि बिल्कुल जीवन नहीं है। जो कि ग्रेजुअल डेथ है, जो कि धीरे-धीरे मरते जाने का नाम है। इसको ही हम जीवन समझे हुए हैं, तो डर लगता है भीतर। क्योंकि यह जीवन तो हमें दिखता है, रोज कोई मर जाता है। हमको लगता है, मैं भी मरूंगा। तो हम पूछते हैं, क्या मेरे बचने के कोई उपाय हैं?

नहीं, यह प्रश्न झूठा है। अभी पूछना यह चाहिए, क्या मैं जिंदा हूं? या मरा हुआ हूं? क्या मैं जिंदा हूं या कि मैं मरा हुआ हूं? यह पूछना चाहिए। जिसको मैंने जिंदगी समझा है, क्या वह जिंदगी है? क्या वह जीवन है?

नहीं, वह जीवन नहीं है। तो यह मत पूछिए कि मरने के बाद आप मरेंगे या बचेंगे? यह पूछें कि अभी जब आप जिंदा हैं तो जिंदा हैं, या मरे हुए हैं? तो कुछ खोज पैदा होगी, तो जिंदगी में कुछ हो सकता है। अगर यह इसी वक्त किसी को एहसास हो जाए कि मैं मरा हुआ हूं बिल्कुल, तो उसके भीतर एक पीड़ा और प्यास पैदा होगी, जो जीवन की खोज में लग जाए। लेकिन उस पीड़ा को, उस प्यास को एक झूठा प्रश्न बना कर आप कागज पर लिख देते हैं, क्या आत्मा अमर है? बात सब गड़बड़ हो जाती है। और जैसा आपका प्रश्न है, वैसे गुरु भी मिल जाते हैं, वे कह देते हैं--हां या नहीं।

न आपको पता है, न उन्हें पता है। क्योंकि जो आपके प्रश्न का हां और ना में उत्तर देता है वह आपके ही तल का होगा। उसमें कोई भेद नहीं हो सकता है। वह आपकी ही बुद्धि का होगा। आपसे पहले दूसरों से भी उसने ऐसे ही प्रश्न पूछे होंगे। उसने उत्तर इकट्ठे कर लिए हैं, अब दूसरे प्रश्न पूछने वालों को वह उत्तर बता रहा है। लेकिन जो जीवन को समझेगा थोड़ा, उसके लिए प्रश्न इंगित हो जाते हैं स्थितियों के। प्रश्न अर्थपूर्ण नहीं रह जाते हैं। भीतर कौन सी स्थिति है?

एक आदमी को बुखार चढ़ा हो, सन्निपात हो, वह अनर्गल बक रहा हो, वह पूछ रहा हो कि यह मेरी खाट आकाश में उड़ी जा रही है। उत्तर को जा रही है या पश्चिम को? अगर आप वहां हों तो क्या करेंगे? आप उसको बताएंगे कि नहीं यह पश्चिम को जा रही है, नहीं यह उत्तर को जा रही है; या कहेंगे, नहीं, खाट कहीं भी नहीं जा रही है! नहीं, आप उसके प्रश्न से समझ जाएंगे कि सन्निपात में हो गया। आप उसको उत्तर नहीं देंगे, फौरन चिकित्सक को ढूंढने निकलेंगे, क्योंकि उसके उत्तर देने में समय खराब करना खतरनाक है। आप उसके उत्तर नहीं देंगे, किसी चिकित्सक को खोजेंगे, उसका इलाज करेंगे। और जब वह ठीक हो जाएगा तो क्या आप आशा करते हैं कि वह फिर पूछेगा कि मेरी खाट पश्चिम में उड़ रही है कि दक्षिण मे? वह नहीं पूछेगा। उसका प्रश्न उसके भीतर रुग्णता का सूचक था। रुग्णता चली गई, प्रश्न भी गिर गया।

हमारे चित्त में प्रश्न लगते हैं, क्योंकि चित्त अशांत है। प्रश्न के उत्तर नहीं हो सकते। अशांति चली जाए, साथ ही प्रश्न भी गिर जाते हैं। निष्प्रश्न जब चित्त हो, जब उसमें कोई प्रश्न न उठते हों, तो समझ लेना कि कहीं न कहीं से शांति के जगत में प्रवेश हुआ है। जब तक प्रश्न उठते रहें, तब तक जानना मन रोग में है, बीमारी में है। किसी न किसी तरह का सन्निपात पकड़े हुए है। इसलिए पूछ रहे हैं, वह उस सन्निपात के मरीज का प्रश्न, कि मेरी खाट पश्चिम में उड़ती है या पूरब में? हंसी योग्य लगता होगा। लेकिन हमारे ये प्रश्न कि मरने के बाद मैं

मरूंगा या नहीं, उससे भी ज्यादा हंसी योग्य है। वह तो फिर भी कुछ पार्थिव बातें पूछ रहा है। हम और भी अपार्थिव बातें पूछ रहे हैं। वह तो फिर भी कोई जमीन की बातें पूछ रहा है, हम तो आकाश की बातें पूछ रहे हैं।

तो आपके प्रश्नों के उत्तर नहीं दूंगा। आपके प्रश्नों को समझने की कोशिश करूंगा। आपके प्रश्नों के पीछे आपके मन की स्थितियां क्या हैं, उनको पकड़ने की कोशिश करूंगा। उनकी चर्चा करूंगा। हो सकता है उस चर्चा में आपको कुछ दिखाई पड़ जाए। आपका प्रश्न व्यर्थ हो जाए, स्थिति महत्वपूर्ण हो जाए, जिससे प्रश्न पैदा हुआ, तो आपके जीवन में एक क्रांति हो सकती है। एक परिवर्तन हो सकता है, खोज शुरू हो सकती है।

सबसे पहले प्रश्न पूछा हैः उधार ज्ञान असत्य है। वह ज्ञान हमें आपसे मालूम हुआ। तो यह ज्ञान भी उधार है और उधार होने की वजह से असत्य हुआ।

बिल्कुल ही असत्य हुआ। इसको भूल कर भी सत्य मत मान लेना, क्योंकि इससे फर्क नहीं पड़ता कि मैं कह रहा हूं या कोई और कह रहा है। जो भी आपके पास दूसरे से आ रहा है, वह असत्य है। मैं कह रहा हूं, इसलिए वह सत्य नहीं हो जाएगा। जो भी दूसरे से आ रहा है, वह असत्य है। और इस बात के लिए सचेत होना अत्यंत जरूरी है कि मैं इस बात को अपने भीतर स्मरणपूर्वक तराजू बना लूं कि मैं तो उसी ज्ञान की खोज में लगा रहूंगा, जो मेरे भीतर से आए। और उस सब ज्ञान को सुनूंगा और समझूंगा, पहचानूंगा, विचार करूंगा, जो बाहर से आता है। लेकिन उस ज्ञान को उस जगह नहीं रखूंगा, उस सिंहासन पर नहीं बिठा लूंगा जहां वह ज्ञान बैठने को है, जो मेरे भीतर से आना है। उस सिंहासन को खाली रखूंगा। क्योंकि अगर वह भर गया, किसी ने भी उसे भर दिया, तो फिर वह ज्ञान, जो भीतर से आने वाला है, रुक जाएगा। उसके लिए जगह चाहिए। उसके लिए स्थान चाहिए जहां वह बैठ सके।

तो अगर उस सिंहासन पर मैं बैठ गया--महावीर स्वामी को धक्का देकर, क्राइस्ट को धक्का देकर या किसी और को धक्का देकर मैं बैठ गया, या मुझे धक्का देकर कोई और बैठ गया, तो वह सिंहासन खाली नहीं रह जाएगा। उस सिंहासन को खाली रखना, जहां वह विराजमान होगा, जो भीतर से आता है। उस सिंहासन को किसी के भी ज्ञान से भरना मत। चाहे वह कितनी ही प्यारी बात लगे, चाहे वह आदमी कितना ही प्यारा मालूम पड़े, चाहे वह कितनी ही श्रद्धा उत्पन्न करे, लेकिन उस सिंहासन पर किसी को मत बिठालना, जो स्वयं से आविर्भूत ज्ञान के लिए है। क्योंकि वहां कोई भी बैठ गया तो वह ज्ञान नहीं उठ पाएगा जो उठना चाहिए था। उस जगह को तो खाली रखना। हृदय में एक स्थान खाली रखना और किसी को मत बैठने देना उस जगह पर।

अगर निरंतर जागरूक रह कर उस जगह को खाली रखा जा सका, अगर उस जगह पर किसी को नहीं बैठने दिया गया, तो यही साधना बन जाएगी उस ज्ञान के जन्म के लिए। यही आमंत्रण बन जाएगा उसके लिए, यही पुकार हो जाएगी उसके लिए, जो भीतर सोया है--कि उठो, तुम्हारा सिंहासन खाली है। और हम किसी को उस पर बिठालने को राजी नहीं हैं; किसी को भी। चाहे वह कितने ही बड़े महात्मा हों, कितने ही बड़े अवतार हों, कितने ही बड़े ज्ञानी हों, तीर्थंकर हों, सर्वज्ञ हों, किसी को उस जगह बिठालने को हम राजी नहीं हैं जो कि उसके लिए है, जहां कि आत्मा से आविर्भूत बैठेगा। अगर यह सतत बोध बना रहे और वह जगह खाली बनी रहे, तो यह खाली होना ही निमंत्रण हो जाएगा जागने के लिए, आमंत्रण हो जाएगा। हमारा मन तो भरा है। अगर सत्य आता भी हो तो लौट जाता होगा। उसके लिए खाली जगह चाहिए।

नानइन नाम का एक फकीर हुआ है। एक बहुत बड़ा पंडित उससे मिलने आया था, और उस पंडित ने उससे पूछा कि क्या ईश्वर के संबंध में मुझे कुछ बताइएगा? क्या सत्य के संबंध में मुझे कुछ बताइएगा? नानइन ने कहा, बहुत थके-मांदे हैं। बैठ जाओ, थोड़ा चाय पी लें, फिर कुछ कहूं। वह नानइन भीतर गया। बड़ा अच्छा फकीर रहा होगा। चाय से डरता नहीं था। बड़े कमजोर और आधे महात्मा भी हैं चाय से भी डर जाते हैं। छोटी-छोटी चीजों से डर जाते हैं। कुछ रहा होगा आदमी अच्छे किस्म का। वह भीतर गया और चाय बना कर खुद ले आया। चाय से डरता भी नहीं था, बनाकर ले आया। तो फकीर बड़ा अदभुत रहा होगा। क्योंकि फकीरों को आदतें दूसरों से बनवाने की तो होती हैं, दूसरे के लिए बनाने की नहीं होती हैं। वे सेवा ले तो सकते हैं, सेवा कर नहीं सकते हैं। और ऐसे लोग फकीर के नाम से शोषण करते हैं। सेवा लेना तो बहुत आसान है, सवाल तो हमेशा देने का है। वह भीतर गया और चाय बना लाया। बाहर आया, उसने कहाः थोड़ा चाय ले लें, और फिर मैं बात करूं। उसने प्याली उस आदमी के हाथ में थमा दी और केतली से चाय ढालने को कहा। प्याली भर गई, लेकिन वह चाय को ढालता ही गया। नीचे का बर्तन भी भर गया। लेकिन वह चाय को ढालता ही गया। तो चाय गिरने को होने लगी। उस आदमी ने कहाः ठहरिए, क्या आप भूल गए हैं? भरते चले जा रहे हैं। भर गई है, मेरी प्याली में कोई जगह नहीं है।

नानइन ने कहाः तुम्हें प्याली के संबंध में जितना होश है, उतना मन के संबंध में नहीं। तुम प्याली के बाबत भी जितने जागे हुए हो कि प्याली ज्यादा भर जाएगी तो फिर उसमें जगह नहीं बचेगी ढालने को। तुम्हारे मन में जगह है? और परमात्मा आने को आज कहे कि मैं आता हूं, मेहमान बनता हूं, तो तुम्हारे भीतर कोई जगह है? कोई रिक्त स्थान है? कोई खाली स्थान है? कोई कक्ष मन में छोड़ रखा है उस मेहमान के आने के लिए? जब वह द्वार पर दस्तक देगा तो तुम्हारे घर में तो इतनी भीड़ है, इतने मेहमान वहां ठहरे हुए हैं, कौन उसको जगह देगा? तो नानइन ने कहाः तुम सोचते हो कि प्याली भर गई तो चाय और न बनेगी। लेकिन तुमने कभी सोचा कि तुम्हारे मन की प्याली भरी हुई है, उसमें कोई खाली जगह है?

हम बाहर तो मंदिर बनाते हैं, लेकिन भीतर कोई खाली मंदिर है, जहां भगवान आ सके और ठहर सके? कोई निर्दोष स्थल है? कोई इनोसेंस है? कोई जगह है, जो पवित्र छोड़ दी गई हो, जहां हमारे कोई चरण नहीं पड़े, जहां मनुष्य का हमने कुछ भी प्रविष्ट नहीं होने दिया? जहां मनुष्य की क्षुद्रताओं की कोई ध्वनि नहीं पहुंचने दी, जहां मनुष्य के शास्त्रों को हमने कोई मार्ग नहीं दिया, जहां हमने एक जगह छोड़ रखी है--उसके लिए, जो हमारे प्राणों का प्राण है। जब वह आएगा तो ठहर जाएगा। उसके पहले वहां हमने किसी को नहीं प्रविष्ट होने दिया। तो मुझे भी वहां प्रविष्ट नहीं होने देना है। किसी को भी प्रविष्ट होने देने का कारण नहीं है। वह जगह आपके ही आत्यंतिक, जो आपकी आत्मा है, वह जो भीतर परमात्मा सोया है, उसके लिए है। उस पर किसी को बैठने मत देना। बड़े से बड़ा अतिथि आ जाए, उसके पैर छूना, उसे नमस्कार कर लेना, लेकिन उस जगह मत बैठने देना।

और जो सच में बड़ा है, वह इस बात को समझेगा और उसके कारण प्रसन्न होगा और आनंदित होगा कि तुमने एक जगह उसके लिए छोड़ रखी है, परम अतिथि के लिए। इससे वह नाराज नहीं होगा। और जो इससे नाराज हो जाए, समझ लेना वह तुम्हारा शोषण करने आया था। वह तुम्हारे मन के सिंहासन पर विराजमान होना चाहता था। और किसी के भी सिंहासन पर केवल वे ही विराजमान होना चाहते हैं जो दरिद्र हैं और भिखमंगे हैं, उनको किसी के ऊपर बैठने में मजा आ जाता है। और ऊपर बैठने की बहुत तरकीबें हैं। कोई राजपथ पर बैठ जाता है तो ऊपर बैठ जाता है। कोई गुरु बन कर बैठ जाता है तो ऊपर बैठ जाता है। कोई

अथारिटी बन कर बैठ जाता है तो ऊपर बैठ जाता है। कोई कहने लगता है कि मुझे ज्ञान हुआ। जो मुझे ज्ञान हुआ यही सच है, तो भी ऊपर बैठ जाता है। ऊपर बैठने की बहुत-बहुत तरकीबें हैं। राजा भी ऊपर बैठते हैं, गुरु भी ऊपर बैठते है, सब ऊपर बैठते हैं। और यह जो ऊपर बैठने की कोशिश है, यह दरिद्र मन का लक्षण है। जो आदमी समृद्ध होता है, वह किसी के ऊपर नहीं बैठना चाहता है। जिस आदमी के भीतर सच में कुछ सम्पदा आती है, उसे फिर आपकी सम्पदा के मालिक होने की इच्छा नहीं रह जाती है। जो आपका गुरु होना चाहे, इसी कारण समझ लेना, गुरु होने के योग्य नहीं है। जो आपका गुरु न होना चाहे, समझना कि वह आपका मित्र तो कम से कम हो ही सकता है।

उस जगह किसी को बिठाना नहीं है। तो मैंने जो कहाः वह सब आपके लिए असत्य है, मेरे लिए सत्य होगा। आपके लिए असत्य है। इस बात का खयाल रखना। महावीर ने जो कहा वह उनके लिए सत्य है, आपके लिए असत्य है। बुद्ध ने जो कहाः वह बुद्ध के लिए सत्य है, आपके लिए असत्य है।

असत्य और सत्य की मैं व्याख्या ही यह कर रहा हूं कि जो आपकी अनुभूति से उत्पन्न हो वह सत्य है, जो आपकी अनुभूति से न आया हो वह असत्य है। और आपकी अनुभूति से जो बात नहीं आती उसे कभी भीतर ले जाने की आवश्यकता नहीं है। उस पर विचार करना।

तो मैं जो आग्रह करता हूं, वह यह नहीं कि मुझे स्वीकार करना, मेरा आग्रह है विचार करना। मेरा आग्रह यह नहीं कि मैं जो कहूं वह सत्य है। मैं तो कह ही यह रहा हूं कि जो भी दूसरा कहेगा वह सत्य नहीं हो सकता। लेकिन वह आपके विचार के लिए भूमिका बन सकती है। वह आपकी छलांग के लिए सीढ़ी बन सकती है। आप उसके माध्यम से सोच-विचार की दुनिया में प्रविष्ट हो सकते हैं। आपके भीतर एक जागरण हो सकता है खोज का। और खोज का जागरण तभी होगा, जब आप बाहर के सहारे छोड़ देंगे। जो आदमी आदी हो जाता है दूसरों के कंधों पर हाथ रख कर चलने का, वह अपने चलने की क्षमता खो देता है। और जो आदमी दूसरों की आंखों से देखने को उत्सुक हो जाए, वह अंधा हो जाएगा।

कोई रास्ता नहीं है दूसरों के पैरों से चलने का। और कोई रास्ता नहीं है दूसरों की आंखों से देखने का। कोई रास्ता नहीं है दूसरे के हृदय के साथ प्रेम अनुभव करने का। जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, जो भी सार्थक है वह अत्यंत निजी होता है। उसका आविर्भाव, उसकी स्फुरणा भीतर होती है और केंद्र पर होती है। यह जो मैंने कहा, सबके लिए कहा है। उसमें मैं सम्मिलित हूं। अपने को बचा कर नहीं कहा है।

दूसरा प्रश्न पूछा हैः बच्चे का जन्म होने के तुरंत बाद उसको एक कमरे में रखा जाए, सिर्फ उसको दूध और उत्तरोत्तर खुराक से पोषण दिया जाए, न कोई ज्ञान-शिक्षा दी जाए, तो क्या उसको सम्पूर्ण सत्य का दर्शन होगा?

ठीक बात पूछी है। जो मैं निरंतर कह रहा हूं, अगर मन शून्य हो जाए, तो सत्य का दर्शन हो जाएगा। तो यह बात बिल्कुल ठीक पूछी है। एक बच्चे को हम बिल्कुल बंद कर दें, भोजन दें, लेकिन कोई शिक्षा न दें, कोई ज्ञान न दें। लेकिन यह बंद कौन करेगा? यह बंद करना शिक्षा हो गई। यह बंद करना बच्चे का आरोपण हो गया। यह तो व्यवस्था हो गई। यह तो बच्चे को ढालने की कोशिश शुरू हो गई। यह तो बच्चे को आप ढाल रहे हैं। आप कमरे मं बंद होना सिखा रहे हैं, कोई हिंदू धर्म में बंद होना सिखाता है, कोई जैन धर्म में बंद होना सिखाता है। आप कमरे में बंद होना सिखा रहे हैं। आपने दीवालें खड़ी कर दी हैं।

शिक्षा नहीं देंगे तो शिक्षा की रोक आपने शुरू कर दी। लेकिन बच्चे पर आप कुछ कर रहे हैं जरूर। बिना किए मन नहीं मानता। तो बच्चे को कुछ करेंगे जरूर, कोई दीवाल में बंद करेंगे। नहीं, मैं यह नहीं कह रहा हूं, इससे तो बच्चा जड़ हो जाएगा। क्योंकि आप उसको जड़ता की शिक्षा दे रहे हैं, जड़ता का संस्कार डाल रहे हैं। इससे सत्य का ज्ञान नहीं हो जाएगा। सत्य के ज्ञान के लिए बच्चे को न तो हिंदू बनाना जरूरी है, न मुसलमान; न कोठरी में, दीवाल में बंद करना जरूरी है। सत्य के लिए बच्चे को मुक्त करना जरूरी है। बांधना नहीं, बंद करना नहीं, मुक्त करना। उसे छोड़ना जीवन के अनुभव में, और उसे अनुभव लेने की स्वतंत्रता देना, और उसे सहारा देना कि वह अनुभव कर सके। और जब वह भूलें करे, तभी आपकी कीमत है कि उस वक्त भी आप सहारा देना। क्योंकि भूलें भी ज्ञान लाती हैं। जब वह भूलें करे, तब भी आप उसके साथ खड़े रहना। आपका प्रेम उस वक्त चूक न जाए। क्योंकि जब कोई भूल में होता है, अगर उसे प्रेम मिले और सहारा मिले तो भूल बहुत जल्दी दूर हो जाती है। लेकिन भूल के वक्त तो अपने भी दूर हो जाते हैं और पराए हो जाते हैं, इसलिए भूल मजबूत हो जाती है। आदमी अकेला रह जाता है।

तो बच्चे को अनुभव मिले जीवन का, स्वतंत्रता से वह सोच सके, विचार कर सके, हम उस पर थोपें नहीं अपना कुछ। हम उस पर दबाव न डालें, उसे कुछ बनाने की कोशिश न करें, बल्कि वह जो हो सकता है, उसमें सहारा बनें। हम उसे प्रेम दें, अपना ज्ञान न दें। हम उसे इतना प्रेम दें जितना हमारे पास हो। लेकिन अपना ज्ञान नहीं दें, क्योंकि ज्ञान उसे बंधन में ले जाएगा, प्रेम उसे मुक्त करेगा। और उसे जीवन में बढ़ने का साहस दें। उसे साहस दें, उसे हिम्मत दें, उसे चीजों को तोड़ने का साहस दें। जो गलत दिखाई पड़े उसके विरोध में खड़े होने का साहस दें, चाहे वह गलत हमीं क्यों न हों। जो बाप अपने बच्चे को इस बात के लिए भी तैयार करेगा कि अगर मैं गलत हूं तो मेरे विरोध में खड़े हो जाना, मैं तुझे प्रेम करूंगा। वह बच्चे को एक मुक्ति दे रहा है, वह जीवन के अनुभव के लिए विस्तार दे रहा है। वह बच्चा सीखेगा--दीवालें नहीं, बंद होना नहीं, खुलना, मुक्त होना।

और जितना ज्यादा खुलेगा और खोजेगा उतना ही ज्यादा क्रमशः उसके भीतर विचार, परम्पराएं, सम्प्रदाय, पंथ इकट्ठे नहीं होंगे। जड़ता नहीं इकट्ठी होगी। उसका चित्त सदा मुक्त रहेगा, सदा सीखने को आतुर रहेगा। सदा खुला रहेगा। हमेशा सीखने को तैयारी रहेगी। और जिसका सीखने को हमेशा खुलापन है, ओपन है, मस्तिष्क के दरवाजे बंद नहीं हैं, वह जरूर एक न एक दिन अपने ही पैरों से चल कर सत्य तक पहुंच जाता है। लेकिन हम सब एक-दूसरे को बांध देते हैं और जंजीरें बना देते हैं और जंजीरों में अटका देते हैं। और सोने की जंजीरें पहनाते हैं और उनको फूल लगा देते हैं और सुंगध छिड़क देते हैं। वह जंजीरें जिसके पैर में होती हैं, वह भी उनको प्रेम करने लगता है। और दीवालें बनाते हैं और कहते हैं, यह घर है। और वह कैद होती है।

और इस भांति हरेक के मस्तिष्क को हम जड़ करने की पूरी कोशिश करते हैं। समाज का इसमें हित है, लाभ है। समाज दुनिया में स्वतंत्र और सत्य को उपलब्ध व्यक्तियों को नही चाहता है। क्योंकि अगर ऐसे व्यक्ति होंगे तो जगत में निरंतर क्रांति में जीना पड़ेगा--निरंतर। अगर ऐसे बच्चे होंगे जो सत्य की खोज में होंगे तो एक रिबेलियन, तो एक विद्रोह चौबीस घंटे चलेगा। क्योंकि दुनिया है बिल्कुल गलत, समाज है बिल्कुल खराब, व्यवस्था है बिल्कुल सड़ी हुई। अगर थोड़ा भी विवेक जाग्रत होगा बच्चों का, तो इस सबमें आग लगा देंगे। इस सबको बचाने के लिए समाज बच्चों को विवेक नहीं देना चाहता, विचार देना चाहता है। हिंदू बनाना चाहता है, मुसलमान बनाना चाहता है, आदमी नहीं बनाना चाहता। धार्मिक आदमी से ज्यादा खतरनाक और डेंजरस आदमी नहीं होता, क्योंकि धार्मिक आदमी का मतलब है, जो भीतर से, जिसके भीतर क्रांति की आग जली है। वह तो आग लगा देगा जो भी गलत है उसमें।

और सब तो गलत है हमारा। जिसको हम समाज कहते हैं, वह गलतियों का इकट्ठा ढांचा है। सब गलत है। न वहां प्रेम है, न वहां आनंद है, न वहां शांति है। सब गलत है। इस गलत ढांचे को बनाए रखने के लिए बच्चों को बचपन से गलत रखना पड़ता है। उनको गलत सिखाना पड़ता है। उसके मस्तिष्क को ढालना पड़ता है कि वह ठीक आदमी न हो जाए। क्योंकि ठीक आदमी आपके समाज के विरोध में खड़ा हो जाएगा। इसलिए जब कभी ठीक आदमी पैदा हो जाता है, तो समाज या तो उसको सूली पर लटकाता है, या गोली मार देता है, या जहर पिला देता है।

आखिर सुकरात से ठीक आदमी जमीन पर कभी हुआ? लेकिन समाज ने उसे जहर पिलाया। क्यों? क्योंकि ठीक आदमी गैर-ठीक समाज के विरोध में खड़ा हो जाएगा। और ठीक आदमी मरने से नहीं डरता है। सिर्फ गैर ठीक आदमी मरने से डरता है। इसलिए उसको डराने का कोई उपाय भी नहीं रह जाता है। तो फिर उसे मिटाने के सिवाय कोई रास्ता नहीं रहता। ठीक आदमी पैदा हो जाए तो समाज उसकी हत्या करता है। और समाज गैर ठीक आदमी को पैदा करना चाहता है। सुकरात को समाज बरदाश्त नहीं कर सकता। क्राइस्ट को बरदाश्त नहीं कर सकता, मंसूर को बरदाश्त नहीं कर सकता। महावीर होंगे तो समाज पत्थर मारेगा, कान में कीलें ठोंकेगा। हां, जब मर जाएंगे तब पूजा करेगा, मंदिर बनाएगा। मरे आदमियों से कोई डर नहीं होता। सवाल तो जिंदा आदमी का है।

जब भी कोई ठीक आदमी जिंदा जमीन पर होता है, समाज दुर्व्यवहार करता है उसके साथ। और जब वह मर जाता है, तब पूजा करता है। पूजा मरे हुए के साथ की जा सकती है, क्योंकि मरे हुए से कोई विद्रोह की संभावना नहीं है। दुनिया में सिर्फ मरों की पूजा होती है। वह जो जीवित विद्रोही होता है, उसके साथ समाज डरता है, घबड़ाता है। क्योंकि वह तो कठिन बात है। महावीर खतरनाक हैं, बुद्ध खतरनाक हैं। समाज तो इनकार करेगा, उपेक्षा करेगा। मौका मिलेगा, खत्म करने की कोशिश करेगा। हां, मर जाइए, हम आपकी पूजा करेंगे। समाज यह कहता है--अच्छे लोगो मर जाओ! हम तुम्हारी पूजा करेंगे। अगर तुम खुद मरने को राजी नहीं, हम इतना श्रम करेंगे, हम तुम्हें मार डालेंगे। लेकिन फिर हम तुम्हारी पूजा करेंगे। बिना मारे हम तुम्हारी पूजा नहीं कर सकते।

असल में मुर्दों का समाज जिंदा आदमी की पूजा कर ही नहीं सकता। वह उसे मार डालेगा तो पूजा करेगा। तो क्राइस्ट को सूली पर लटका देता है। जो उनको सूली पर लटकाते हैं, उनमें से उनके अनुयायी पैदा होने लगते हैं। आज सारी जमीन पर क्राइस्ट के सबसे ज्यादा अनुयायी हैं। लेकिन क्या आप सोचते हैं कि क्राइस्ट फिर से आ जाएं, तो इनके साथ अच्छा व्यवहार करेंगे? भूल कर मत सोचना। अगर क्राइस्ट अभी लौट आएं तो यही उनको सबसे पहले पकड़ लेंगे, क्योंकि क्राइस्ट सब गड़बड़ कर देंगे आकर। इनका सब चर्च, इनका सब डागमा, इनकी सब क्रिश्चिएनिटी, इस सबके खिलाफ वे खड़े हो जाएंगे। इसी के खिलाफ तो वे खड़े हुए थे उस वक्त भी। नाम दूसरे थे। पुरोहित तो यही के यही थे। नाम दूसरे थे, मंदिर तो यही के यही थे। इनके खिलाफ वे खड़े थे। सब यही तो चल रहा था। अब वह सब क्राइस्ट के नाम से चल रहा है।

यह जो हमारी स्थिति है, यह जो हमारा चित्त है, यह इस तरह के बच्चे पैदा करना चाहता है, जो जिंदा न हों, जिनके भीतर कोई ज्योति न हो, जिनके भीतर कोई विद्रोह की अग्नि न हो, जिनके भीतर कोई सृजनात्मक क्रिया न हो; क्योंकि जिसके भीतर सृजनात्मक क्रिया होती है, उसके भीतर विध्वंस की शक्ति भी होती है। जो डिस्ट्राय नहीं कर सकता, वह क्रिएट भी नहीं कर सकता। जो मिटा नहीं सकता, वह बना भी नहीं सकता। तो हम बच्चों से कहते हैं, बनाना तो तुम जरूर, लेकिन मिटाने के लिए! उसके लिए हमेशा रोककर रखते हैं, कुछ

मिटाना मत। धीरे-धीरे वे मिटाने में असमर्थ हो जाते हैं और बनाने में भी असमर्थ हो जाते हैं। और समाज चलता जाता है--उसका शोषण, उसकी बेवकूफियां! और जो बेवकूफी जितनी पुरानी हो जाती है, उतनी आदृत हो जाती है। उतनी सेक्रेड हो जाती है, जितनी पुरानी हो जाए। हमारी बेवकूफी पांच हजार साल पुरानी है। तो आप कहेंगे, हमारी बेवकूफी छह हजार साल पुरानी है, तुमसे भी बड़ी है। और जितनी पुरानी बेवकूफी, उतनी कीमती और उतनी आदरणीय हो जाती है। बेवकूफियों को हम ढोते हैं।

हम बच्चों में विचार नहीं देना चाहते हैं। और अगर विचार और विवेक और स्वतंत्रता देने की बात की जाए, तो हम कहेंगे, हम कोठरी में बंद करते हैं, अभी, फिर देखें ध्यान होता है कि नहीं। फिर देखें सत्य का अनुभव होता है कि नहीं। मतलब आप बिना कोठरियों में बंद किए नहीं रह सकते। या तो विचारों की कोठरियों में करिएगा या मकानों की कोठरियों में बंद करिएगा, लेकिन खुला आकाश देने को आप राजी नहीं हैं। नहीं, बच्चे को खुला आकाश चाहिए।

एक और प्रश्न इसी संदर्भ में पूछा है कि युवकों में, सारे मुल्क में विद्यार्थियों में विरोध है, आंदोलन है, अनुशासन टूट रहा है। क्या उसके लिए कहूं?

तो इसी संदर्भ में यह कहना चाहता हूं कि यह विद्रोह शुभ है। यह आंदोलन बुरा नहीं है, यह अच्छे लक्षण हैं। हालांकि अभी जो उसने रुख लिया है, वह गलत है। ये अच्छे लक्षण हैं। अगर युवक विद्रोह में गया तो दुनिया में कुछ हो सकता है। युवक गए नहीं विद्रोह में। हजारों साल से युवक उसी बात को मान लेता है, जो उसके पीछे की पीढ़ी उसे सिखा जाती है। वह इनकार करता ही नहीं। यह दुनिया वैसी की वैसी बनी रहती है, जैसे बाप-दादों की थी, और उनके पहले थी। जिन-जिन चीजों में बच्चों ने इनकार किया है, उन-उन चीजों में विकास हुआ है। बच्चों ने विज्ञान में इनकार किया, विज्ञान आगे विकसित हुआ। बच्चों ने धर्म में इनकार नहीं किया, इसलिए धर्म जड़ हो गया, वह आगे विकसित नहीं हुआ।

बच्चों ने विज्ञान में इनकार कर दिया। उन्होंने कहाः तुमने एक मंजिल का मकान बनाया था, हम तीन मंजिल का मकान बनाएंगे। और इससे बाप ने कोई अपमान भी नहीं समझा। बाप खुश हुआ कि मेरा लड़का तीन मंजिल का मकान बना रहा है। लेकिन अगर कोई लड़का कहे कि हम महावीर से आगे जाएंगे, तो बाप ना-खुश हो जाता है। क्योंकि महावीर तक तो बात खत्म हो गई है। अब थोड़े कोई पच्चीसवां तीर्थंकर होना है! दरवाजे बंद हो गए हैं। अब कोई ज्ञान की दुनिया में जरूरत नहीं है। बात खत्म हो गई, ज्ञान दे गया। अब हमारा काम है, हम दोहराएं। हमारा काम है हम स्तुति करें। अब हमारा काम है, हम पूजा करें। ज्ञान-वान की, खोज की जरूरत कहां है? महावीर सब काम आपके लिए निपटा गए। मोहम्मद आखिरी पैगंबर हैं, उनके आगे कोई पैगंबर नहीं है, वह भी दरवाजा बंद है। क्राइस्ट ईश्वर के इकलौते लड़के हैं, दूसरा कोई उनका लड़का ही नहीं है। वह दरवाजा बंद है। सब दरवाजे बंद, आगे कोई गुंजाइश नहीं है। आप घूमो, इसके आस-पास चक्कर मारो, परिक्रमा करो इन भगवानों की। आगे जाने का कोई उपाय नहीं है। बच्चों का मस्तिष्क कुंठित करने की सारी व्यवस्था कर ली गई है। और इसे अच्छे-अच्छे नामों पर--अनुशासन, आदर, इस सब अच्छे-अच्छे नामों से थोपा गया है। जो अनुशासन बाहर से थोपा जाता है वह परतंत्रता है। जो अनुशासन खुद के विवेक से आता है, वही केवल स्वतंत्रता है। दुनिया में ऐसे अनुशासन को तोड़ ही दिया जाना चाहिए, जो दूसरे थोपते हों। दुनिया में हम वैसा अनुशासन चाहते हैं, जो खुद के विवेक से आता हो।

बच्चे को अनुशासन मत दीजिए, डिसिप्लिन मत दीजिए, बच्चे को विवेक दीजिए, विचार दीजिए, होश दीजिए, समझ दीजिए। जहां समझ है, जहां विचार है, जहां विवेक है, वहां अनुशासन अपने से आएगा। लेकिन हम बच्चे को न विवेक देना चाहते हैं, न विचार देना चाहते हैं, न होश देना चाहते हैं। हम देना चाहते हैं अनुशासन। हम कहना चाहते हैं, बाएं घूमो तो वह बाएं घूम जाए, हम कहें दाएं घूमो तो वह दाएं घूम जाए। हम मशीन बनाना चाहते हैं कि आदमी बनाना चाहते हैं? दुनिया में मशीन बनाने के कई तरह के कारखाने खुले हुए हैं। मिलिट्री सबसे बड़ा कारखाना है। बाएं घूमो, आदमी बाएं घूमता है। दाएं घूमो, तो दाएं घूमता है। आगे जाओ, आगे जाता है। पीछे जाओ, पीछे जाता है। तीन-चार साल एक आदमी से ऐसी मूढ़ता करवाई जाती है। उसका विवेक नष्ट हो जाता है। फिर उससे कहते हैं, गोली मारो। वह गोली मारता है। जैसे बाएं जाओ, उतनी ही आज्ञा! उससे कहो एटम गिराओ, वह एटम गिराता है। उसके भीतर कोई विवेक नहीं रहा, कोई विचार नहीं रहा। उसे कोई समझ नहीं रही, उसकी सारी समझ मार डाली गई। डिसिप्लिनड आदमी का मतलब है, मुर्दा आदमी, मरा हुआ आदमी। उसके भीतर कोई विवेक नहीं, कोई विचार नहीं। जिस आदमी ने हिरोशिमा पर एटम गिराया, उसने एटम गिराया, एक लाख बीस हजार आदमी हिरोशिमा और नागासाकी में आग की लपटों में पड़ गए। उन्होंने असह्य पीड़ा सही। क्षण भर में नरक जाना। वह आदमी वापस लौटा, उसने आकर भोजन किया, अपने बच्चों को प्रेम किया होगा, अपनी पत्नी से प्रेम की बातें की होंगी, सो गया।

क्या इसका पत्नी के प्रति प्रेम सच्चा हो सकता है, जो एक लाख बीस हजार आदमियों को आग में डाल कर आया, और जिसके मन में यह खयाल भी नहीं उठा कि क्या कर रहा हूं? क्या यह अपनी पत्नी को प्रेम कर सकता है? क्या यह अपने बच्चों को प्रेम कर सकता है? इतने बच्चे वहां आग में जल रहे हैं। इसके मन में विचार भी नहीं उठा। क्या अगर यह विचारशील होता, तो यह नहीं कहता कि मैं एक आदमी मर जाऊं, वह बेहतर। मुझे गोली मार दें, मैं डिसिप्लिन तोड़ता हूं, लेकिन मैं एटम गिराने नहीं जाऊंगा। एक लाख बीस हजार मारूं, उससे तो एक मर जाऊं। तो मैं जानता कि इसने जो अपनी पत्नी को प्रेम किया होगा, वह सच्चा रहा होगा? इसने अपने बच्चों को जो प्रेम किया होगा वह सच्चा रहा होगा? लेकिन वह तो सो गया।

सुबह ट्रूमैन से अमरीका में पूछा (उनकी आज्ञा से वह बम गिरा था)पत्रकारों ने, आप रात को ठीक से सोए? ट्रूमैन ने कहाः बहुत ठीक से। कई दिनों से ठीक से सो ही नहीं पाया। मामला खत्म हो गया। मैं ठीक से सो गया। नींद गहरी आई।

ये ट्रूमैन हैं, जो सच्चे आदमी हैं। इसी तरह के ट्रूमैन सारी दुनिया में हैं। इनको रात बेचैनी नहीं हुई। एक लाख बीस हजार आदमी वहां आग की लपटों में जल रहे हैं--निरीह बच्चे, निरीह औरतें, ये आसानी से सो गए।

यह उस आदमी से पूछा गया, तुमने क्यों बम गिराया? उसने कहाः मैंने तो केवल आज्ञा का पालन किया। यह आज्ञा का पालन तो खतरनाक है। ऐसे आज्ञा पालन करने वाले युवक अब दुनिया में और नहीं चाहिए। हम ऐसे युवक चाहते हैं, जो विचार करें। हम पाकिस्तान में ऐसे युवक चाहते हैं जो कहें राजनीतिज्ञों से कि तुम मूर्ख हो, हम गोली चलाने को हिंदुस्तान पर राजी नहीं हैं, हमारे भाई हैं। हम कल तक साथ थे। हिंदुस्तान के राजनीतिज्ञों से हिंदुस्तान का युवक कहे कि बेवकूफी बंद करो, हम गोली चलाने को राजी नहीं।

दुनिया में हम ऐसे युवक चाहते हैं, जो सब तरह के डिसिप्लिन तोड़ दें। यह दुनिया दूसरी हो सकती है, लेकिन हम तो चाहते हैं, डिसिप्लिनड हो युवक। उससे क्या होगा? हजारों साल से डिसिप्लिन सिखा कर बेवकूफियों में वह इतना लगाया गया है। आज जब वह तोड़ रहा है, तो डर हो रहा है। जरूर, तोड़ना उसका अभी गलत है, क्योंकि तोड़ने के लिए उसके पास न कोई भूमि है, न कोई विचार है, न कोई दृष्टि है। तोड़ना

उसका गलत है। बस में आग लगा देता है। मैं भी नहीं कहूंगा कि बस में आग लगाओ। मैं तो कहता हूं, आग ही लगानी है तो किसी बड़ी चीज में लगाओ, बस में लगाने से क्या होगा? मैं तो यही कहता हूं युवकों से कि आग ही लगानी है तो हिंदुस्तान में बहुत चीजें हैं, जिनमें लगाओ। जातियों में आग लगाओ, धर्मों में आग लगाओ तो कुछ होगा। हिंदू होने में, मुसलमान होने में, जैन होने में आग लगाओ तो कुछ होगा। भारतीय होने में, पाकिस्तानी होने में आग लगाओ तो कुछ होगा। तुम बस जलाओगे तो क्या होगा?

लेकिन मैं कहता हूं कि शुभ लक्षण हैं। कम से कम बस तो जलाते हो! शायद जलाने का खयाल आ जाए तो कुछ और भी जलाओ। गुरु के खिलाफ खड़े होओ। बेचारा गरीब मास्टर है; उसके खिलाफ खड़े हो! तो मैं कहता हूं, मनु महाराज के खिलाफ खड़े हो तो कुछ बात हो जाएगी। ये बेचारे गरीब मास्टर मोशाय से क्या लड़ना है, इसकी क्या हैसियत है, इसके खिलाफ क्या? लेकिन फिर भी सोचता हूं कि तुम गुरु के खिलाफ खड़े हुए हो, शायद तुम महागुरुओं के खिलाफ भी किसी दिन खड़े हो सको। जब हम कुआं खोदते हैं, तो पहले कंकड़-पत्थर ही हाथ आते हैं, फिर धीरे-धीरे अच्छी मिट्टी आती है, फिर जल आता है। अभी ये कंकड़-पत्थर हाथ आ रहे हैं--यह जो अनुशासनहीनता है--यह बुरी है, लेकिन शुभ है, अच्छे लक्षण हैं। अगर इसको ठीक-ठीक दिशा दी जा सकी, तो दुनिया में युवक एक क्रांति ला सकते हैं। अगर इसको दिशा नहीं दी जा सकी तो बस जलाएंगे, मकान जलाएंगे तोड़ेंगे, फोड़ेंगे, छोटी चीजें तोड़ेंगे-फोड़ेंगे।

मुझे दिखता है, अगर बड़ी चीजें तोड़ने-फोड़ने की तरफ उनकी आंखें उठाई जा सकें, वह खुद भी छोटी चीजें तोड़ने को राजी नही हो सकेंगे। क्यों? मैं अभी था विद्यार्थियों के बीच। मैंने उनसे पूछाः मैंने उनसे कहा कि जो छोटी चीजें तोड़ता है, वह खुद छोटा हो जाता है, क्योंकि हम जो करते हैं, वही हो जाते हैं। तो मैंने कहा, अगर तुम बसें जलाओगे तो तुम बस कंडक्टरों और ड्राइवरों से ऊपर नहीं उठे सकते हो। तुम्हारी बुद्धि उससे आगे नहीं जा सकती। अगर तुम पुलिसवाले से लड़ोगे तो तुम ज्यादा से ज्यादा पुलिसवाले हो सकते हो। लड़ाई ही करनी है, तो कुछ बड़ी करो, क्योंकि शत्रु को ही चुनना है, तो कोई बड़ा चुनो। चुनौती ही लेनी है, तो कोई बड़ी लो। चढ़ना ही है, तो कोई हिमालय चढ़ो, तो तुम्हारे भीतर बड़ा आदमी पैदा होगा। तुम्हारे भीतर बड़ा व्यक्तित्व पैदा होगा। यह जो अनुशासनहीनता है, मेरी दृष्टि में बुरी नहीं है। राजनीतिज्ञों की दृष्टि में बुरी है, क्योंकि यह घबड़ाते हैं इससे। समाज के ठेकेदारों की दृष्टि में बुरी है, वह इससे घबड़ा रहे हैं, क्योंकि अगर यह बढ़ी, तो उन सबको दिक्कतें खड़ी हो जाएंगी। धर्माध्यक्ष जो हैं, उनको घबड़ाहट है। साधु-संन्यासी हैं, उनको घबड़ाहट है। वह सब इकट्ठे खड़े हो जाएंगे, कहेंगे, यह बुरा है। मैं आपसे यह कहता हूं, यह शुभ है, लेकिन यह जैसा है, उतना ही शुभ नहीं है। उस पर रुक नहीं जाना है, इसे और बड़े आयाम देना है, बड़ी दिशाएं देनी हैं।

अगर हिंदुस्तान में युवकों के भीतर पैदा होते अनुशासनहीनता और विद्रोह को कोई दिशा दी जा सकी, तो हिंदुस्तान एक नई संस्कृति को जन्म दे सकता है। नहीं दी जा सकी तो ये बच्चे जो कुछ आपने बनाया था, उसे भी खराब कर देंगे। उसे तो खराब करने में ये भी खराब हो जाएंगे। कुछ अच्छा पैदा नहीं हो सकेगा। आपका मकान गिर जाए, इसमें तो कोई हर्जा नहीं है। लेकिन उसे गिराने में सारी दृष्टि लग गई तो ये कोई नया मकान शायद नहीं बना सकेंगे। मुझे यह दिखाई पड़ता है, मुझे ये जो विद्रोह के नये-नये स्वर पैदा हो रहे हैं, ये शुभ हैं, इनका स्वागत होना चाहिए, और इसे दिशा दी जानी चाहिए। और सारी क्रांति को इकट्ठा किया जाना चाहिए। और मुल्क के उन-उन पत्थरों पर जो परम्पराओं ने हमारे ऊपर थोप दिए हैं, उनको तोड़ा जाना चाहिए ताकि एक नये मनुष्य को, एक नई सभ्यता को पैदा किया जा सके।

यह हो सकता है। हिंदुस्तान में कभी बगावत नहीं हुई है। हिदुस्तान बहुत गैर-बगावती मुल्क है। हिंदुस्तान में कभी कोई बुनियादी क्रांतियां नहीं हुई हैं। हिंदुस्तान करीब-करीब एक ढांचे में जीता रहा है। इसीलिए तो हम मरते गए, सड़ते गए, हम नीचे गिरते गए। क्योंकि जो कौम निरंतर अपने भीतर क्रांति नहीं करती है, उसके भीतर धीरे-धीरे आत्मा क्षीण होती चली जाती है। वृक्ष हैं, हर साल पुराने पत्ते गिर जाते हैं और नये पत्ते आ जाते हैं, इसलिए वृक्ष ताजा और हर साल नई जिंदगी ले आता है। क्रांति सतत होती रहनी चाहिए समाज को, तो समाज का कचरा और कूड़ा जलता रहता है और नये समाज के, नई दिशाओं के आगमन होते रहते हैं। नये मनुष्य का जन्म होता रहता है।

तो मैं इस पक्ष में हूं। मैं उस अनुशासन को प्रेम करता हूं जो विवेक से आए। मैं उस अनुशासन को प्रेम नहीं करता जो दमन से आए, दबाव से आए, ऊपर से थोपा जाए। मैं उस अनुशासन को प्रेम करता हूं जो आत्मा से जन्मे। इसलिए बच्चों को प्रेम दें, विचार के जागरण का सहारा दें, विवेक पैदा करने के लिए, साथी और मित्र बनें। और उनके भीतर उस दीये को जला दें, जो ज्ञान का है--तो फिर उनके भीतर एक अनुशासन होगा, जो अदभुत होता है। जिसे कहीं से लाना नहीं पड़ता, खोजना नहीं पड़ता। भीतर से आता है और जीवन को बदल देता है। जैसे बैलगाड़ियां चलती हैं तो पीछे चाक के निशान बन जाते हैं, ऐसे ही जहां विवेक होता है, वहीं पीछे अनुशासन निशानों की तरह अपने आप चला आता है। लाया हुआ खतरनाक है, आया हुआ अनुशासन सदा ही स्वागत के योग्य है।

प्रश्न तो और बहुत से हैं, उनकी मैं धीरे-धीरे चर्चा करूंगा, इधर इन बातों में भी। थोड़े से प्रश्नों के उत्तर संध्या भी दूंगा। दोपहर भी अनुशासन के संबंध में थोड़ी सी बात मैंने आपसे कही। प्रश्न और हैं।

चौथा प्रवचन

नयी संस्कृति का जन्म

पूछा हैः क्या जीवन में किसी तरह के अनुशासन की, डिसिप्लिन की आवश्यकता नहीं है? और अगर अनुशासन न रहेगा तो अराजकता हो जाएगी। और न तो सभ्यता रहेगी, न कोई व्यवस्था रहेगी, बल्कि एक अराजकता, एक अनारकी पैदा हो जाएगी।

ठीक ही बात पूछी है। अब तक मनुष्य जिस भांति जिया है, और जैसी सभ्यता का उसने निर्माण किया है, जैसे समाज को बनाया, वह पूरा का पूरा समाज ही अनुशासन पर खड़ा है। और इसीलिए यह भय बिल्कुल स्वाभाविक है कि यदि अनुशासन टूट जाए, तो समाज भी टूट जाए, सभ्यता भी टूट जाए, संस्कृति भी मिट जाए। अराजकता हो जाए। यह भय इसीलिए है, क्योंकि हमारे जीवन में जो भी नीति है, जो भी चरित्र है, वह सभी का सभी अनुशासन पर खड़ा है। और अनुशासन किस बात पर खड़ा हुआ है? अनुशासन किस बात पर निर्भर है? अनुशासन का, या डिसिप्लिन का अर्थ क्या है?

उसका अर्थ है, जैसे एक अंधा आदमी किसी रास्ते पर जाता हो, तो उसे रास्ते पर जाने के लिए अभ्यास करना होता है। यदि वह गलत चलेगा तो लोगों से टकराएगा। टकराने से पीड़ा होगी। इसलिए ठीक-ठीक चलने के लिए लाठी रखनी पड़ती है, टटोलता है। आंखें उसके पास नहीं हैं, इसलिए आंखों का काम उसे लाठी से पूछ-पूछ कर चलाना होता है। अगर उसके पास आंखें हों और अगर अंधों की कोई सभा होती हो तो वह मुझसे पूछेंगे कि अगर किसी के पास आंखें आ गईं तो फिर लाठी का क्या होगा, टटोलने का क्या होगा? तो उनसे मैं क्या कहूंगा? उनसे मैं कहूंगा, आंखें नहीं हैं, इसीलिए तो लाठी की और टटोलने की जरूरत है। अगर आंखें हों, तो लाठी की और टटोलने की कोई भी जरूरत नहीं रह जाती।

मनुष्य के जीवन में अनुशासन की इसीलिए तो जरूरत है कि उसके जीवन में विवेक नहीं है, प्रज्ञा नहीं है, बोध नहीं है। जागरण नहीं है।। विचार नहीं है। विचार की आंख हो, विवेक की आंख हो तो अनुशासन के टटोलने की और लाठी की कोई जरूरत नहीं रह जाती। उससे अराजकता नहीं आएगी। उससे सभ्यता नहीं टूटेगी। बल्कि अभी जो सभ्यता है वह झूठी है, ऊपर से थोपी हुई है। भीतर आदमी असभ्य है, ऊपर से सभ्य मालूम पड़ता है। भीतर असंस्कृत है, ऊपर से संस्कृत मालूम पड़ता है। भीतर से अभी भी जंगली जानवर मौजूद है, ऊपर से मनुष्य हो गया है। बीसवीं सदी में आ गया है।

भीतर और ऊपर यह जो फर्क है, अनुशासन के कारण है। ऊपर से चीजें थोप दी गई हैं, बिठा दी गई हैं। भय के कारण उनसे अन्यथा जाने में डर मालूम होता है। चोरी हम नहीं करते हैं, इसलिए नहीं कि हमें वह विवेक मिल गया है, जहां चोरी असंभव हो जाती है; बल्कि इसलिए कि चोरी के पीछे दंड है। इस दुनिया का दंड है। रास्ते पर पुलिस का सिपाही खड़ा है। अदालतें बैठी हुई हैं, कानून बैठा हुआ है। अगर इससे भी बच गए तो मन के भीतर पाप का भय है, नरक का भय है। ऊपर परमात्मा बैठा हुआ है। पुलिस वाले से लेकर परमात्मा तक भयभीत करने वाले लोग बैठे हुए हैं। जेल से लेकर नरक तक के कष्ट हैं। ये सारे भय, डिसिप्लिन पैदा करने को, कि आप अनुशासित हो जाएं, कुछ भी न करें--बेईमानी न करें, धोखा न दें किसी को--आपके ऊपर थोप दिए गए हैं। लेकिन इससे आपका अंतःकरण न तो नैतिक होता है और न सुसंस्कृत होता है और न सभ्य होता

है। भीतर तो चोरी चलती ही रहती है। डर के कारण ऊपर नहीं आती है। डर के कारण निकल नहीं पाती है। या निकलती है तो बहुत सुरक्षा करके निकलती है, सुव्यवस्थित ढंग से निकलती है। भीतर-भीतर चलती रहती है। भीतर कौन ऐसा आदमी है, जो चोरी नहीं करता? भीतर कौन ऐसा आदमी है, जिसने हत्याएं न की हों? भीतर कौन ऐसा आदमी है, जिसने वे सारे पाप न किए हों, जिनको हम पाप कहते हैं? अगर एक मनुष्य के मन की सारी की सारी चिंताएं, सारे विचार खोल के रख दिए जाएं तो एक-एक आदमी को अगर हम दस-दस बार भी फांसी दें, तो भी उसके अपराध कम नहीं होंगे, जितने वह सोचता है, करने के विचार करता है, नहीं करता--भय के कारण। नहीं करता है--समाज, रिस्पेक्टिबिलिटी, सम्मान, इस जगत का, उस जगत का भय, इन सब के कारण नहीं करता। रोकता है अपने को। लेकिन इस न करने से, हो सकता है कि समाज एक ऊपरी ढांचे पर ठीक-ठाक चलता हुआ मालूम पड़ता है, लेकिन मनुष्य के भीतर क्या स्थिति है? और वही स्थिति तो दस-पांच वर्ष में इतनी ज्यादा घनी हो जाती है कि अनेक-अनेक रूपों में निकल पड़ती है।

तीन हजार साल के इतिहास में साढ़े चार हजार युद्ध हुए हैं, सारी जमीन पर। साढ़े चार हजार लड़ाइयां हुई हैं। उनमें भयंकर हत्या हुई हैं। वही हत्या, जो सामान्य दिनों में वर्जित है, पाप है, युद्ध के दिनों में सम्माननीय हो जाती है। वे ही राजनेता, वे ही धार्मिक पुरुष, जो कहते हैं, किसी को मारना बुरा है, युद्ध के दिनों में कहते हैं, जो जितने ज्यादा मारेगा, वह उतना ही महान है। हत्याएं यही हैं, अगर अभी करेंगे इसी वक्त, तो सजाएं मिलेंगी। अगर युद्ध के दिनों में करेंगे तो राष्ट्रपति पुरस्कार भी मिल सकते हैं। हत्या तो वही है। और हर वर्ष यह जगह-जगह दुनिया में कहीं न कहीं युद्ध होता ही रहता है। अगर युद्ध नहीं होते हैं, तो दंगे-फसाद होते हैं। नाम कोई भी ले लिए जाते हैं, बहाने कोई भी ले लिए जाते हैं, लेकिन भीतर वह जो पशु है, जिसको आप जबरदस्ती दबाए हैं, बार-बार विस्फोट हो जाता है। बार-बार निकल कर बाहर आ जाता है।

भले लोग रोज मस्जिद जाते हैं, रोज गीता पढ़ते हैं, रोज कुरान पढ़ते हैं। जरा-सी एक चिनगारी फैल जाए, वह जो आदमी रोज मस्जिद में नमाज पढ़ता था, वह जाकर लोगों के मकानों में आग लगाने लगेगा। जरा सी चिनगारी फैल जाए, तो जो आदमी रोज गीता पढ़ता था, वह छुरा लेकर खून का प्यासा हो जाएगा। वे लोग जो प्रेम की बातें करते थे--क्राइस्ट ने जैसा कहा है कि जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, उसके सामने तुम दूसरा कर देना। लेकिन ईसाइयों ने जितनी हत्याएं की हैं इस दुनिया में, और किसी ने भी नहीं की हैं। तो यह हैरानी की बात मालूम होती है।

ये अच्छी-अच्छी बातें सब ऊपर चलती हैं और भीतर, हमारे भीतर जंगली आदमी मौजूद रहता है। वह कभी भी निकलने की कोशिश करता है। कोई भी बहाना काफी है। महाराष्ट्रीयन और गुजराती का बहाना हो, तो छुरे निकल आते हैं। हिंदू-मुसलमान का बहाना हो तो छुरे निकल आते हैं। हिंदी भाषी गैर-हिंदी भाषी का मामला हो, तो छुरे निकल आते हैं। गोरी चमड़ी, काली चमड़ी का मामला हो, तो छुरे निकल आते हैं। छुरे तो हमेशा तैयार हैं। कोई मौका भर आ जाए, हम निकालने को हमेशा राजी हैं। हम पशु होने को हमेशा तैयार हैं। यह कैसी सभ्यता है? यह कैसा समाज है? दो महायुद्धों में दस करोड़ लोगों की हत्या की गई, और इस समाज को हम सभ्य कहते हैं, जिसमें तीस साल के भीतर दस करोड़ आदमी मार डालने पड़ते हों? और अब एक तीसरे की तैयारी हो रही है, जो हो सकता है, हम पूरी मनुष्य जाति को मार डालें। इतना आयोजन है कि पूरी मनुष्य जाति को मारा जा सकता है।

यह कैसी सभ्यता है? यह कैसी सुव्यवस्था है, यह कैसी सुसंस्कृति है? और ऐसा मत सोचना कि यह आज ही हो रहा है और पुराने दिनों के लोग बड़े अच्छे थे। अगर पुराने दिनों के लोग बड़े अच्छे होते तो महाभारत

कैसे होता? अगर पुराने दिनों के लोग बड़े अच्छे होते तो राम और रावण का युद्ध कैसे होता? ये ही लोग थे पुराने दिनों में भी, वही लोग अब हैं। अभी तक मनुष्य सभ्य हुआ नहीं है, सभ्य उसे होना है। अभी देर है। अभी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। अभी सभ्यता थोड़ी है और झूठी है। जिस सभ्यता में रोज युद्ध आ जाते हों, रोज घृणा आ जाती हो, रोज कलह आ जाती हो, वह कोई सभ्यता है? धोखा है। ऊपर से लगाए हुए कपड़े हैं। भीतर से कुछ भी नहीं है। भीतर कोई बात नहीं है।

इस सभ्यता को खड़ा किया गया अनुशासन के आधार पर। उस अनुशासन के आधार पर खड़ी यह सभ्यता झूठी है। असल में अनुशासन के आधार पर जो भी खड़ा होगा वह झूठा होगा। मैं अगर आपको इसलिए प्रेम करूं कि आप भी भारतवासी हैं, इसलिए मैं आपको प्रेम करता हूं, यह प्रेम झूठा होगा। क्योंकि प्रेम भी अगर यह पूछता हो कि आप कौन हो, तब मैं करूंगा, तो वह झूठा हो गया। अगर मैं यह कहूं, कि आप मेरे पिता हो इसलिए मैं प्रेम करता हूं, तो यह बात झूठी हो गई। प्रेम यह नहीं पूछ सकता कि आप मेरे पिता हो, इसलिए मैं आपका आदर करता हूं। प्रेम ये बातें नहीं पूछता है कि आप गोरी चमड़ी के हो कि काली चमड़ी के हो, हिंदू हो कि मुसलमान हो, जैन हो कि पारसी हो। और जब यह पूछता है, तो समझ लेना, वहां प्रेम नहीं है। प्रेम तो किसी तरह के भेद नहीं मानता है। प्रेम तो किसी तरह की सीमाएं नहीं मानता है, कोई देश नहीं मानता है, कोई जाति नहीं मानता है। प्रेम तो धीरे-धीरे सबको अपने घेरे में ले आता है। कोई उसके बाहर नहीं रह जाता।

राबिया नाम की एक फकीर औरत हुई। कुरान में कहीं एक वचन है कि शैतान को घृणा करो। उसने वह वचन काट दिया। एक दूसरा हसन नाम का फकीर उसके घर मेहमान था, उसने कहा, यह कुरान किसने खराब कर दिया, अपवित्र कर दिया? क्योंकि धर्मग्रंथों में संशोधन नहीं किया जा सकता, उनमें सुधार नहीं किया जा सकता। किसी धर्मग्रंथ में कोई सुधार नहीं किया जा सकता। वे अंतिम किताबें हैं। उनके आगे कोई सुधार की गुंजाइश नहीं है। उस हसन ने कहाः यह किस पागल ने किताब खराब कर दी? इस पवित्र गं्रथ में किसने लकीर काट दी? राबिया ने कहाः मुझी को काटनी पड़ी है। तुम कैसे पागल हो गई हो? बुढ़ापे में दिमाग खराब हो गया है? जीवन भर कुरान पढ़ी, जीवन भर धर्मग्रंथ पढ़े, नमाज को मस्जिद गई। यह बुढ़ापे में क्या हुआ? उसने कहाः इसके सिवाय कोई रास्ता न रहा कि इसको काट कर कुरान को पवित्र कर दूं। वह बहुत हैरान हुआ कि तुम कैसी पागल हो। कुरान को भी अभी पवित्र होना है तुम्हारे द्वारा?

राबिया ने कहा, जब मैं प्रेम से भर गई तो मैंने भीतर बहुत खोजा, वहां मुझे कहीं घृणा नहीं मिलती है। अगर शैतान मेरे सामने खड़ा हो जाए तो भी मैं प्रेम करने के लिए मजबूर हूं, क्योंकि घृणा करने के लिए घृणा होनी भी तो चाहिए। सवाल यही काफी नहीं है कि शैतान खड़ा है, घृणा करो। लेकिन घृणा होनी भी तो चाहिए! या गरीब आदमी खड़ा है, उसको दान दो, लेकिन देने के लिए भी तो कुछ होना चाहिए। और अगर देने के लिए नहीं है तो गरीब आदमी को दान भी कैसे देंगे? तो उसने कहाः शैतान भला मेरे सामने खड़ा हो, मैं तो असमर्थ हूं, मैं तो प्रेम ही दे सकती हूं। प्रेम ही मेरे पास है। और परमात्मा भी खड़ा हो तो भी प्रेम ही दे सकती हूं। और उसने कहा, अब तो मैं बड़ी कठिनाई में पड़ गई हूं कि पहचान भी नहीं पाऊंगी कि कौन शैतान है, कौन परमात्मा है। क्योंकि प्रेम पहचान नहीं पाता और फर्क नहीं करता। इसलिए मैंने यह पंक्ति काट दी है और ग्रंथ को पवित्र कर दिया है।

लेकिन यह जो हमारी सभ्यता है, इसमें प्रेम है? इसमें प्रेम बिल्कुल भी नहीं है। और प्रेम की झूठी बातें हैं। पति-पत्नी से कहता है, मैं तो तुम्हें प्रेम करता हूं, पत्नी-पति से कहती है, मैं तुम्हें प्रेम करती हूं। ये बिल्कुल झूठी बातें हैं। यह कहने वाला भी जानता है, झूठी हैं, सुनने वाला भी जानता है कि झूठी हैं। और बाप बच्चों से कहता

है, हम तुम्हें प्रेम करते हैं। बच्चे बाप से कहते हैं, हम तुम्हें प्रेम करते हैं। यह बिल्कुल झूठ है; यह सरासर झूठ है। यह झूठ न होता तो यह दुनिया और तरह की होती, अगर यह प्रेम पर खड़ी होती। यह प्रेम पर अगर खड़ी होती, यह परिवार अगर प्रेम की धुरी पर घूमते होते, और यह समाज का हर आदमी एक-दूसरे को प्रेम करता हुआ मालूम पड़ता है, सच में प्रेम करता होता तो दुनिया में युद्ध हो सकते थे? दुनिया में इतनी घृणा हो सकती थी? दुनिया में इतना वैमनस्य हो सकता था? इतनी शत्रुता हो सकती थी?

तथ्य तो यह कहते हैं कि जरूर यह प्रेम कहीं झूठा होगा। तथ्य तो यह कहते हैं, क्योंकि जो दिखाई पड़ता है कि वह तो यह है कि दुनिया में प्रेम कहीं भी नहीं है। दुनिया में वही तो होता है, जो एक-एक व्यक्ति दान करता है। दुनिया में घृणा है, हिंसा है, युद्ध है। इसका मतलब? इसका मतलब, एक-एक व्यक्ति दुनिया का यह जो बड़ा ढेर लगा हुआ जीवन का, उसमें घृणा डाल रहा है, क्रोध डाल रहा है, इसीलिए तो है। यह कैसे संभव है कि हरेक व्यक्ति प्रेम कर रहा हो? हरेक व्यक्ति पिता है, पुत्र है, पति है, पत्नी है, मित्र है, भाई है, बहन है। अगर ये सारे लोग प्रेम कर रहे हैं, तो यह दुनिया तो बिल्कुल दूसरे ढंग की होनी चाहिए। यहां तो प्रेम का सागर दिखाई पड़े। लेकिन यह प्रेम नहीं है। इस प्रेम में जरूर कहीं बुनियादी भूल है। यह सब डिसिप्लिन हो सकता है, यह सब अनुशासन हो सकता है। मुझे प्रेम करना चाहिए इसलिए मैं कर रहा हूं, यह बिल्कुल दूसरी बात है। मुझे प्रेम है, यह बिल्कुल दूसरी बात है। मैं जिस दिन आपको इसलिए प्रेम करूं कि मुझे प्रेम करना चाहिए, उस दिन वह झूठा हो गया, असत्य हो गया। लेकिन जब मैं प्रेम करूं--चाहिए नहीं, कर्तव्य नहीं, जब मेरा प्रेम मेरे भीतर से बहे और आप तक पहुंच जाए। प्रेम किया नहीं जा सकता, प्रेम हो सकता है। क्योंकि किया हुआ झूठा हो जाएगा। वह एक कोशिश और एफर्ट हो जाएगा। और जहां कोशिश है और एफर्ट है वहां झूठ हो गया।

क्या आपने किसी को प्रेम करने की कोशिश की है? अगर की होगी तो वह प्रेम झूठा रहा होगा। प्रेम करने की कोशिश नहीं हो सकती। लेकिन डिसिप्लिन तो सारी बातें यही सिखाती है। वह प्रेम करना भी सिखाती है, वह आदर देना भी सिखाती है, वह सम्मान देना भी सिखाती है, श्रद्धा करना भी सिखाती है और इसीलिए तो सब झूठा हो गया है। इसलिए तो सब असत्य हो गया है जीवन।

हम सब अनुशासनबद्ध लोग हैं। और हमारे जीवन में कोई भी ऐसा तत्त्व नहीं है, जो हम पर जबरदस्ती थोपा हुआ न हो, हमारे भीतर आया हो और जागा हो। और जिसे हमने खोजा हो अपने प्राणों के भीतर, जो बीज की भांति फूटा हो, अंकुरित हुआ हो, जिसमें फूल आए हों। हमारे सब फूल बाजार से खरीदे हुए हैं, कागज के हैं। उनको हम ऊपर से लगाए हुए हैं। इसलिए ऊपर से लगाए हुए, जब तक शांति हो, तब तक तो ठीक है, जरा ही उपद्रव हो जाए, फूल हट जाते हैं, कांटे बाहर निकल आते हैं। कांटे असली हैं। जरा एक आदमी को खरोंच दें, उसकी सब सभ्यता विलीन हो जाएगी और उसका असभ्य आदमी बाहर आ जाएगा। जरा एक आदमी को शराब पिला दें, उसकी सब सभ्यता विलीन हो जाएगी और भीतर से न मालूम कौन बोलने लगेगा। वह भीतर मौजूद था तब तो बोल रहा था। शराब बड़ी गड़बड़ बातें पैदा करती है। वह तो केवल वह जो ऊपर से थोपा था, उसको सुला देती है, असली आदमी भीतर से बाहर आ जाता है। नशे में कुछ यह थोड़ी होता है, नशे में कुछ ऐसी ताकत थोड़ी होती है कि आपके भीतर से गालियां निकलने लगें। लेकिन जो आदमी मंदिर में बैठा भजन पढ़ रहा है, उसे नशा करवा दें, वह गालियां देने लगेगा। भजन ऊपरी हैं, गालियां असली हैं। भजन सीखे हुए थे, गालियां उसके स्वभाव का हिस्सा हो गई हैं, भजन सीखे हुए थे, गालियां उसके स्वभाव का हिस्सा हो गई हैं, वह गहरी आदतें हैं। इसीलिए तो धार्मिक लोग नशा करने से डरते हैं। सब धार्मिकता दो मिनट में हवा हो जाएगी।

यह जो सभ्यता है बहुत सतही है, बहुत सुपरफिशियल है। और यह खड़ी की गई है अनुशासन के आधार पर। क्या कोई और आधार नहीं हो सकते? मुझे दिखाई पड़ता है, अनुशासन ठीक आधार नहीं है। क्योंकि कितने दिन और प्रयोग करिएगा? कोई दस हजार साल से आदमी अनुशासन का प्रयोग करता है और सब झूठा से झूठा होता चला गया, सब झूठा हो गया है। उसमें कहीं कोई सचाई नहीं रह गई किसी बात में भी। इस झूठ को कब तक खींचिएगा? कहीं ऐसा न हो कि इस झूठ को खींचते-खींचते आदमी के प्राण निकल जाएं। डर तो यही है कि निकल जाएंगे। बचने की बहुत कम उम्मीद है। मरीज बचने वाला जैसा दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि खास उस दिशा में काम नहीं दिख रहा है कि मनुष्य बच सकेगा।

क्या करिएगा? क्या कोई दूसरा मार्ग नहीं है? मैं निवेदन करना चाहता हूं, अनुशासन आधार नहीं हो सकता। हमें विवेक को ही आधार बनाना होगा। हमें मनुष्य के भीतर किसी ढांचे को थोपने की जरूरत नहीं है, लेकिन उसकी प्रज्ञा को जगाने की जरूरत है। उसकी आंख खोलने की जरूरत है, उसके हाथ में लकड़ी देकर टटोलवाने की जरूरत नहीं है। और आंख जब खोली जा सकती है तो क्यों न खोली जाए?

जब मैं यह कह रहा हूं कि अनुशासन व्यर्थ है, तब मैं यह नहीं कह रहा हूं कि स्वच्छंदता सार्थक है। जब मैं यह कह रहा हूं, अनुशासन व्यर्थ है, तब मैं यह कह रहा हूं, विवेक सार्थक है। और मैं आपसे यह भी निवेदन कर दूं, यह अनुशासन का रिएक्शन है, स्वच्छंदता जो है। स्वच्छंदता अनुशासन की प्रतिक्रिया है। जब किसी आदमी पर बहुत चीजें थोप दी जाएं, तो उसका मन विद्रोह करने लगता है। विद्रोह में वह दूसरे एक्सट्रीम पर चला जाता है। इस सारी दुनिया में जो विद्रोह हो रहा है, नई पीढ़ी जो विद्रोह कर रही है, वह हजारों साल के अनुशासन की प्रतिक्रिया है। आपने बहुत-बहुत दबाया था और आपने स्त्रियों को बिल्कुल नकाबों में ढांक के रखा था बुर्कों में और घूंघटों में। वह नये लड़के उनको नंगा घुमाने की कोशिश कर रहे हैं। यह प्रतिक्रिया है। उनकी नग्न तस्वीरें सारी दुनिया के चित्त पर फैलाई जा रही हैं। यह प्रतिक्रया है। इसमें कौन कसूरवार है? इसमें यही लड़के कसूरवार नहीं हैं, वह मर गए बूढ़े भी कसूरवार हैं, जिन्होंने औरतों को ढांका था। यह उसकी प्रतिक्रिया है, यह दूसरा एक्सट्रीम है, यह दूसरी अति है। एक अति यह थी कि स्त्री का कोई अंग ही न दिखाई पड़े। यह मूर्खतापूर्ण है। यह बिल्कुल मूर्खतापूर्ण है। यह बिल्कुल ही हद से ज्यादा मूर्खतापूर्ण बात है। स्त्री को ढांक दो बिल्कुल तो एक वक्त आएगा कि लड़के उसे उघाड़ने लगेंगे। और जब वे उघाड़ने लगेंगे, तब आपको बड़ी घबड़ाहट होगी कि यह तो बड़ी अराजकता फैल रही है। यह अराजकता नहीं फैल रही है, यह आपके अनुशासन का अनिवार्य फल है। यह होने को ही है। जिन-जिन चीजों पर जितना निषेध किया जाएगा, वे उतनी ही आकर्षक हो जाती हैं। आकर्षण आप पैदा कर रहे हैं।

मेरे मित्र हैं, जिन्होंने मुझे कहा कि हम यूरोप और अमरीका के नग्न घरों में गए, नेकेड्स क्लब में गए, वह न्यूड-क्लब्स में गए। वहां हमने नग्न औरतों को देखा तो हम एकदम घबड़ा गए। हम सोचते थे, कोई बहुत रहस्यपूर्ण, कोई बहुत अदभुत बात होगी। नग्न औरतों को देख कर हम ठगे रह गए। वहां कुछ भी नहीं था। आखिर हो भी क्या सकता है? आखिर हो भी क्या सकता है? आप सब अपने नग्न शरीरों से परिचित हैं, उसमें क्या है? लेकिन दूसरे के नग्न शरीर में बड़ी उत्सुकता है, क्योंकि कपड़े बहुत ढांके गए हैं। अगर कपड़े बहुत ढांके जाएंगे तो शरीरों में अति उत्सुकता पैदा होगी और कपड़ों को उघाड़ने की चेष्टाएं शुरू हो जाएंगी। सारा साहित्य कपड़े उघाड़ने का धंधा करता है? कविताएं कपड़े उघाड़ने का धंधा करती हैं, फिल्में कपड़े उघाड़ने का धंधा करती हैं। और जो धंधा जितना ठीक से कपड़ा उघाड़ने का काम करता है, वह उतना ही पैसे लाता है।

सारी दुनिया में यह काम चल रहा है। एक तरफ कपड़े ढांकने वाले लोग, एक तरफ उघाड़ने वाले लोग। लेकिन जीवन की सचाइयों को सीधा-सीधा देखने वाले लोग नहीं के बराबर हैं।

विवेक चाहिए, थोपे हुए अनुशासन खतरनाक हैं। उनका परिणाम बुरा होगा। जिन कौमों ने, जितना ज्यादा स्त्रियों को ढांका है, उन कौमों के पुरुषों ने उतना ही ज्यादा स्त्रियों के संबंध में चिन्तन किया है। आप अपना ही मुल्क देख लें। आप अपना पूरा साहित्य उठा कर देख लें, आप हैरान हो जाएंगे, इतना अश्लील साहित्य किसी कौम का नहीं है। आपके श्रेष्ठ से श्रेष्ठ धार्मिक ग्रंथ भी अपने गहरे में बहुत अश्लीलता लिए हुए हैं। और आपके साधु-संन्यासी भी मोक्ष की बात करते हैं, तो वह कहते हैं कि मोक्ष-रमणी का हम भोग करने जा रहे हैं। मोक्ष-रमणी का भोग करने जा रहे हैं! उनकी कल्पनाओं में भी वही रमणी और वही भोग सब बैठा हुआ है। आपके भक्तों की कविताएं देखें तो आप घबड़ा जाएंगे। उनमें इतनी सेक्सुअलिटी है, जिसका कोई हिसाब नहीं। इतनी कामुकता है, जिसका कोई हिसाब नहीं।

यह सब क्या है? यह सेक्स के ऊपर जो हजारों साल का अनुशासन है, उसकी प्रतिक्रिया है। उसकी प्रतिक्रिया में स्वच्छंदता पैदा हो रही है। दो ही चीजें हो सकती हैं--जबरदस्ती थोप दें, यह भी बुरा है। क्योंकि भीतर विकार तो बने रहेंगे, ऊपर थोपना हो जाएगा, यह भी खतरनाक है। और भीतर आग सुलगती रहेगी, और वह किसी भी दिन तोड़ देगी सारे ढांचे को। वह भी खतरनाक है। जब ढांचा टूटेगा तो आदमी ठीक दूसरे एक्सट्रीम पर चला जाएगा, दूसरी अति पर चला जाएगा। अतियां हमेशा खतरनाक हैं। विवेक हमेशा मध्य में खड़ा होता है। अविवेक हमेशा अतियों पर जाता है। या तो वह बहुत भोजन करेगा, या फिर अगर आ गया मौका तो उपवास करेगा। बीच में रुकने वाला नहीं है। सम्यक आहार पर कभी रुकने वाला नहीं है। जितने उपवास में रस लेने वाले लोग हों, अगर आप बहुत गौर से खोज-बीन करेंगे तो आप पाएंगे, किसी न किसी दिन वह अतिभोजी जरूर ही रहे होंगे। ज्यादा भोजन जरूर उन्होंने कभी किया होगा। उसकी ही अति, उसकी ही प्रतिक्रिया लंबे उपवास पर ले जा सकती है। सम्यक पर वे कभी नहीं रुक सकते। बीच में वह कभी नहीं रुक सकते। एक कोने से दूसरे कोने पर मन घड़ी के पेंडुलम की तरह है, एक कोने से दूसरे कोने पर जाता है। बीच में कभी नहीं ठहरता है। हालांकि दोनों स्थितियां बेचैनी की हैं। जब बीच में होगा; तभी चैन हो सकता है, तभी शांति हो सकती है।

मैं अनुशासन के पक्ष में नहीं हूं। स्वच्छंदता के भी पक्ष में नही हूं। और यह कह देना चाहता हूं कि अनुशासन और स्वच्छंदता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, अलग-अलग चीजें नहीं हैं। जो कौम अनुशासित होगी, उसके नीचे स्वच्छंदता पलेगी। उसके नीचे पाप पलेगा, अपराध पलेगा। एक तरफ मंदिर बनते हैं, दूसरी तरफ जेल भी बनते हैं। मंदिर भी बनते जाते हैं रोज नये, जेल भी बनते जाते हैं, फिर भी हमको दिखाई नहीं पड़ता है कि मामला क्या है। एक तरफ पतिव्रत धर्म का उपदेश भी चलता है, दूसरी तरफ वेश्या भी पलती है; उसी घर के बगल में वेश्या भी पल रही है।

यह कौन पाल रहा है? जरूर इस पतिव्रत धर्म की छाया है, उसके साथ ही जुड़ी है। जहां-जहां पतिव्रत धर्म, वहां-वहां वेश्या। इसको अनिवार्य सूत्र समझ लेना। जहां-जहां धुआं, वहां-वहां आग। वैसा ही जहां-जहां पतिव्रत धर्म की अति, वहां-वहां पीछे वेश्या खड़ी हो जाएगी हमेशा। अभी तक दुनिया वेश्या से मुक्त नहीं हो सकी है, यह कैसा पतिव्रत धर्म है? इसमें जरूर कहीं कोई खामी है; जबरदस्ती थोपा हुआ है। यह प्रेम से आया हुआ नहीं है। यह प्रेम से आया हुआ होता, तो वेश्या नहीं हो सकती थी दुनिया में। आपका विवाह झूठा है, डिसिप्लिनड है, वह प्रेम से आया हुआ नहीं है। और जब विवाह प्रेम से नहीं आता तो पीछे वेश्या आएगी ही,

बच नहीं सकती। उसको भगाइए कहीं भी, हटाइए कहीं भी, वह मौजूद रहेगी, क्योंकि आप उसको पैदा कर रहे हैं। आपका विवाह झूठा है। वह प्रेम से नहीं विकसित हुआ है, थोपा गया है। उसे आप खींच रहे हैं बोझ की तरह, लेकिन वह आपके प्राणों का संगीत नहीं है, भार है, बोझ है।

और इस बोझ के परिणाम होंगे। यह पूरी की पूरी समाज-व्यवस्था डिसिप्लिनड तो है, इसमें एक अनुशासन तो है, लेकिन यह झूठा है, इसलिए इसके नीचे-नीचे स्वच्छंदता पलती है। नीचे-नीचे विरोधी तल भी चलता है। ऊपर से प्रेम भी चलता है। भीतर घृणा भी चलती है।

एक मित्र हैं, मुझसे बोले कि मैं अपनी पत्नी को बहुत प्रेम करता हूं। मैंने उनको कहा कि अगर आपको कल पता चल जाए कि आपकी पत्नी मुझे भी प्रेम करती है, फिर? वह बोलेः उसका सिर काट दूंगा। मैंने कहाः यह तो बड़ा अदभुत प्रेम है, जो इतनी सी बात पर सिर काटने को राजी हो गया है। यह तो प्रतिस्पर्धा हो सकती है, प्रेम नहीं हो सकता है। ईर्ष्या हो सकती है, प्रेम नहीं हो सकता है। अगर सच में आप अपनी पत्नी को प्रेम करते हैं, मैंने कहा, वह मुझे प्रेम करती है, तो खुश होना चाहिए कि मेरी पत्नी में जरूर कोई अदभुत बात होगी, एक आदमी और उसको प्रेम करने वाला मिल गया। तो आपको तो खुश होना चाहिए। जिसको मैं प्रेम करता हूं, उसको और लोग भी प्रेम करेंगे तो मेरा हृदय तो खुशी से भर जाना चाहिए।

लेकिन नहीं, मैं मालिक होना चाहता हूं, प्रेम कोई नहीं, करना चाहता। डोमिनेशन है। मालकियत, ओनरशिप है। स्त्री तो धन है, उसके मालिक हो जाओ। और जब आप मालिक होते हो, तो स्त्री भी बदला लेती रहती है चौबीस घंटे मालिक होने का। घर क्या हैं हमारे? कलह के केंद्र हैं। कोई परिवार है यह? उपद्रव की जड़ें हैं। कहां है परिवार? कहां है प्रेम वहां? कलह है चौबीस घंटे, सुबह से सांझ, सांझ से सुबह। लेकिन हम देखने को राजी नहीं, हम कहते हैं बड़ा प्रेम है। ऊंचा परिवार है। सब ठीक चल रहा है। बड़े आनंद में हैं। क्यों झूठी बातें हम दोहराए चले जा रहे हैं? और जब तक हम यह दोहराते रहेंगे तब तक सचाइयां ज्ञात नहीं होंगी। कोई क्रांति भी नहीं हो सकती जीवन में। ये बिल्कुल झूठी बातें हैं। ये बिल्कुल ही झूठी बातें हैं। इनके पीछे सचाइयां नहीं हैं, ये नाम हैं, जो हमने सीख लिए हैं और दोहरा रहे हैं। क्या भीतर सच में यह बात है? जहां प्रेम है, वहां ईर्ष्या नहीं हो सकती। और जहां ईर्ष्या है, स्मरण रखना, वहां प्रेम नहीं हो सकता है। ये दोनों साथ कभी होते ही नहीं। कभी ऐसा प्रेम किया है जहां ईर्ष्या न हो? अगर नहीं किया है तो समझना, अभी प्रेम ही नहीं किया है। प्रेम कोई और ही बात है। अलौकिक है। प्रेम कुछ और ही बात है। सिर्फ धार्मिक मन का लक्षण है। हर आदमी प्रेम नहीं कर सकता। हर आदमी तो केवल ईर्ष्या कर सकता है, घृणा कर सकता है, मालिक हो सकता है।

जिसको मैं प्रेम करता हूं, उसका मैं मालिक थोड़े ही होना चाहूंगा! मालिक तो हम उसके होना चाहते हैं, जिसको हम घृणा करते हैं। लेकिन पति का क्या मतलब होता है? पति का मतलब होता है मालिक, और पति मालिक बना बैठा है। वह पत्नी का मालिक है। उसको तो वह सम्पत्ति मानता रहा है। स्त्री-धन हम कहते ही रहे हैं, अपने मुल्क में। चीन में तो वह स्त्री में कोई आत्मा ही मानते नहीं रहे कि उसमें कोई आत्मा होती है! पति अगर मार डाले तो उस पर मुकदमा नहीं चलता था, बीस साल पहले तक भी। अगर पत्नी को मार डाले--अपने फर्नीचर को तोड़ दे, कुर्सी को तोड़ दे, ऐसा ही मामला था, इससे ज्यादा नहीं था। उस पर कोई अदालत मुकदमा नहीं चला सकती है। उसकी औरत है, उसने मार डाला है। वह उसकी सम्पत्ति है। बेचते रहे हैं लोग। हिंदुस्तान में बड़े-बड़े, जिनको हम कहते हैं धर्मराज, वह भी अपनी पत्नी को जुए में दांव पर लगाते रहे हैं। क्यों? सम्पत्ति मानते थे इसलिए।

यह प्रेम है? यह प्रेम हो सकता है यहां कोई? यह कोई प्रेम नहीं है। यह कोई भी प्रेम नहीं है। आप तो हैरान हो जाएंगे, राम ने सीता के लिए इतना बड़ा युद्ध किया, इतना बड़ा युद्ध किया, जाकर लड़े, फिर जब सीता को छीन लिया और लंका हार गई और रावण समाप्त हो गया तो आप हैरान होंगे, राम ने सीता से क्या कहा? राम ने सीता से कहाः तू यह मत समझना कि मैं तेरे लिए लड़ा हूं। एक स्त्री के लिए लड़ना कोई अर्थ रखता है? मैं लड़ा हूं अपने यश के लिए। मैं लड़ा हूं राज, अपने कुल की प्रतिष्ठा के लिए। तू यह मत समझना कि मैं तेरे लिए लड़ा हूं।

कैसे अभद्र शब्द हैं। सारी बात पर मिट्टी फिर गई। यहां प्रेम है कोई? नहीं, कुलधर्म है, अहंकार, वह कुलधर्म का अहंकार है। मेरा कुल, उसका अहंकार है। उसके लिए लड़ा हूं। स्त्री का क्या मामला है? पच्चीस स्त्रियां मिल सकती हैं। स्त्री से क्या लेना-देना है?

झगड़ा वह नहीं है। झगड़ा है अहंकार का। यह सारी की सारी हमारी चित्त की दशा रही है। इसमें प्रेम कहां है? तो राम को जब मौका आ गया कि उनके कुल-धर्म पर और मर्यादा पर चोट आने लगी और जब किसी ने एतराज कर दिया तो उस स्त्री को छोड़ कर अलग कर दिया। जिसके लिए लड़े थे, इतना उपद्रव किया था, इतनी हिंसा की, उसको अलग कर दिया। प्रेम होता तो खुद भी छोड़ देना था उसके साथ। क्या हर्ज था। एक दिन तो छूट ही जानी थी सारी बात। प्रेम होता तो कहते, ठीक है, मेरी स्त्री गलत है, वह जंगल जाती और मैं फिर उसके साथ चला जाता।

लेकिन प्रेम-व्रेम कुछ भी नहीं था। उसके पेट में गर्भ था, उन बच्चों से भी कोई प्रेम नहीं था। वहीं जंगल में वह भटकी, वह बच्चे वहां पैदा हुए। कौन सा प्रेम है? उन बच्चों से क्या लेना-देना है? लेकिन हम कहते हैं, हम प्रेम करते हैं अपने बच्चों को। हम उनके लिए मरने को राजी हैं। कुछ नहीं है। आप मरने को राजी हैं, अगर यह पता चल जाए, यह बच्चा आपसे पैदा नहीं हुआ है, आपकी पत्नी से किसी और से पैदा हुआ है, आप इसको मारने को राजी हो जाएंगे, इसके लिए मरने को राजी नहीं होंगे। यह मेरा है, यह अहंकार का मजा तो आप लेना चाहते हैं--मेरा लड़का, लेकिन इस लड़के से आपको कोई भी प्रेम नहीं है। यह जो जीवित प्राण स्पंदित हो रहे हैं, इस लड़के से आपका कोई संबंध नहीं है। मेरा लड़का! मेरे से मतलब है। अहंकार से मतलब है। वहां प्रेम कहां है?

लेकिन यह हमारा सारा का सारा रुग्ण समाज है, रुग्ण सभ्यता है, और हम कहते हैं, यह कहीं टूट न जाए, कहीं यह बीमारी नष्ट न हो जाए! इसे नष्ट हो जाने दें। इससे कोई हर्जा होने वाला नहीं है। यह मिट जाए तो सौभाग्य होगा। क्योंकि शायद इसके मिटने से हमको विचार उठे। शायद यह टूटने लगे तो हम सोचें कि कुछ और हो सकता है।

क्या मनुष्य के जीवन के आधार किन्हीं और ढंगों से रखे जा सकते हैं? जरूर रखे जा सकते हैं। जरूर रखे जाने चाहिए। लेकिन तब तक यह संभव नहीं होगा, जब तक हम इस समाज को स्वस्थ मानते रहेंगे और इस सभ्यता को सभ्यता मानते रहेंगे, और इस संस्कृति को ठीक समझते रहेंगे, तब तक यह नहीं होगा। और मैं यह नहीं कह रहा कि पूरब की संस्कृति या पश्चिम की संस्कृति, वे सब एक जैसी हैं। कोई बहुत बुनियादी फर्क नहीं है कि इधर की संस्कृति, उधर की संस्कृति, यह नहीं कह रहा। अभी तक मनुष्य ने जो संस्कृति पैदा की है वह अनुशासन की संस्कृति है, विवेक की संस्कृति नहीं है, यह मैं आपसे कह रहा हूं। चाहे वह किसी देश ने पैदा की हो, चाहे वह किन्हीं ने पैदा की हो, इससे फर्क नहीं पड़ता।

अभी विवेक के आधार पर सभ्यता खड़ी नहीं की जा सकी है। और जो सभ्यता विवेक पर खड़ी न हो वह सभ्यता झूठी है। उसके होने न होने से बहुत फर्क नहीं पड़ता। काम चल जाता है। और काम चलना कोई जीवन का आनंद नहीं है।

कौन सा आनंद है जीवन का? कौन सा? कोई भी नहीं है। बस चल रहे हैं, घिसट रहे हैं, समाप्त हो जाएंगे। और इसी को बचा रखना चाहते हैं। इसके बचाने में क्या प्रयोजन है? तो मत डरें इस बात से कि यह टूट जाएगी। हां, लेकिन जरूरी है इसके पहले कि यह टूटे, क्यों हम इसे तोड़ देना चाहते हैं, यह खयाल में होना जरूरी है। हम इसे विवेक से एक नये समाज के लिए तोड़ देना चाहते हैं। और उचित होगा कि तोड़ने में उतनी उत्सुकता न लें, जितना उस विवेक को जगाने में उत्सुकता लें। क्योंकि विवेक जगेगा तो यह तो टूट ही जाएगी। इसे तोड़ने के लिए कोई खास जरूरत नहीं है।

इसलिए मेरी सारी चेष्टा यह है कि विवेक जगे। व्यक्ति के भीतर स्व-विवेक हो, न कि समाज के द्वारा दिए गए इशारे, और उन पर वह चले। उसके भीतर स्व-विवेक हो। उसको भीतर अपना बोध हो। वह देखना सीखे, समझना सीखे। जीवन के आनंद के रास्ते सीखे। फिर कोई कारण नहीं है कि दुख की तरफ जाए, पीड़ा की तरफ जाए। फिर कोई कारण नहीं है, वह दूसरे को दुख दे और पीड़ा दे। फिर कोई कारण नहीं, क्योंकि विवेक हमेशा उस मार्ग पर ले जाता है, जो शुभ है। जहां विवेक ले जाए, वही शुभ है। लेकिन हम तो विवेक को सिखाते ही नहीं, तो विवेक जगेगा कैसे? हम तो सिखाते हैं अनुशासन। हम तो सिखाते हैं मानो, विश्वास करो, श्रद्धा करो। हम नहीं सिखाते सोचो, खोजो। हमारा सिखावा ही पूरा गलत है। पूरी शिक्षा के आधार ही गलत हैं। हम जो समझा रहे हैं, वही गलत है। जरूरी है कि हम उसके भीतर सोए हुए विवेक को जगाएं, न कि उसे हम कहें कि मानो और स्वीकार करो।

जब तक हम इस तरह की कोशिश जारी रखेंगे--मानो वाली, विश्वास कराने वाली, तब तक मनुष्य के भीतर विवेक जन्म नहीं ले सकता है। यह तो बड़े आश्चर्य की बात है कि हमारे इस बीमार समाज में भी कभी कोई इक्का-दुक्का विवेक को उपलब्ध महावीर, बुद्ध या क्राइस्ट और कृष्ण पैदा हो जाता है, मुश्किल से। आश्चर्यजनक है। यानी ये तो हमारी सब कोशिशों के बावजूद पैदा हो जाते हैं, बड़ी हैरानी की बात है। हमारी कोशिश तो ऐसी है कि हो ही नहीं सकते पैदा। यह बहुत हैरानी की बात है कि कैसे पैदा हो जाता है एकाध कभी? कैसे हमसे बच जाता है, कैसे हमारी तरकीब के बाहर निकल जाता है, हमारी मशीन के बाहर खड़ा हो जाता है? और ऐसी बातें कहने लगता है, जो कि हम चाहते नहीं थे कि वह कहे। इसके लिए हमने कोई तैयारी नहीं करवाई थी। हमने तो कुछ और बात के लिए तैयारी करवाई थी। वे सब गड़बड़ कर देते हैं। ऐसे कुछ थोड़े से डिस्टर्ब्र्स अभी तक पैदा होते रहे हैं, थोड़े से विघ्न-बाधा देने वाले लोग। उन पर ही आशा टंगी है। दुनिया में जब इस तरह के लागों की संख्या थोड़ी बढ़े, जो जीवन में विवेक को उपलब्ध हो रहे हों, तो एक नई संस्कृति पैदा हो सकती है। अभी तक की सब संस्कृति, समझें तो संस्कृति नहीं है, अभी प्रारंभिक प्रयोग हुए हैं, जो असफल हो गए हैं। अभी कोई प्रयोग सफल नहीं हुआ है।

यह जो मैं विवेक की बात कह रहा हूं, इसको मैं और आगे समझाऊंगा कि मेरा क्या प्रयोजन है विवेक से।

इसी संदर्भ में एक प्रश्न और पूछा हुआ है। पूछा हुआ है कि हम अपने मन की जो हमारी मूल वृत्तियां हैं--क्रोध है, काम है, लोभ है, मोह है, इनको कैसे ट्रांसफार्म करें? कैसे परिवर्तित करें?

वह मित्र मुझे दोपहर में भी मिले थे। उनसे मैंने कहा था कि लिख कर आप दे देना, बाद में बात कर लूंगा। तो उन्होंने वह लिख कर दिया है। उन्होंने दोपहर में मुझसे कहा, कि ये जो शत्रु हैं हमारे, ये काम, क्रोध, मोह, लोभ, इनसे हम कैसे ऊपर उठें, कैसे इनको बदलें? तो मैंने उनसे पहला तो यह निवेदन किया कि कृपा करके इनको शत्रु न मानें। क्योंकि जिसको शत्रु मान लिया उससे लड़ाई शुरू होती है, उसकी बदलाहट नहीं होती है फिर। और जिससे आप लड़ते हैं, उसे आप कभी बदल नहीं सकते हैं। जिससे भी आप लड़ते हैं, उसे कैसे आप बदलेंगे? उसको दबा सकते हैं, उसके ऊपर बैठ सकते हैं। लेकिन वह नीचे मौजूद रहेगा। और कोशिश में रहेगा कि कब आपके हाथ से छूट जाए और वापस बाहर निकल जाए। उसे आप सप्रेस कर सकते हैं, जिसे शत्रु मान लिया था, दमन कर सकते हैं, लेकिन उसे बदल नहीं सकते।

लेकिन यह जो अनुशासन की सभ्यता है, इसने यही सिखाया है दमन करो, दबाओ। विवेक यह नहीं कहेगा कि दबाओ। विवेक यह कहेगा, पहचानो, समझो। और बड़े आश्चर्य की बात है, अगर आप समझने लगें तो ये शत्रु नहीं हैं, ये सब मित्र हैं। नासमझी के कारण शत्रु हैं, समझ के कारण मित्र हो जाते हैं।

अगर आपके घर के पास कचरा, कूड़ा-करकट इकट्ठा हो जाए, तो उससे गंदगी पैदा होगी, बास बढ़ेगी, कीड़े-मकोड़े बढ़ेंगे, आपका घर गंदगी का घर हो जाएगा। लेकिन अगर आपमें समझ हो तो उसी गंदगी को बगीचे में डाल सकते हैं और खाद बना सकते हैं और बीज बो सकते हैं और फूल आ सकते हैं। वही खाद की दुर्गंध फूलों की सुगंध बन जाएगी! वही दुर्गंध, जो घर को गंदा कर देती है, फूलों के सुवास से भर देगी। खाद बन जाएगी वही दुर्गंध, फूलों की सुगंध बन जाएगी।

जीवन में यह जो हमको दिखाई पड़ता है--क्रोध है, लोभ है, मोह है और हम सोचने लगते हैं कि ये सब शत्रु हैं, यह गलत बात है। ये सब जीवन की शक्तियां हैं, शत्रु नहीं हैं। इनको अगर समझें, पहचानें, तो ये मित्र हो जाएंगे। अगर न समझें, न पहचानें, तो ये शत्रु हो जाएंगे। शत्रुता और मित्रता इस बात पर निर्भर है कि आप इनके प्रति विवेकपूर्ण हैं या अविवेकपूर्ण हैं। इनका ही तो परिवर्तन होगा। जिस आदमी के भीतर क्रोध नहीं है, उसके भीतर कभी क्षमा भी नहीं हो सकती। कि हो सकती है?

महावीर इतने बड़े क्षमाशाली हुए, इससे मैं आपसे यह कह सकता हूं कि वह जरूर महाक्रोधी रहे होंगे। क्योंकि जितनी बड़ी क्रोध की शक्ति हो, उतनी ही बड़ी क्षमा की शक्ति प्रकट हो सकती है। क्रोध की शक्ति ही तो क्षमा बनती है। जिनके भीतर सेक्स, काम हो, उतने बडे ब्रह्मचर्य की उनके भीतर अभिव्यक्ति हो सकती है। जिनके भीतर काम ही न हो, जिनके भीतर सेक्स ही न हो, उनके भीतर ब्रह्मचर्य के विकास की कोई संभावना नहीं है। क्योंकि ब्रह्मचर्य बनेगा क्या? वही सेक्स-एनर्जी, वही काम की शक्ति तो ब्रह्मचर्य बनेगी, ओज बनेगी।

तो इसे मैं कैसे शत्रु कहूं? इसी पर तो सारा ब्रह्मचर्य खड़ा होगा। इसी पर तो सारा विकास होगा। ये शत्रु नहीं हैं, जीवन की शक्तियां हैं। लेकिन डिसिप्लिन वाले समाज ने हमको सिखाया है कि ये शत्रु हैं, इनको दबाओ, इनको नष्ट करो। तब ये नष्ट नहीं होते। दबे हुए भीतर बैठे रहते हैं।

बड़े से बड़े त्यागी के भीतर लोभ बैठा रहता है। बल्कि वह त्याग करता ही इसलिए है कि मोक्ष का लोभ है, नहीं तो वह त्याग भी नहीं करेगा। त्याग के पीछे भी मोटिव लोभ है। वह इसलिए त्याग करता है कि उसको पक्का विश्वास बैठने लगा है कि त्याग करेगा तो स्वर्ग में सब कुछ मिलेगा। यहां शराब छोड़िए, तो ऐसे धर्मग्रंथ हैं, जो कहते हैं, वहां शराब के चश्मे बह रहे हैं। यहां शराब छोड़िए, वहां शराब के झरने बह रहे हैं। और वहां मजे से पीजिए। जो यहां नहीं छोड़ेगा, वहां नहीं पा सकेगा। तो छोड़ने को लोग राजी हो जाते हैं। यह त्याग नहीं है, यह लोभ है। यहां धन का त्याग करिए तो स्वर्ग में सुख भोगिए, इंद्र हो जाइए, या कुछ और हो जाइए।

इसलिए कथाएं हैं पुरानी कि इंद्र बहुत डरता है त्यागियों से। और त्यागियों को डिगाने का, परेशान करने का, अप्सराएं भेजने का उसका धंधा ही है पूरा। अभी तक यही रहा है कि कोई कहीं त्याग करे, कोई साधना करे, इंद्र का धंधा और देवताओं का काम यह है कि उसको भ्रष्ट करे। यहां एंटी-करेप्शन डिपार्टमेंट है, वहां करेप्शन का डिपार्टमेंट है इंद्र के पास। वह हजारों साल से इसी काम में लगा हुआ है कि लोगों को करप्ट करो, औरतों को भेजो साधु-संन्यासियों के पास। कोई आती नहीं औरतें-वौरतें। कोई धंधा ऐसा खोला नहीं है दुनिया में। लेकिन वह साधु संन्यासियों ने सेक्स को दमन किया हुआ है। वह दमन इतना हो जाता है कि एक घड़ी में उस दमन के कारण ही उस दमन की तीव्रता के कारण ही उनके स्वप्न और उनकी कल्पनाएं अप्सराएं बन जाते हैं, और कुछ भी नहीं है। कोई कहीं भेजने वाला नहीं है। लेकिन वहां भीतर सेक्स को दबाया, दबाया, दबाया! औरतों से आंख बंद की, आंख बंद की, दूर भागे, भीतर स्त्री की प्रतिमा खड़ी होने लगी दमन के कारण। वह बाहर से तो स्त्रियों से भाग गए, भीतर स्त्री खड़ी हुई है। वह जितना भाग रहे हैं, वह इस बात का सबूत है कि भीतर डर है, इसलिए स्त्री से भाग रहे हैं। उस डर के कारण इमेजिनेशन स्त्री की तरफ जाने लगेगा। आप जिस तरफ से भागेंगे। उसी तरफ कल्पना दौड़ने लगेगी। जिस तरफ से रोकेंगे, उसी तरफ मन भागने लगेगा। यह स्वाभाविक, सहज नियम है। करके देखें, यही होगा।

तिब्बत में एक फकीर हुआ है मिलारेपा। एक आदमी उसके पास आया, बहुत सेवा की और कहा कि मुझे कोई मंत्र दे दें, कोई सिद्धि दे दें। उसने बहुत समझाया कि मैं सीधा-सादा फकीर हूं, मैं कोई मदारी जादूगर नहीं हूं। तुम कहीं और जाओ। ऐसे मदारी भी हो चुके हैं जो बहुत बड़े फकीर रहे। तुम वहां चले जाओ, क्योंकि मैं तो सीधा-सादा आदमी हूं। लेकिन वह नहीं माना, नहीं माना तो उसने पिंड छुड़ाने के लिए उसे एक कागज पर एक मंत्र दे दिया और कहा जाओ, इसे ले जाओ। आज पूर्णिमा की रात है, तुम एकांत में बैठ जाना। इसका पांच दफे पाठ कर लेना, तुम्हारे पास अदभुत शक्तियां आ जाएंगी। तुम जो चाहोगे सो करना। वह एकदम भागा, इसी के लिए तो आया था। फिर साधु को उसने धन्यवाद भी नहीं दिया, पैर भी नहीं छुए। रोज वह कई दफा छूता था। आज तो उसने कागज लिया, और भागा। मंदिर की सीढ़ियां उतर रहा था, तभी साधु चिल्लाया। वह बोला, ठहरो, मैं एक शर्त बताना तो भूल ही गया, नहीं तो सब गड़बड़ हो जाएगा। जब तुम उसे याद करो, तब बंदर का स्मरण न आए। बस, इतना ही खयाल रखना और कोई तकलीफ नहीं है।

वह बोला, आपने भी क्या फिजूल की बात कही! मेरी जिंदगी बीत गई आज तक बंदर का स्मरण नहीं आया। उसने कहा, बस तब ठीक है, बस सिद्ध हो जाएगा। वह सीढ़ियां पूरी भी नहीं उतर पाया कि बंदर! आंख मटके, सिर हिलाए, भीतर से भगाए, राम-राम जपे, जो भी करता है, सब तरह से कोशिश करे, लेकिन बंदर है कि वह बिल्कुल स्पष्ट होने लगा। वह कल्पना न रही, वह बिल्कुल उसके पास ही दिखाई पड़ने लगी, वह पूंछ भी हिलाता है, वह बैठा है भीतर। वह बड़ा घबड़ाया कि यह क्या हुआ? वह जब तक घर पहुंचा, तब तक बंदर बिल्कुल जिंदा चीज बन गई। अब कोई ऐसी चीज नहीं है कि वह छुए तो स्पर्श हो जाए। कोई जिंदा चीज भीतर बन गई। अब वह बड़ा परेशान हुआ, मुश्किल हो गई। नहाया, धोया, पच्चीस तरह की स्तुतियां कीं, हे भगवान, इष्ट देवताओं को स्मरण किया, जंत्र-मंत्र पढ़े। कोई फल नहीं। जितना वह यह करने लगा, बंदर जो था भीतर उसके साथ ही है। वह जहां जाता है, वहीं साथ है। आंख बंद करता है, बैठा हुआ है भीतर। देख कर हंस रहा है। और उसे घबड़ाहट होने लगी कि यह क्या मामला है? यह कौन बंदर है? इतने जोर से आ गया, बात क्या हो गई! दूसरे दिन वह बड़ी सुबह साधु के पास आया। साधु ने कहाः मैं क्या करूं, शर्त यही थी। मेरे गुरु ने भी

बताई थी, मैं भी सिद्ध नहीं कर पाया। और मैंने अपने गुरु से पूछा था, उन्होंने कहा था, मेरे गुरु ने बताई थी, मैं भी सिद्ध नहीं कर पाया। और ऐसे ही अनेक पीढ़ियों तक यह चलता रहा। अभी तक यह सिद्ध हुआ नहीं।

अगर स्त्री से भागेंगे, स्त्री सजीव हो जाएगी। धीरे-धीरे जीवित हो जाएगी। नाचने लगेगी सामने, निकट आने लगेगी। तब आप समझेंगे, इंद्र अप्सराओं को भेज रहे हैं। ऐसी बेवकूफी कहीं नहीं चल रही है। यह अप्सरा अपने पैदा की है, स्त्री से भागकर पैदा की है, अपनी ही स्त्री से भाग कर। और जो इस संबंध में सच है, वही क्रोध के संबंध में, वही लोभ के संबंध में सच है। दमन से कोई छुटकारा नहीं है। दमन से तो आप अपने हाथ से अपनी मौत में फस रहे हैं। दमन कोई रास्ता नहीं है। दमन कोई मार्ग नहीं है। विसर्जन करना होता है और विसर्जन के लिए लड़ना नहीं पड़ता। जीवन की शक्तियों को समझना पड़ता है। अंडरस्टैंडिंग की जरूरत है, सप्रेशन की नहीं। समझेंगे, यह जीवन की शक्तियां हैं। सच में शक्तियां हैं। जिस बच्चे में क्रोध न हो वह इम्पोटेंट होगा। वह नपुंसक होगा, उसमें कुछ भी नहीं होगा। वह तो कोई धक्का दे, कोई मारे, वह वहीं गिर जाएगा, वहीं पड़ा रहेगा। वह तो मुर्दा हो जाएगा, वह तो जिंदगी उसकी खराब हो जाएगी। नहीं, बच्चे में क्रोध होना चाहिए, नहीं तो बच्चे में कोई प्राण ही नहीं होंगे।

ये तो सारी जीवन की शक्तियां हैं। खतरा यह नहीं है कि ये हैं। खतरा यह है कि कोई इन्हीं पर रुक जाए। इनसे बहुत कुछ हो सकता था और आगे। ये बुराइयां नहीं हैं, ये पाप नहीं हैं, ये शत्रु नहीं हैं; बल्कि इन पर रुक जाना नासमझी है। इनको और आगे ले जाया जा सकता है। क्रोध क्षमा तक पहुंच सकता है। और काम ब्रह्मचर्य तक पहुंच सकता है। इनको पहुंचाया जा सकता है। ये शुरुआत हैं, ये बीज हैं। और अगर आप इन्हीं से लड़ने लगे तो फिर पौधे कैसे पैदा होंगे? इन्हीं से तो पैदा होने वाले हैं। तो जो आदमी क्रोध से लड़ेगा, वह क्रोध को दबा लेगा और क्रोध के हाथ में हमेशा के लिए कैदी हो जाएगा। क्रोध से कभी ऊपर नहीं उठ सकेगा। उसके भीतर अक्रोध कभी नहीं आ सकेगा। अक्रोध क्रोध के विरोध में नही आता। अक्रोध आता है, क्रोध को समझने, पहचानने और परिवर्तित करने से।

परिवर्तन के क्या सूत्र हैं, वह मैं कल चर्चा करूंगा। यह मैंने... कल दोपहर इसकी बात करूंगा कि कैसे हमारे भीतर यह स्थितियां परिवर्तित हो सकती हैं, लेकिन प्राथमिक बात आपसे कह दूं कि यह भाव गलत है कि ये हमारे रिपु हैं, शत्रु हैं, हमारे दुश्मन हैं--यह बात गलत है। ये हमारी शक्तियां हैं; ये हमारे जीवन की ऊर्जाएं हैं; ये हमारे जीवन की एनर्जीज हैं। इनके ऊपर ही कुछ खड़ा होगा। इसलिए इनके दुश्मन बनने से तो गलती हो जाएगी। इन्हें प्रेम करना होगा, मैत्री करनी होगी, इनको समझना होगा, इन्हें आहिस्ता से परसुएड करना होगा, राजी करना होगा कि और ऊपर विकसित हो सकें।

एक बीज को माली बोता है, प्रेम करता है, पानी डालता है, रक्षा करता है, बाड़ लगाता है कि कोई जानवर न खा जाए। फिर धीरे-धीरे उसमें अंकुर आता है, पत्ते आते हैं, फिर फूल आते हैं, फल लगते हैं। जो बीज के साथ करना होता है, वही क्रोध, लोभ, काम, मोह के साथ करना होता है। ये सब सीड्स हैं, ये सब बीज हैं। इनके भीतर बड़ी संभावनाएं छिपी हैं। लेकिन जो इनसे लड़ने लगेगा, वह डूब जाएगा। वह कहीं जा नहीं सकता। वह अपने हाथ से नरक का रास्ता तय कर रहा है, स्वर्ग की इच्छा में। स्वर्ग की इच्छा में नरक का रास्ता तय कर रहा है। लेकिन अगर वह इन्हें पहचान लेगा और इनको बदल सकेगा, तो मोक्ष अपने आप उसके द्वार आ जाएगा। स्वर्ग की इच्छा में नरक पैदा हो जाता है। लेकिन जो स्वर्ग की इच्छा नहीं करता, वह नरक से बच जाता है। और जो अपने भीतर बीज रूप संभावनाएं उपलब्ध हुई हैं, उनको पहचानता है और परिवर्तित करता है, उसके जीवन में एक ट्रांसफार्मेशन फलित होता है। एक दिन उसके भीतर अदभुत चीजें प्रकट होनी शुरू हो

जाती हैं। बहुत है छिपा मनुष्य के भीतर और जिनको हम बुरा कहते हैं, उन्हीं सब बुराइयों के भीतर छिपा है। शायद प्रकृति की तरकीब ऐसी है कि किसी कोमल चीज को छिपाने के लिए बहुत सख्त चीज की खोल पहना दी जाती है। बीज होता है भीतर, ऊपर सख्त खोल होती है। वह सख्त खोल उस बीज के भीतर रक्षा करती रहती है। इस क्रोध की खोल के भीतर कहीं क्षमा छिपी है, लेकिन इस खोल को जब हम समझेंगे और प्रयास करेंगे तो वह क्षमा का पौधा भी इसमें से निकल सकता है।

यह मैं कल आपसे बात करूंगा कि कैसे हो सकता है। रात्रि का ध्यान करना है तो थोड़ी सी बात रात्रि के ध्यान के संबंध में समझा दूं, और फिर हम ध्यान के लिए बैठेंगे।

सुबह हमने ध्यान किया। वह जागरण का प्रयोग था कि हम सब भांति भीतर जागे रहें। जागरण का प्रयोग तो अभी करना है, लेकिन एक बहुत दूसरे रास्ते से। शरीर तो सो जाए, मन तो सो जाए और हम जागे रहें। सुबह शरीर भी जागा हुआ था, मन भी जागा हुआ था, हम नहीं जागे हुए थे। रात्रि का प्रयोग है, शरीर तो पूरी तरह सो जाए, मन भी सो जाए और फिर हमारे भीतर कुछ जागा रहे। इसके लिए रात्रि के सोने के पहले का ध्यान है। जब जाएं बिस्तर पर, तब इसे करें और सो जाएं। इसके माध्यम से धीरे-धीरे पूरी निद्रा ध्यान में परिवर्तित हो जाएगी, हो सकती है। सुबह के ध्यान को अगर धीरे-धीरे विकसित करें तो चित्त में से व्यर्थ के विचार क्षीण हो जाएंगे। धीरे-धीरे चित्त का ऊहापोह बंद हे जाएगा, अशांति विलीन हो जाएगी और एक सतत शांति की धारा भीतर बहने लगेगी। रात्रि के ध्यान को करें तो निद्रा में से स्वप्न विलीन हो जाएंगे, निद्रा शांत और गहरी हो जाएगी। और एक अदभुत आनंद की धारा भीतर प्रवाहित होने लगेगी। सुबह उठेंगे इस धारा को लेकर और सुबह का ध्यान करें, दिन में उसकी धारा को फैलने दें और रात्रि में सोने के पहले इस ध्यान को करें। ये दो बिंदु हैं संक्रमण के, ट्रांजीशन के। जब हम नींद के बाहर आते हैं, वह क्षण, और जब हम जागने से नींद में जाते हैं, वह क्षण। ये बड़े महत्वपूर्ण हैं। ये संध्या काल हैं। वह संध्या नहीं, जब सूरज डूबता है; उससे क्या लेना-देना है? लेकिन जब आप सोते हैं, तब आपके जीवन में, आपकी चेतना में एक घटना घटित होती है। सोने का क्रम बंद होता है, जागने का क्रम शुरू होता है। उस बीच के गैप में आप वहां होते हैं जहां आत्मा है। सोने का काम बंद होता है, जागने का काम शुरू होता है। बीच में जो छोटा सा क्षण होता है, आप वहां होते हैं। ये दो संध्या के क्षण हैं। ये बहुमूल्य हैं। संध्या के क्षणों में अगर ध्यान का प्रयोग हो तो वह बहुत गहरे प्राणों में प्रविष्ट हो जाता है।

तो सुबह का प्रयोग है, जब आप सोकर उठें तब, रात्रि का प्रयोग है, जब आप नींद में जाएं तब। नींद की ही तरह उसकी व्यवस्था है। शरीर को सब भांति ढीला छोड़ देना है। लेट कर ही उसे करना है। अभी हम करेंगे तो सब दूर-दूर हट जाएंगे और लेट जाएंगे। लेटकर शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ देना है। ढीला ऐसे, जैसे शरीर मुर्दा हो गया हो। कोई प्राण ही नहीं है। एक-एक अंग का ढीला करते जाना है। पैर की तरफ से शुरू करना है। पैर का पंजा ढीला छूट जाए, फिर घुटने तक ढीला छूट जाए, फिर कमर तक ढीला छूट जाए। ऐसा एक-एक अंग को ढीला छोड़ते जाना है। मैं भी आपके सहयोग के लिए यहां सुझाव देता जाऊंगा एक-एक अंग के लिए। जिस अंग को मैं कहूं, भीतर उसका ही स्मरण करना और उसे ढीला छोड़ देना। एक दो तीन मिनट में सारा शरीर ढीला छूट जाता है। एक दस पंद्रह दिन प्रयोग करने पर आप पाएंगे कि शरीर को इतना ढीला किया जा सकता है कि आप खुद ही अपने हाथ को उठाना चाहें तो वह नहीं उठेगा। शरीर के तो हम मालिक हैं। हम चलना चाहते हैं, तो पैर चलना शुरू कर देते हैं। हम दौड़ना चाहते हैं तो पैर दौड़ने लगते हैं, हम रुकना चाहते हैं तो पैर रुक जाते हैं। तो हम शिथिल होना चाहेंगे तो पैर शिथिल क्यों न होंगे? लेकिन उस तरफ हमने कभी ध्यान

नहीं दिया है। हम दौड़े, हम चले, लेकिन हमने शिथिल होने की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। शरीर के तो हम मालिक हैं। हम बायां हाथ उठाते हैं तो बायां उठता है, दायां हाथ उठाते हैं तो दायां उठता है। नहीं उठाते तो दोनों नहीं उठते। बैठा हूं तो बैठा हूं, खड़ा होना चाहूंगा तो खड़ा हो जाऊंगा। वह मेरा अनुगमन करता है, मेरे पीछे आता है।

एक बिल्कुल नई दिशा में काम करना है कि शरीर को हम कह रहे हैं कि तुम बिल्कुल मुर्दे की भांति हो जाओ। यह नई आज्ञा है, अभी तक आपने दी नहीं होगी। लेकिन शरीर इसके लिए भी राजी हो जाएगा। शरीर तो जड़ है, वह तो हमेशा राजी है। उससे आप जो काम लेना चाहेंगे वह करेगा। शरीर के मालिक तो आप हैं। लेकिन हो सकता है कि दस-पांच दिन आपको लग जाएं पूरी की पूरी सफलता में, क्योंकि आपने कभी यह आज्ञा नहीं दी। यह नई आज्ञा है। उसे पता नहीं कि आपने इसे भी कभी चाहा है। दस-पंद्रह दिन आप प्रयोग करेंगे, पाएंगे कि शरीर बिल्कुल मुर्दे की भांति शिथिल हो जाता है। इस शिथिलता को इतनी दूर तक ले जाया जा सकता है कि अगर आप चाहें तो कह सकते हैं कि मैं अलग हो गया शरीर से, तो आप अलग तक हो सकते हैं।

लेकिन प्रारंभिक रूप से इतना ही करें कि सब भांति शरीर को शिथिल छोड़ दें और यह भावना करें कि शरीर शिथिल होता जा रहा है। अब कह दें शरीर को कि शरीर, शिथिल हो जाओ। यह अभी हम प्रयोग करेंगे। जब शरीर बिल्कुल शिथिल हो जाएगा--जरूरी नहीं कि आज ही हो जाए, सुबह आकर मुझसे कोई न कहे कि हम तो किए, लेकिन वह हमसे नहीं हुआ। इतनी जल्दबाजी और अधैर्य की बात नहीं है। नहीं तो सुबह कोई ध्यान में बैठा हो और वह मेरे पीछे-पीछे चला आए और कहे कि नहीं, यह ध्यान मुझे नहीं हुआ।

जीवन में क्षुद्र चीजों पर हम बहुत समय लगाने को राजी होते हैं। श्रेष्ठ समय पर बिल्कुल समय लगाने को राजी नहीं होते हैं। एक आदमी को एम.ए. करना होता है, तो पंद्रह-सोलह साल न मालूम क्या-क्या व्यर्थ का याद करता है। परीक्षाएं देता है सत्रह साल, और हिंदुस्तान में औसत उम्र होती है कुल उन्तीस साल। यानी जिंदगी का असली हिस्सा तो वह युनिवर्सिटी पढ़ने में समाप्त कर देता है। जब मरने के करीब आ जाता है, औसत दृष्टि से तब वह दुनिया में काम करने के लिए लौटता है। एक पैर तो उसका कब्र में ही चला गया। लेकिन वह कभी नहीं पूछता कि मैंने इतने दिन पढ़ा-लिखा है, अब फल क्या मिल गया है मुझे? कभी नहीं पूछता, लेकिन ध्यान करने बैठेगा तो वह पूछेगा पंद्रह मिनट के बाद कि अभी तक तो आत्मा के दर्शन नहीं हुए।

इससे क्या पता चलता है? सत्रह साल एक आदमी साधारण सी परीक्षाएं और एक कागज का सर्टिफिकेट लेने में गंवा देता है। और कभी नहीं पूछता कि क्या मिला सत्रह साल में? क्या हुआ? लेकिन अगर उससे कहा जाए ध्यान, तो वह कहेगा, पंद्रह मिनट खराब गए, अभी कोई आत्मा का दर्शन नहीं हुआ। नहीं, इसका मतलब यह है, न कोई प्यास है, न कोई जिज्ञासा है, न खोज की इच्छा है। नहीं तो पंद्रह जन्म में भी आत्मा मिल जाए तो भी वह कहेगा, कितनी जल्दी मिल गई! क्योंकि आत्मा जैसी चीज का मिल जाना पंद्रह जन्म में भी सस्ता और सरल है। और स्मरण रखें, जो बहुत धैर्य से चलते हैं वे ही इस जगत में प्रवेश कर पाते हैं। क्योंकि धैर्य भीतर एक समता लाता है और शांति लाता है, तनावशून्यता लाता है। जो धीरे-धीरे जाते हैं, वे ही पहुंच पाते हैं। इतने धीरे-धीरे, जैसे उन्हें पहुंचने की कोई जल्दी नहीं है। यह बड़े आश्चर्य की बात है, जो दौड़ते हैं, वह नहीं पहुंच पाते, जो धीरे-धीरे जाते हैं वे पहुंच जाते हैं। और अगर इतने धीरे कि वह वहीं खड़े हो जाएं, कहीं न जाएं, तो इसी वक्त पहुंच गए। फिर कोई जरूरत ही नहीं रही कहीं जाने की, पहुंच ही गए, रुक जाएं तो। तो बहुत आहिस्ता प्रयोग में प्रवेश करने की बात है।

पहले शरीर ढीला छोड़ देंगे। फिर धीरे-धीरे भाव करेंगे कि श्वास शांत होती जा रही है। श्वास भी हमारा अनुकरण करती है, आपने खयाल नहीं किया होगा। और आपने यह भी खयाल नहीं किया होगा कि श्वास हमारे मन के साथ बड़े गहरे रूप से संबंधित है। जब आप क्रोध में आते हैं, तब आपने खयाल किया होगा कि श्वास की गति बदल जाएगी। श्वास डावांडोल हो जाएगी, पेट चलने लगेगा, रिदिम टूट जाएगा श्वास का। लेकिन कभी आपने खयाल किया कि क्रोध से और श्वास का क्या संबंध है? और कभी आपने यह भी खयाल किया कि अगर आपको क्रोध करना हो तो कभी ऐसा प्रयोग करें कि श्वास टूटे और आप क्रोध कर लें, आप क्रोध भी न कर पाएंगे। अगर आप श्वास के रिदिम को न टूटने दें, आप क्रोध नहीं कर सकेंगे। अगर आप यह तय कर लें कि मैं क्रोध तो करूंगा, कोइ फिक्र नहीं, लेकिन मैं श्वास की लयबद्धता को नहीं टूटने दूंगा। शांति से श्वास लेता रहूंगा, फिर क्रोध करूंगा। कभी नहीं कर पाएंगे। मन के भाव श्वास के साथ बहुत गहरे रूप से संबंधित हैं। जब आपके चित्त में बहुत सेक्सुअलिटी घूमेगी तो आपके श्वास की रिदिम टूट जाएगी। एकदम टूट जाएगी। श्वास गड़बड़ चलने लगेगी, तेजी से नीचे-ऊंचे आने लगेगी। उसका संगीत और उसका आनंद क्षीण हो जाएगा, उसकी लयबद्धता नष्ट हो जाएगी। अगर श्वास लयबद्ध हो जाए, तो भीतर मन में क्रोध और सेक्स मुश्किल हो जाएंगे। उनके भाव उस क्षण में आने कठिन हो जाएंगे। अगर श्वास बिल्कुल शांत गति से चलने लगे, तो आप पाएंगे कि भीतर मन शांत हो गया।

तो पहले हम शरीर को शांत और शिथिल छोड़ देंगे। शरीर के शिथिल होते ही श्वास अपने आप शांत होती है। फिर हम श्वास को भाव करेंगे कि श्वास भी शांत होती जा रही है। एक-दो-तीन मिनट में श्वास भी शांत हो जाएगी। शांत का मतलब यह मत समझ लेना कि बंद हो जाएगी। कई लोग उसको रोक लेते हैं। रोकना नहीं है आपको। फिर बाद में मुझसे कहते हैं कि वह तो मैंने रोक लिया था तो और जोर से चलने लगी। रोकने से चलेगी। जो भी चीजें रोकी जाएंगी, वह जोर से चलती हैं।

तो श्वास को रोक मत लेना कि इसको रोक लेना है। रोक लेंगे तो कितनी देर रोकेंगे? फिर वह जोर से चलेगी, फिर वह बदला लेगी न! जितना रोका था उतना बदला लेगी, उतनी फिर जोर से चलेगी। स्वाभाविक है; जिसको भी रोकेंगे, वह बदला लेगा। रोकना नहीं है, शिथिल छोड़ देना है और शांत होने का भाव करना है। कुछ रोकना नहीं है। रुकेगी भी नहीं, क्योंकि रुक जाएगी तो आप जिंदा कैसे रहेंगे? रुकेगी नहीं, रिदमिक हो जाएगी। लयबद्ध हो जाएगी--बहुत शांत, बहुत धीमी, बहुत आहिस्ता। इतनी शांत तक हो सकती है कि आपको पता भी न चले कि चलती है कि नहीं चलती है। वह तो चलेगी, लेकिन उसके कंपन इतने शांत हो जाएंगे कि आपको पता नहीं चलेगा।

यह तो धीरे-धीरे होगा, लेकिन अभी प्रयोग करना है, प्राथमिक। और जब श्वास शांत हो जाएगी, तब मैं कहूंगा कि विचार भी शांत हो रहे हैं। मन भी शांत हो रहा है। फिर मैं अंत में कहूंगा कि दस मिनट के लिए सब शांत हो गया। शरीर मुर्दे की भांति पड़ा रहेगा, श्वास धीमी चलती रहेगी, विचार के कंपन कम हो जाएंगे। हो सकता है कि कुछ विचार आएं, क्योंकि चौबीस घंटे की वे आदतें हैं, तो पहले दिन में ही वह रुक जाएं यह संभव नहीं है। लेकिन थोड़े दिन प्रयोग करेंगे तो थोड़े दिन में दिखेगा कि उनकी गति धीमी हो गई। वह धीमे कदमों से आते हैं। एक विचार आता है, बीच में जगह छूट जाती है, दूसरा आता है। धीरे-धीरे गैप्स बढ़ते जाएंगे, मेहमान कम हो जाएंगे, जैसे रास्ता चलता है, बहुत भीड़ जा रही है। रास्ता चलता है, कभी कोई निकल जाता है। सन्नाटा हो जाता है, फिर कोई निकल जाता है। फिर ऐसा हो जाता है कि घंटों बीत जाते हैं, कोई नहीं निकलता है। यह धीरे-धीरे होगा। मेहमान बहुत दिन के बुलाए हुए हैं, एकदम से नहीं जा सकते। विदा करना बहुत कठिन

है। और जमाना बहुत खराब है, मेहमान फिर जाते ही नहीं हैं, आ जाएं तो। तो ये मेहमान तो बहुत दिन के बुलाए हुए हैं। ये भीतर रहने के आदी हो गए हैं। ये तो भूल ही गए हैं कि हम मेहमान हैं, ये तो कहते हैं, हमीं हैं। तो ये एकदम से आज ही विदा हो जाएंगे, इस खयाल में कोई भी न हो। लेकिन हां, इनको नमस्कार करना शुरू करें कि अब आप जाइए। अब क्षमा करिए, बहुत हुआ।

तो इसके थोड़े से प्रयोग धीरे-धीरे करेंगे। तीन-चार महीने के प्रयोग में झलकें स्पष्ट होनी शुरू होंगी। और तीन-चार महीने कोई वक्त नहीं है--कोई वक्त नहीं है। कोई नहीं करेंगे, तो भी वे दिन बीत जाएंगे। कोई फर्क नहीं पड़ता है। दिन बीत ही जाते हैं, आप कुछ करें या न करें। आखिर में बड़े आश्चर्य की बात है कि ध्यान में बिताया हुआ समय आखिर में बचा हुआ सिद्ध होता है। बाकी सब समय खोया हुआ सिद्ध होता है। आखिर में, जब आखिरी चुकता फैसला होगा और हिसाब करेंगे आप अपनी जिंदगी का, तो यह मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूं कि ध्यान में बिताए हुए क्षण ही आखिर में बचे हुए क्षण मालूम होंगे, साथी सिद्ध होंगे। बाकी सब समय खोया हुआ सिद्ध होगा। लेकिन वह तो आखिरी फैसले की बात है, उसकी चिंता भी क्या? उसको आखिरी वक्त ही हिसाब लगाना है। लेकिन हिसाब का अगर अभी से कोई बोध न हुआ तो हिसाब में फिर असफल होंगे, हारेंगे। खोया हुआ मालूम होगा।

दस मिनट के लिए मैं कहूंगा, सब शांत हो गया। उस शांति में; सन्नाटे में कुछ सुनाई पड़ेगा। जितना हम शांत हो जाएंगे, उतना ज्यादा सुनाई पड़ेगा। कोई कुत्ता भौंक दे, कोई पक्षी बोले, कोई रोए, सब सुनाई पड़ेगा। शांति से सुनते रहेंगे। यह खयाल रखेंगे कि मैं शांत पड़ा हूं। आवाज आएगी, गूंजेगी और चली जाएगी। आवाज क्या करेगी? एक पक्षी फड़फड़ाएगा तो आवाज आएगी, आपके भीतर फड़फड़ाएगी, गूंज होगी। जैसे खाली मकान हो और एक पक्षी फड़फड़ाए तो आवाज होगी, फिर गूंजती रहेगी, फिर विदा हो जाएगी। मकान खाली का खाली अपनी जगह बना रहेगा। आप उससे परेशान न हों कि यह क्या हुआ? आप तो शांत होने दें, जो हो रहा है। शांति से सुनते रहें--इतना दस मिनट के लिए। भीतर वहां जागे रहें, सो नहीं जाना है। सोने की संभावना बहुत रहती है, क्योंकि इतना आराम हमें कभी मिलता ही नहीं। शरीर शिथिल हो जाता है, श्वास शांत हो जाती है, फौरन नींद आ जाती है। लेकिन यह नींद भी आपकी आम नींद से बेहतर होगी। इसलिए कुछ नुकसान में नहीं रहेंगे, सो भी गए तो। हालांकि जागे होते तो और भी फायदा होता। तो अगर इस भांति सोने भी लगें तो कोई हर्जा नहीं है। क्योंकि यह नींद आम नींद से बहुत गहरी और अर्थपूर्ण होगी। इसमें स्वप्न संभव नहीं होंगे। यह बहुत गहरे प्राणों तक छेद देगी। यह बहुत पीक होगी। और जितनी गहरी होगी, उतनी स्वास्थ्यपूर्ण होगी, उतनी शांतिदायी होगी।

लेकिन नींद नहीं सिखा रहा हूं। यह तो नींद होगी तो यह फल होगा। लेकिन अगर भीतर जागे भी रहे तो नींद के जो फल होने हैं, वह तो शरीर को मिल जाएंगे, लेकिन शरीर शांत पड़ा रहेगा। और भीतर जागरण के जो फायदे हो रहे हैं, वह आत्मा को मिल जाएंगे। इतना ध्यान रखें, नींद से फायदा हमेशा शरीर को होता है, और जागरण से फायदा हमेशा आत्मा को होता है। नींद शरीर की जरूरत है, जागरण आत्मा की जरूरत है। नींद के बिना शरीर जिंदा नहीं रह सकता है। जागरण के बिना आत्मा भी मुर्दा-मुर्दा सी हो जाती है। यह दो बातें खयाल रखें--नींद हमेशा शरीर की जरूरत है, शरीर की जरूरत है, शरीर को मिलनी चाहिए। जागरण आत्मा की जरूरत है, तो शरीर को नींद दे दें, और भीतर जागे रहें। दो काम होंगे। शरीर सो जाए और आप जागे रहें। धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगे यह बात कि शरीर सोया हुआ है और मैं जागा हुआ हूं। तब तो यह हो सकता

है कि रात भर आप सोए भी रहें और जागे भी रहें। कृष्ण ने कहा है कि जब सब सो जाते हैं तब भी कोई हैं, जो जागते रहते हैं। उनको ही योगी कहा है।

बुद्ध के पास एक शिष्य था आनंद, रोज-रोज देखता था, रोज-रोज उनकी सब बातें देखता था कि कैसे जगते हैं, कैसे उठते हैं, कैसे सोते हैं। उसे बड़ी हैरानी हुई। एक बार देख कर बड़ा हैरान हुआ। वे जिस पैर पर जो पैर रखते हैं उस पर रात भर वहीं रखे रहते हैं। उसने कहा, यह बड़ी गड़बड़ है, हैरानी की बात है। न हिलते हैं, न डुलते हैं। पैर वहीं रखा रहता है। करवटें नहीं लेते। तो उसने उनसे पूछा कि मैं पूछना चाहता हूं, यह क्या मामला है? न करवट लेते हैं, न आप पैर हिलाते हैं। जिस पैर को जहां रख लेते हैं, जिस हाथ को जहां रख लेते हैं, वे वहीं रखे रहते हैं, पड़े रहते हैं रात भर? क्या अपने को सम्हाले रहते हैं? बुद्ध ने कहा, नहीं, सम्हालने की जरूरत नहीं है। बाहर से तो सो जाता हूं, भीतर जागा रहता हूं। तो अगर करवट लेनी हो तो मैं होशपूर्वक ही ले सकता हूं। अगर पैर हिलाना हो तो होशपूर्वक हिला सकता हूं। न हिलाना हो तो कोई जरूरत नहीं है। जरूरत क्या है पैर हिलाने की? लेकिन हम तो जागते में पैर हिलाते रहते हैं और हमें पता नहीं रहता कि क्यों हिला रहे हैं? तो सोने की तो बात ही छोड़ दें। लोग कुर्सियों पर बैठे हैं, पैर हिला रहे हैं। उनसे पूछें क्यों हिला रहे हैं? फौरन रोक लेंगे और कहेंगे कि इससे क्या मतलब आपको? उनको खुद भी पता नहीं कि वह क्यों हिला रहे हैं? माइंड भीतर हिल रहा है, तो टांगें भी हिल रही हैं। वे बेचैनी के लक्षण हैं और कुछ नहीं है। भीतर अशांति है, वह कहीं न कहीं प्रकट होती रहती है।

भीतर चित्त शांत और जागा हुआ हो तो हिलन-डुलन अपने आप थोड़ा कम होगा। बाहर से सो जाना है और भीतर जागे रहना है। फिर भी कुछ लोग सो जाएंगे, तो वे खुद थोड़ा विचार करेंगे कि क्या हम सो गए? और अगर वे सो गए हों तो उन्हें जानना चहिए कि उनकी नींद पूरी न होती होगी। इसलिए जब भी मौका मिलता है, शरीर नींद लेना चाहता है। वह अपनी थोड़ी नींद बढ़ा देंगे। और जब नींद पूरी हो जाएगी, तो फिर शरीर नींद नहीं मांगता है। तो फिर सहज शरीर सो जाएगा और अंदर जागरण हो सकता है। अब हम प्रयोग करेंगे।

तो आप जगह चुन लें अपनी-अपनी, दूर हट जाएं, ताकि एक-दूसरे से कोई स्पर्श न हो।

पांचवां प्रवचन

अज्ञान का बोध, रहस्य का बोध

ज्ञान का बोध, इस संबंध में थोड़ी सी बात मैं आपसे कहना चाहता हूं।

जैसा मुझे दिखाई पड़ता है, अज्ञान के बोध के बिना कोई व्यक्ति सत्य के अनुभव में प्रवेश न कभी किया है और न कर सकता है। इसके पहले कि अज्ञान छोड़ा जा सके, ज्ञान को छोड़ देना आवश्यक है। इसके पहले कि भीतर से अज्ञान का अंधकार मिटे, यह जो ज्ञान का झूठा प्रकाश है, इसे बुझा देना जरूरी है। क्योंकि इस झूठे प्रकाश की वजह से, जो वास्तविक प्रकाश है, उसे पाने की न तो आकांक्षा पैदा होती है, न उसकी तरफ दृष्टि जाती है। एक छोटी सी घटना इस संबंध में कहूंगा और फिर आज की चर्चा शुरू करूंगा।

एक पूर्णिमा की रात्रि में, एक बहुत विलक्षण कवि एक नौका पर बजरे में यात्रा कर रहा था। छोटा सा झोपड़ा था बजरे का, नौका थी, पूर्णिमा की रात थी। वह भीतर बैठ कर, मोमबत्ती को जला कर, उसके प्रकाश में किसी ग्रंथ को पढ़ता रहा। फिर जब आधी रात हो गई और वह थक गया तो उसने मोमबत्ती को बुझाया, सोने की तैयारी की।

लेकिन मोमबत्ती को बुझाते ही उसे एक अदभुत अनुभव हुआ जिसकी उसे कल्पना भी न थी। जैसे ही मोमबत्ती बुझी कि बजरे के रंध्र-रंध्र से, खिड़की से, द्वार से चांद की रोशनी भीतर आ गई। उसने बजरे को आकर भर दिया। वह हैरान हो गया! वह मोमबत्ती का छोटा सा टिमटिमाता प्रकाश चांद के प्रकाश को बाहर रोके हुए था! उसके बुझते ही चांद भीतर प्रवेश कर गया! उसे खयाल भी भूल गया था--उस टिमटिमाती मोमबत्ती के प्रकाश में उसे खयाल भी भूल गया था--कि बाहर चांद भी है। तब वह उठ कर खिड़की पर गया और उसने कहा, मैं कैसा अभागा हूं! आधी रात मैंने व्यर्थ ही खो दी। चांद की अनुपम ज्योत्स्ना मिल सकती थी, वह चांद का शीतल प्रकाश मिल सकता था, तब मैं धुआं देती एक छोटी सी मोमबत्ती की टिमटिमाती पीली रोशनी में बैठा रहा। आधी रात का उसे दुख हुआ।

लेकिन बहुत कम लोग हैं जो पूरे जीवन में से आधा जीवन भी सच्चे प्रकाश को पाने के लिए जिनके जीवन में संभावना बन पाती हो। अधिक लोग तो जीवन गंवा देते हैं टिमटिमाती रोशनियों में। मोमबत्ती जलाए रखते हैं और इसलिए सत्य का प्रकाश उपलब्ध नहीं हो पाता।

यह हमारा जो ज्ञान है झूठा और उधार, यह मोमबत्ती की तरह धुआं देता हुआ प्रकाश है। इसे बुझा देना जरूरी है, तो ही सत्य के, प्रकाश के आगमन की संभावना प्रारंभ होती है।

कल मैंने इस संबंध में आपसे बात की। यह जो ज्ञान है झूठा, यह जाए तो ही सच्चे ज्ञान के आने का द्वार खुलता है। अज्ञान का बोध इसलिए अत्यंत अनिवार्य और अपरिहार्य आवश्यकता है। उसके बिना कोई गति नहीं है। अज्ञान के बोध से क्या होगा? अज्ञान के बोध से जो होगा और जो होना चाहिए और जिस भांति उसके होने में सहायता दी जा सकती है, उन सूत्रों पर आज मैं बात करूंगा।

अज्ञान के बोध से पहली तो बात यह होगी कि जीवन एकदम रहस्य से भर जाएगा, एक बहुत मिस्ट्री घेर लेगी। जीवन रहस्य से भरा हुआ है। लेकिन थोथे ज्ञान की वजह से उस रहस्य पर दृष्टि नहीं जाती। जैसे मैंने कहा, चांद का प्रकाश भीतर आ जाएगा। जैसे ही आपका मिथ्या ज्ञान हटा, आपने उस दीये को बुझाया जो कि

झूठा है और पराया है, जीवन में एक अदभुत मिस्ट्री उपलब्ध हो जाएगी। चारों तरफ एक रहस्य का अनुभव होने लगेगा।

रहस्य का अनुभव मनुष्य का समाप्त होता जा रहा है। धर्मग्रंथों ने उसे समाप्त किया है, विज्ञान ने उसे समाप्त किया है, साहित्य ने उसे समाप्त किया है, सभ्यता ने उसे समाप्त किया है। मनुष्य को जो एक रहस्य की प्रतीति होनी चाहिए वह विलीन हो गई है। उसे कोई रहस्य का अनुभव नहीं होता। क्योंकि उसने हर चीज के लिए व्याख्या कर ली है, हर चीज के सिद्धांत बना लिए हैं और मामला समाप्त हो गया है।

आपको दिखाई पड़ते हैं दरख्त? आपको दिखाई पड़ते हैं चांद-सूरज? आपको जब एक बीज फूट कर अंकुर बनता है तो कोई रहस्य का अनुभव नहीं होता? कि होता है? नहीं होता होगा। यह चारों तरफ पूरा जीवन बहुत मिस्टीरियस है, बहुत रहस्यपूर्ण है। लेकिन हमारा थोथा ज्ञान इसकी व्याख्या कर देता है। थोथा ज्ञान बीच में आ जाता है और रहस्य से हमारा कोई संपर्क नहीं हो पाता। नहीं तो जीवन तो प्रतिक्षण रहस्य है। सब अज्ञात है, सब अननोन है। लेकिन हम सबकी व्याख्याएं करके इस भांति बैठ गए हैं जैसे सब ज्ञात हो गया हो, सब नोन हो गया हो। यह जो नोन हो जाने का भ्रम है कि सब ज्ञात हो गया है, इससे रहस्य समाप्त हो गया है। और जिस चित्त में रहस्य नहीं है, उस चित्त में धर्म कैसे होगा? जिस चित्त में रहस्य की लहरें नहीं उठतीं, आश्चर्य की, चकित होने की, अवाक रह जाने की, वह चित्त धार्मिक कैसे होगा?

कोई चीज आपको रहस्य से भरती है? आकाश में घूमते हुए बादल?

नहीं लेकिन, विज्ञान ने उनकी व्याख्या कर दी है। और धर्म ने पहले ही व्याख्या कर दी थी कि इंद्र बादल भेजता है पानी गिराने के लिए। तो बादलों में जो मिस्टीरियस था वह विलीन हो गया, क्योंकि बात साफ हो गई कि इंद्र भेजता है पानी गिराने को। एक व्याख्या, एक एक्सप्लेनेशन मिल गया और मिस्ट्री समाप्त हो गई। तो फिर बादल आकाश में घिर रहे हैं, लेकिन हमारे लिए अर्थहीन हो गए, हमें पता चल गया कि बात क्या है। ज्ञात हो गया तो रहस्य समाप्त हो गया। जहां चीजें अज्ञात होती हैं, अननोन होती हैं, वहां रहस्य होता है। जहां चीजें ज्ञात हो जाती हैं, रहस्य समाप्त हो जाता है। जिसे हम जान लेते हैं उसमें रहस्य समाप्त हो जाता है। जिसे हम नहीं जान पाते हैं उसमें रहस्य कायम रहता है। सब रहस्य समाप्त हो गया, क्योंकि इंद्र ने बादल भेज दिए, तो रहस्य समाप्त हो गया।

फिर उस पागलपन से बचे, हमको पता चला कि कोई इंद्र नहीं है, कोई बादल भेजने वाला नहीं है। तो विज्ञान ने नये एक्सप्लेनेशंस दे दिए, उसने नई व्याख्याएं दे दीं कि सूरज की गरमी से पानी भाप बनता है, फिर बादल बनते हैं और वे पानी गिराते हैं। इंद्र बदल गए, व्याख्या दूसरी आ गई। लेकिन क्या हमारी कोई भी व्याख्या अल्टीमेट है? क्या हमारी कोई भी व्याख्या इस रहस्य को खोलती है कि जगत क्यों है?

नहीं, विज्ञान यह बता देता है कि कैसे होता है बादल का बनना। लेकिन बादल के होने की जरूरत क्या है? बादल अगर न होता तो कोई हर्जा था! क्यों है? विज्ञान बता देता है कि बीज कैसे अंकुर बनता है। लेकिन क्यों बनता है? क्या कारण है? क्या जरूरत है? हम हैं तो क्यों हैं? यह हमारे भीतर प्रेम पैदा होता है तो क्यों पैदा होता है? यह हमारे भीतर एक जीवन-शक्ति है, यह क्यों है? ये चारों तरफ पक्षी गीत गा रहे हैं, ये पौधे बड़े हो रहे हैं, आकाश में बादल घूम रहे हैं, ये क्यों?

विज्ञान ने कुछ व्याख्याएं दे दीं, कुछ धर्म ने दे दीं और यह "क्यों" हमारी दृष्टि से ओझल हो गया और हमें लगने लगा कि हम जीवन को जान रहे हैं। यह जानने का भ्रम खतरनाक है। इसकी वजह से रहस्य समाप्त हो

गया। जब कि सच्चाई यह है कि जीवन के "क्यों" के संबंध में न कुछ ज्ञात है, न कुछ ज्ञात अभी हुआ है, न हो सकता है। जो अल्टीमेट "क्यों" है, जो आखिरी और अंतिम "क्यों" है, वह बिल्कुल अज्ञात है।

उस अज्ञात का जब तक संस्पर्श न होगा प्राणों में तब तक प्राणों में धर्म का उदय नहीं हो सकता। क्योंकि उस अज्ञात के संस्पर्श से ही अनंत परमात्मा का मार्ग स्पष्ट होता है और खुलता है।

लेकिन हमारे मस्तिष्क तो ज्ञात से बंध गए हैं। सब चीजें हमें मालूम हो गई हैं। जब कि सच्चाई यह है कि हमें मालूम कुछ भी नहीं है। लेकिन पहले धर्म ने यह काम किया था, अब विज्ञान यह काम कर रहा है। और मनुष्य के जीवन से इन दोनों ने मिल कर मिस्ट्री को हटा कर अलग कर दिया। अब हमारे जीवन में मिस्टीरियस जैसा कुछ भी नहीं है।

मैं एक जगह गया, एक प्रोफेसर मेरे साथ थे। हम गए एक जलप्रपात को देखने, बहुत ऊंचे पहाड़ से पानी गिरता था। लेकिन वे प्रोफेसर मुझसे बोले, वहां क्या रखा है? आखिर पानी ही तो पहाड़ से नीचे गिरता है! उन्होंने बात तो बिल्कुल ठीक कही--वहां क्या रखा है? आखिर पानी ही तो पहाड़ से नीचे गिरता है! इसमें बात क्या है देखने की?

पहाड़ से पानी नीचे गिरता है, इस वाक्य में सब समाप्त हो गया। लेकिन पहाड़ से पानी नीचे गिरता है, जिन्होंने आंख खोल कर उसे देखा होगा, उनके प्राणों में कुछ तरंगित हो गया। वह इस व्याख्या में नहीं आता, वह शब्दों में नहीं बंधता है, उसके लिए कोई व्याख्या नहीं हो सकती। लेकिन जिसने पहाड़ से पानी को गिरते देखा है, उसके प्राणों में भी कोई झरना जाग सकता है। वह इस व्याख्या में कहीं भी नहीं आता है।

अगर हम एक फूल को ले लें और एक वनस्पतिशास्त्री से पूछें कि फूल क्या है? तो वह कहेगा, ये-ये तत्व मिले हुए हैं, ये-ये रासायनिक केमिकल्स मिले हुए हैं, उनसे बना हुआ है। बात खत्म हो गई। लेकिन फूल किसी के प्राणों में जो गीत पैदा कर देता है, वह इस व्याख्या में नहीं आया, वह छूट गया हाथ से। केमिस्ट्री की लेबोरेटरी में जाकर फूल की सब व्याख्या हो जाएगी, सब तत्व निकाल कर रख देंगे, बता देंगे कि यह-यह है, यह-यह है। बात खत्म हो गई। काव्य नष्ट हो गया, रहस्य विलीन हो गया। व्याख्या तो हो गई, लेकिन फूल के प्राण समाप्त हो गए।

फूल केमिकल्स में ही नहीं है, फूल केमिकल्स के जोड़ से कुछ ज्यादा है। वह वही उसे जान पाता है जिसके प्राण रहस्य से आंदोलित होते हैं, जो अज्ञात के लिए अपने द्वार खोलता है और व्याख्याओं को हटा देता है और फूल से सीधा संबंधित हो जाता है। उसके प्राणों में भी कोई फूल खिल जाते हैं, जिसको कोई विज्ञान कभी नहीं खोज पाएगा कि फूल से उन फूलों के खिल जाने का क्या संबंध है?

लेकिन जीवन में हमने हर चीज की व्याख्या कर ली है। आदमी की भी व्याख्या कर ली है, उसकी भी एनालिसिस कर डाली है, उसके शरीर को भी काट-छांट कर सब पता लगा लिया है। उसके मस्तिष्क की भी खोज कर ली है। हमने सब एनालिसिस कर ली है। और एनालिसिस में सब मर गया है। क्योंकि जो भी सुंदर है वह हमेशा सिंथेटिक है, उसकी कोई एनालिसिस संभव नहीं, उसका कोई विश्लेषण संभव नहीं। और जब भी हम किसी चीज का विश्लेषण करेंगे तो चीजें मर जाएंगी।

फ्रायड ने प्रेम का विश्लेषण किया, सेक्स हाथ में आ गया, प्रेम विलीन हो गया। फ्रायड ने बहुत मेहनत करके आखिर पता लगाया कि प्रेम-व्रेम कुछ नहीं है, यह तो सब सेक्स है।

और यह सच है। अगर विश्लेषण करेंगे तो यही पता लगेगा। अगर आप भी अपने प्रेम का विश्लेषण करेंगे तो मुश्किल में पड़ जाएंगे, फिर उसमें कुछ नहीं मिलेगा खोजने से, आखिर में सेक्स मिलेगा।

विश्लेषण पार्थिव पर ले आता है। जितना चीजों को तोड़िएगा उतनी नीची होती चली जाएंगी। आखिर में जो अत्यंत मैटीरियल है वही हाथ में आ जाएगा और जो भी स्प्रिचुअल था वह विलीन हो जाएगा। जो भी आध्यात्मिक है, जो भी आत्मिक है, वह सिंथेटिक है, वह जुड़ा हुआ है, वह इकट्ठा है, वह टोटेलिटी में है। वह टुकड़ों में नहीं है, वह समग्र में है। अखंड है, खंड में नहीं है। लेकिन विज्ञान और धर्मशास्त्र और तत्व-चिंतन सब खंड-खंड कर देता है। और तब चीज सब नष्ट हो जाती है।

एक सुंदर चित्र पिकासो ने बनाया। एक पेंटर है, उसने एक बहुत सुंदर चित्र बनाया। एक अमरीकी करोड़पति उसे खरीदने गया। उससे पूछा, कितने दाम होंगे? उसने कहा, पांच हजार डालर। वह बहुत हैरान हुआ! उसने कहा, इसमें है भी क्या? एक कैनवस का टुकड़ा है, कुछ रंग हैं, इसमें है क्या ऐसी बात? आखिर पांच हजार डालर की इसमें कौन सी बात हो गई? एक कैनवस का टुकड़ा है, कितने दाम होते हैं उसके? और कुछ पेंट हैं, तो उनके कितने दाम होते हैं?

पिकासो ने अपने सहयोगी को कहा कि एक कैनवस का टुकड़ा इससे भी बड़ा ले आओ और रंगों की पूरी की पूरी ट्यूब ले आओ और इनको दे दो, और जितने दाम इनको देना हो दे जाएं।

वह करोड़पति बोला, लेकिन मैं उस कैनवस के टुकड़े और रंगों को लेकर क्या करूंगा?

तो पिकासो ने कहा, फिर स्मरण रखो, यह जो चित्र है यह रंग और कैनवस ही नहीं है, यह उससे ज्यादा है। उसके हम दाम ले रहे हैं।

अगर इसको वैज्ञानिक के पास ले जाएं तो वह तोड़ कर, निकाल कर रख देगा कि कैनवस यह रहा, लाल रंग यह रहा, हरा रंग यह रहा, पीला रंग यह रहा। बात खत्म हो गई। चित्र कहां है?

चित्र तो टोटेलिटी में है; टुकड़ों में नहीं, समग्रता में है। टुकड़े कर दें, चित्र विलीन हो गया, खत्म हो गया, वहां कुछ भी नहीं बचा।

जिंदगी को जब हम तोड़ कर देखने की कोशिश करते हैं तो व्याख्याएं, इंटरप्रिटेशंस हाथ में रह जाते हैं और जीवन से हाथ छूट जाता है। रहस्य विलीन हो जाता है, सिद्धांत हाथ में रह जाते हैं। सिद्धांत मुर्दा होते हैं, रहस्य जीवित होता है। जीवन में जो भी आपने रहस्यपूर्ण जाना हो, उसको आप जब भी खंड-खंड करेंगे, तभी आप पाएंगे कि वह गया। आप सबको पता है सौंदर्य का। लेकिन कोई पूछे कि सौंदर्य क्या है? बस फिर मुश्किल हो जाएगी। फिर आप जो भी बताएंगे वह सब गड़बड़ हो जाएगा। आप सबने शायद प्रेम को जाना हो। लेकिन कोई पूछे कि प्रेम क्या है? सब गड़बड़ हो जाएगा। फिर जो बताएंगे वह सब व्यर्थ होगा। आपको खुद ही लगेगा कि यह मैं क्या बता रहा हूं!

बंगाल में एक सूफी फकीर हुआ। उसके पास एक बार एक बहुत बड़ा पंडित मिलने गया। वह फकीर तो प्रेम ही प्रेम की धुन लगाए रखता था। जो भी कोई आता और पूछता तो वह कहता--प्रेम। चौबीस घंटे प्रेम के ही गीत गाता और कहता कि प्रेम ही सब कुछ है, और प्रेम ही परमात्मा है, और जो प्रेम को जान लेता है वह सब जान लेता है। वह पंडित भी गया। उस पंडित ने जाकर पूछा कि महानुभाव, पहले यह तो बताइए, प्रेम कितने प्रकार का होता है? प्रेम ही प्रेम लगाए हुए हैं! कौन से प्रकार का प्रेम है?

वह सूफी बोला, तुमने तो मुझे मुश्किल में डाल दिया। मुझे प्रकार का तो कोई भी पता नहीं, सिर्फ प्रेम का पता है। और मुझे पता ही नहीं चला कि कोई प्रकार भी होते हैं प्रेम में। प्रेम का मुझे पता है, लेकिन प्रकार का मुझे कोई पता नहीं।

तो वह पंडित हंसा। और पंडित हमेशा ही उन पर हंसते रहे हैं जो जानते हैं। उस पंडित ने अपना ग्रंथ खोला और कहा कि तुमको नहीं मालूम तो मेरे ग्रंथ में पांच प्रकार बताए हुए हैं। ये सुन लो! और अब दुबारा जब किसी से प्रेम की बात करो तो पहले समझ तो लो कि प्रेम कितने प्रकार का होता है। उसने अपने पांच प्रकार बताए, उनकी व्याख्या बताई। वह बहुत खुश था कि आज इस फकीर को ठीक पकड़ा, आज मुश्किल में डाल दिया। बताने के बाद उसने उस फकीर को पूछा कि कैसा लगा? जंचा? ये प्रकार ठीक हैं कि गलत हैं? नहीं तो मैं विवाद करने को तैयार हूं।

फकीर ने एक गीत गाया, क्योंकि इसके सिवाय कोई उत्तर नहीं हो सकता था। पंडित तर्क देता है, फकीर जो जानता है वह गीत गाता है। उसने एक गीत गाया। और गीत का अर्थ बहुत अदभुत था। गीत का अर्थ था कि तुम जब प्रेम के प्रकार बताने लगे तो मुझे उस सुनार की याद आ गई जो एक बार भूल से फूलों की बगिया में पहुंच गया था। अपने साथ वह, सोने को जिस पत्थर पर कसता था, उसको भी ले गया था। और फूलों को उस पर कस-कस कर देखने लगा कि फूल सच्चे हैं या झूठे? मुझे उस सुनार की याद आ गई जब मैंने तुम्हारी किताब सुनी। उसने कहा, हे परमात्मा, यह क्या अदभुत है! प्रेम को तो मैंने जाना, प्रकार का मुझे आज तक पता नहीं चला कि प्रकार भी होते हैं! और उसने कहा, मैं तुमसे निवेदन करता हूं, तुमने प्रकार जाने हैं, लेकिन प्रेम नहीं जाना होगा। जो प्रकार जानता है वह प्रेम नहीं जान सकता। क्योंकि प्रकार है विश्लेषण, एनालिसिस; और प्रेम है सिंथीसिस, प्रेम है समन्वय, इकट्ठा, समग्रता, टोटेलिटी।

तोड़ कर चीजें नष्ट हो गई हैं। और हमने सब तोड़ डाला है। सब तोड़ डाला है। इसलिए आत्मा विज्ञान को कभी ज्ञात नहीं हो सकती, अणु ज्ञात हो सकता है। अणु ज्ञात हो सकता है, एटम ज्ञात हो सकता है, आत्मा विज्ञान को कभी ज्ञात नहीं हो सकती। क्योंकि विज्ञान तोड़ता है, तोड़ते में आखिर में अणु पर पहुंच जाता है, परमाणु पर पहुंच जाता है। और जो जीवन का सत्य है वह जोड़ पर है। जोड़ते जाओ, जोड़ते जाओ, आखिर में जब जोड़ने को कुछ न बचे तो जो है वह परमात्मा है। तोड़ते जाओ, तोड़ते जाओ, जब आखिर में कुछ न बचे तो जो है वह परमाणु है। तोड़ने से नीचे टूटते-टूटते परमाणु हाथ में रह जाएगा, जोड़ने से जोड़ते-जोड़ते अंत में परमात्मा उपलब्ध हो जाता है।

जीवन को जो जोड़ने की दृष्टि से देखता है उसे तो बहुत रहस्य मालूम होंगे और जो तोड़ने की दृष्टि से देखता है उसे कोई भी रहस्य मालूम नहीं हो सकता है। और जिसे रहस्य मालूम न हो उसके लिए परमात्मा तक जाने का कोई मार्ग नहीं।

इसलिए मैंने कल कहा कि अज्ञान का बोध जरूरी है। क्योंकि अगर आपका ज्ञान से छुटकारा हो जाए तो आप व्याख्याओं से, तोड़ने से, एनालिसिस से मुक्त हो जाएंगे। और तब कुछ हो सकता है, तब शायद छोटी-छोटी चीज आपको अत्यधिक रहस्य से भरी हुई मालूम पड़े।

लेकिन हमारी आंखें अंधी हो गई हैं व्याख्याओं में, हमारी आंखें बिल्कुल अंधी हो गई हैं। हमारी आंखें व्याख्याओं से अंधी हो गई हैं। हमें कुछ दिखाई नहीं पड़ता। जो हमें सिखा दिया जाता है, हम उसको दोहराते रहते हैं। फिर हम देख भी नहीं पाते, सोच भी नहीं पाते, क्योंकि व्याख्याएं बीच में आ जाती हैं। फिर कोई रास्ता देखने का नहीं रह जाता। चीजों से सीधे संपर्क का जो इमीजिएट कांटेक्ट है वह विलीन हो जाता है।

सीधा कोई हमारा हृदय उनसे जुड़ नहीं पाता। हम दूर खड़े रह जाते हैं, चीजें दूर खड़ी रह जाती हैं, बीच में व्याख्याएं और शास्त्र खड़े हो जाते हैं और ज्ञान खड़ा हो जाता है।

जिस व्यक्ति ने फूलों के संबंध में सब जान लिया हो--सारा वनस्पतिशास्त्र, वह फूलों को देखने से वंचित हो जाएगा। उसे तो रंग दिखाई पड़ेंगे, केमिकल्स दिखाई पड़ेंगे, फूल नहीं दिखाई पड़ेगा। फूल से जो काव्य और जो पोएट्री पैदा होती है हृदय में, वह जो तरंग हो जाती है पैदा, वह उसके भीतर नहीं होगी। और जिसके भीतर होगी वह उसे पागल मालूम पड़ेगा कि तुम पागल हो।

अभी वैज्ञानिक चांद के संबंध में सब समझे ले रहे हैं। चांद के संबंध में जो भी काव्य है, नष्ट हो जाएगा। चांद पर आदमी उतर जाएगा, चांद की छाती पर खड़ा हो जाएगा, लेकिन चांद को जान नहीं पाएगा। चांद को तो उन्होंने जाना है जिनके हृदय उसको देख कर आनंद से भर गए हैं और जिनके हृदय में संगीत पैदा हुआ और गीत पैदा हुए हों और जिन्होंने चांद को धन्यवाद दिए हैं, उन्होंने चांद को जाना है। हालांकि वे चांद से बहुत दूर थे। और वैज्ञानिक चांद की छाती पर खड़ा हो जाएगा, फिर भी चांद को नहीं जान पाएगा। वह जो चांद की मिस्ट्री है वह नष्ट हो जाएगी।

विज्ञान और धर्मशास्त्र और फिलासफी, सब जीवन से मिस्ट्री को खत्म करने में लगे हुए हैं। इसीलिए तो आदमी नीचे गिरता जा रहा है। वह सब चारों तरफ एक ही काम चल रहा है कि जिंदगी को जान लो पूरा, उसमें अनजाना, अननोन कुछ भी न रह जाए।

आपको पता नहीं है, अगर किसी दिन वे सफल हो गए और जिंदगी में सब जान लिया गया और कुछ भी अनजाना न रहा, उसी दिन सारी दुनिया को आत्मघात कर लेना होगा। क्योंकि जीने का फिर कोई कारण नहीं रह जाएगा। अगर सब जान लिया गया तो उससे ज्यादा बोर्डम पैदा करने वाली और कोई बात नहीं होगी। जीते हैं हम अननोन के कारण, नोन के कारण नहीं। और जैसे-जैसे हम किसी चीज से परिचित होते जाते हैं, आदी होते चले जाते हैं, वैसे ही उसमें अर्थ खोता चला जाता है।

कोई युवक किसी युवती को प्रेम करने लगे। जब वह प्रेम करता है तो युवती अननोन होती है, अज्ञात होती है। उस युवती के हृदय में भी वह युवक अज्ञात होता है। लेकिन कल वे जल्दी से शादी कर लेते हैं, इकट्ठे रहने लगते हैं, पति-पत्नी हो जाते हैं, ज्ञात हो जाते हैं, प्रेम विलीन हो जाता है। तब वे बड़े हैरान होते हैं कि यह क्या हुआ? पहले क्षणों में जो प्रेम का अनुभव हृदय को आंदोलित किया था वह कहां गया? अब वे आदी हो गए, अब वे एक-दूसरे को सोचने लगे कि हम जानते हैं, इसलिए प्रेम विलीन हो गया। प्रेम तो वहां हो सकता था जहां अननोन मौजूद था, अज्ञात मौजूद था। तो वहां हृदय खिंचता था, खोज करता था, चैलेंज था, चुनौती थी। अब सब ज्ञात हो गया, पत्नी परिचित है और ज्ञात है, बात खत्म हो गई।

अभी कल सांझ को बहुत बढ़िया बात हुई। मेरे पास एक बहिन है वह गई, उसके गले में दर्द था, वह डाक्टर के पास गई। लौट कर उससे छोटी बहिन ने मुझे कहा कि डाक्टर और डाक्टर की पत्नी दोनों वहीं थे। लेकिन बड़ी बहिन ने कहा कि नहीं, वह पत्नी नहीं हो सकती, क्योंकि डाक्टर उससे बहुत प्रेम से बोल रहा था। वह जरूर नर्स होगी, कोई और होगी। इतने प्रेम से पत्नी से कोई पति कभी बोलते ही नहीं, न कोई पत्नी किसी पति से बोलती है।

वे परिचित हो गए, वह सब ज्ञात हो गया। अब बोझ है सब, ढोना है। अज्ञात तो विलीन हो गया है भीतर। अब कोई वहां अज्ञात आत्मा नहीं, जिसे जानना हो, जिसे प्रेम करना हो, परिचित होना हो। सब ज्ञात हो गया। इसीलिए तो दांपत्य एक बोर्डम है, एक ऊब है, एक घबड़ाहट है, एक परेशानी है।

लेकिन अगर जीवन में रहस्य हो, अगर चीजों के अज्ञात तत्व के प्रति हमारे जीवन में संवेदनशीलता हो, सेंसिटिविटी हो, तो आप हजार वर्ष एक पत्नी के साथ रहें, उसे जान थोड़े ही सकते हैं। उसमें बहुत अज्ञात मौजूद रहेगा, बहुत अज्ञात मौजूद रहेगा। जन्म-जन्म एक पत्थर को भी पूरा नहीं जाना जा सकता, एक फूल को पूरा नहीं जाना जा सकता। एक मनुष्य को, एक स्त्री को, एक पुरुष को कैसे पूरा जाना जा सकता है? बिल्कुल नहीं जाना जा सकता। बहुत अज्ञात है उसके भीतर।

वह जो अज्ञात है वही तो परमात्मा है। अगर उसकी तरफ आंख खुली रहे और हृदय खुला रहे, तो रोज-रोज सुबह आप पाएंगे--यह पत्नी तो नई है, जिसको मैंने कल नहीं जाना। यह तो बिल्कुल नई है। इसको मैंने कब जाना? कब पहचाना? रोज सुबह आप पाएंगे--प्रेम के पहले दिन मौजूद हैं, वे गए नहीं। वे नहीं जा सकते।

सुबह रोज सूरज उगता है। हम सोचते हैं वही सूरज उग रहा है जो कल उगा था। भूल में मत पड़ना! विज्ञान कुछ भी कहे। विज्ञान झूठ कहता होगा, रोज नया सूरज उगता है। आंख चाहिए देखने वाली! रोज नये बादल बनते हैं। जो बादल आज बने हैं, इसके पहले कभी नहीं बने थे और आगे भी कभी नहीं बनेंगे। और जो सूरज आज सुबह निकलेगा--जिस पैटर्न में, जिस बैकग्राउंड में, जिस पृष्ठभूमि में--वह बिल्कुल नया है, वह कभी इसके पहले नहीं हुआ था। लेकिन आप इसी खयाल में हैं कि कल जो सुबह सूरज उगा था वही आज भी उगा है, तो देखना क्या है? आप इस खयाल में हैं कि कल जो मित्र मिलने आया था वही आज भी मिलने आया है, तो फर्क क्या है?

नहीं! जो कल था वह गया। जीवन में कुछ भी ठहरता नहीं। प्रतिक्षण सब भागा जा रहा है, बदला जा रहा है। प्रतिक्षण सब नया है। लेकिन व्याख्याएं सब पुरानी हैं, इसलिए सब मामला गड़बड़ हो गया। व्याख्याएं पुरानी हैं, जीवन नया है। व्याख्याएं सीखी हुई हैं, जीवन बहुत अनसीखा हुआ है, रोज नये-नये रास्ते तय करता है। नये रास्ते तय करता है, जिन पर वह कभी नहीं चला। यही तो खूबी है जीवन की! यही खूबी तो उसके भीतर छिपा हुआ परमात्मा है! मृत और जीवित में यही तो फर्क है। मैटर, पदार्थ और चैतन्य में यही तो भेद है। चैतन्य प्रतिक्षण नया है, सब नया है। इस नये का बोध हो तो जीवन में रहस्य होगा और उस बोध से गति मिलेगी और जीवन के सत्य को जाना जा सकेगा।

लेकिन यह बोध कहां है? हम तो सब मुर्दे की तरह हैं। इकट्ठा किए हुए हैं अपने मन में। उसी के आधार पर जीते हैं, उसी के आधार पर देखते हैं। मैंने तो अब तक कोई पुराना आदमी नहीं देखा। नाम पुराने हैं, हर आदमी नया है। आप खुद ही सोचिए, आप यहां से तीन दिन के बाद जाएंगे, क्या आप वही आदमी होंगे जो आए थे? नहीं, बहुत कुछ बह गया होगा, मन बहुत कुछ नई दृष्टि में पड़ गया होगा, नये सोच-विचार हो गए होंगे। लेकिन जब आप लौट कर पहुंचेंगे तो आपके जो मित्र, जिनको आप अपने गांव में छोड़ आए हैं, समझेंगे कि वही आदमी आया। वही आदमी नहीं आता। वही पत्ते थोड़े ही निकलते हैं हर पतझड़ के बाद, दूसरे पत्ते आ गए। लेकिन लगता है दरख्त वही है।

पिछली बार भी हम माथेरान आए थे, यही दरख्त खड़े हुए थे। अब भी यही खड़े हैं। क्या वही दरख्त खड़े हुए हैं? नहीं, सब पत्ते बदल गए। सब बदल गया, सब पक्षी बदल गए, गीत बदल गए, सब बदल गया। लेकिन हम सोचते हैं कि यह तो देखा हुआ है, वही जगह है। यह अंधी दृष्टि है, खतरनाक दृष्टि है। जीवन के प्रति नये का निरंतर बोध, जीवन के प्रति रहस्य के बोध को जो व्यक्ति उपलब्ध न हो, वह आदमी कितना ही भजन-पूजन करे, कितना ही मंदिर जाए, कितना ही शास्त्र पढ़े, सब व्यर्थ है। सब बिल्कुल व्यर्थ है, इसमें कोई भी अर्थ नहीं है।

यह कैसे होगा? यह रहस्य कैसे जगेगा? यह पर्त कैसे टूटे हमारी आंखों की जो हमारे ऊपर बैठी है? हम सब सीखे हुए बैठे हैं व्याख्याएं। गुलाब का फूल आता है, हम फौरन कह देते हैं--बहुत सुंदर है। हो सकता है सिर्फ इसलिए कह रहे हों कि लोगों ने कहा कि गुलाब का फूल सुंदर है। सुना है बचपन से, इसलिए कहने लगे। उसको सौंदर्य को आपने जाना? नहीं जाना। इसलिए एक मुल्क में एक फूल सुंदर समझा जाता है, दूसरी कौम में दूसरा फूल सुंदर समझा जाता है। एक मुल्क में एक तरह की शक्ल सुंदर समझी जाती है, दूसरे मुल्क में दूसरी तरह की शक्ल सुंदर समझी जाती है। क्यों?

सुनते हैं, सीख लेते हैं। ये भी सब सीखी हुई बातें हैं। गुलाब को देखा और बोल दिया--बहुत सुंदर है। लेकिन उसके सौंदर्य को जाना? उसके सौंदर्य को जानने के लिए तो कुछ और मार्ग खोलने पड़ेंगे हृदय के। उस फूल के पास थोड़ी देर चुपचाप बैठना पड़ेगा, बिना सोचे, बिना धर्म और विज्ञान को बीच में लाए फूल के निकट होना पड़ेगा, मैत्री करनी पड़ेगी, फूल को जगह देनी होगी। और जब फूल को आप अपने हृदय में जगह देंगे तो फूल अपने हृदय में आपको जगह देगा। तब पता चलेगा सौंदर्य का। उसके पहले कैसे पता चल सकता है? उसके पहले कुछ पता नहीं चल सकता। थोथे शब्द हैं जो हम दोहरा रहे हैं।

मैं जहां हूं वहां कुछ गुलाब के फूल लगे हैं। कोई भी आता है वह कहता है, बड़े सुंदर हैं! और जल्दी से उनको तोड़ लेता है। मैं कहता हूं, अगर सुंदर होते तो तुम तोड़ते? क्योंकि सौंदर्य को कौन दुष्ट तोड़ना चाहेगा? लेकिन तुम तोड़ते हो इससे पता चलता है कि सुंदर नहीं हैं। तुमने सुन लिया है कि सुंदर हैं। सुंदर को कोई तोड़ना चाहेगा? क्योंकि तोड़ने का अर्थ है नष्ट कर देना, तोड़ने का अर्थ है मार डालना। तुम कहते हो कि सुंदर है और जल्दी से तोड़ते हो, तो मुझे शक हो जाता है कि दो में से कौन सी बात सच्ची है? अगर फूल सुंदर है ऐसा तुमने जाना, तो तुम उसे तोड़ना चाहोगे? तुम उसे नष्ट करना चाहोगे? तुम उसके मालिक होना चाहोगे?

नहीं, तुम चाहोगे कि इसे कोई तोड़ न ले। तुम चाहोगे कि यह नष्ट न हो जाए। तुम इसे सहारा दोगे कि यह टिके, इसकी खुशबू और थोड़ी देर तक फैले। और लोग भी जो करीब से निकलें वे भी इसके सौंदर्य को, आनंद को उपलब्ध हो सकें, इसे जान सकें, इसे प्रेम कर सकें, तुम यह चाहोगे।

लेकिन नहीं, प्रेम तो कुछ भी नहीं है, सौंदर्य का बोध कुछ भी नहीं है। तोड़ा और जल्दी से खीसे में लगा लिया।

अगर कोई बच्चा सुंदर लगता है उसकी गर्दन तोड़ कर खीसे में लगाइएगा?

नहीं लेकिन, अगर बस चले तो आप यह भी कर सकते हैं। आपका बस नहीं चलता इसलिए। नहीं तो जो गुलाब के फूल को तोड़ता है वह बच्चे की गर्दन क्यों न तोड़ेगा? और करते भी हैं जहां तक बस चलता है। कोई स्त्री किसी को सुंदर लगती है, तो घर में कैद करके पत्नी बना लेता है, मालिक हो जाता है उसका। अगर मालकियत जाने लगे तो गर्दन काट देगा उसकी भी। ओनरशिप पैदा कर लेता है। जो चीज हमें सुंदर लगती है उसके हम तत्क्षण मालिक होना चाहते हैं।

और स्मरण रखें, जिसको कोई चीज सुंदर लगती हो वह मालिक नहीं होना चाहेगा, क्योंकि मालिक होने से ज्यादा कुरूपता और अग्लीनेस कुछ भी नहीं है। एक फूल का भी मालिक होना अत्यंत अग्ली एक्ट है, कुरूप कृत्य है। मालिक होना? प्रेम करना समझ में आता है, मालिक होना कैसे समझ में आता है!

लेकिन यह हमारी स्थिति है! लेकिन हम कहते हैं कि फूल बहुत सुंदर है। दोहराते हैं शब्द सुने हुए, याद किए हुए। और याद किए हुए शब्द हमेशा गड़बड़ हो जाते हैं, जीवन से उनका कोई संबंध, संपर्क नहीं रह जाता। जीवन आगे बढ़ जाता है, शब्द पीछे के रह जाते हैं। उनको हम बिठाते हैं, सब गड़बड़ होती है। जीवन में

जो कनफ्यूजन है, जीवन में जो उलझन है, जीवन में जो द्वंद्व है, जीवन में जो चिंता है, जो एंग्जाइटी है, जीवन में जो समस्याएं ही समस्याएं हैं और कोई समाधान नहीं, उसका कारण है कि हमने कुछ चीजें पहले से ही तय कर रखी हैं जीवन को बिना जाने, बिना देखे, बिना पहचाने। जीवन को बिना परिचित हुए, बिना अनुभव किए कुछ हमने तय कर रखा है, उसी को जीवन पर ठोंकते रहते हैं। जैसे कोई दर्जी हो, कपड़े पहले बना ले, फिर आदमी का नाप करे, और फिर आदमी के हाथ लंबे हों तो हाथ काट दे, पैर छोटे हों तो खींच कर बड़ा कर दे, ऐसी हमारी व्यवस्था है।

व्याख्याएं पहले हैं और जीवन पीछे है, व्याख्याओं को उसके ऊपर बिठाते हैं, इसलिए जीवन कुरूप हो जाता है, अपंग हो जाता है और हम हमेशा दूर रह जाते हैं जीवन से। उस धारा में नहीं बह पाते, जीवन के साथ एक नहीं हो पाते। जीवन के और हमारे प्राणों का संगीत जुड़ नहीं पाता, एक हार्मनी पैदा नहीं हो पाती। हम दूर खड़े रहते हैं, जीवन दूर चला जाता है। फिर हम सत्य को जानना चाहते हैं, परमात्मा को जानना चाहते हैं। यह कैसे होगा?

एक गांव में एक वृद्ध आदमी था। वह बहुत बूढ़ा हो गया था और बहरा हो गया था। मेरे देखे तो बहुत लोग बूढ़े होने के पहले ही बहरे हो जाते हैं। और बहुत लोग तो बहरे पैदा ही होते हैं। कान वाले लोग तो कम होते हैं। लेकिन वह बूढ़ा था और उसके कान धीरे-धीरे खराब हो गए थे। फिर उसके पड़ोस में एक युवा बीमार पड़ा और खबर आई कि शायद वह मर जाए, न बच सके। तो लोगों ने उस बूढ़े को कहा कि तुम जाओ, दो शब्द सहानुभूति के, संवेदना के उसे कहोगे तो उसे सुख होगा। तो उसने कहा, लेकिन मैं बहरा हूं और बीमार आदमी इतने जोर से नहीं बोल पाएगा कि मैं समझ सकूं। फिर भी तुम कहते हो तो मैं जाऊंगा।

तो वह गया। लेकिन बहरा आदमी क्या करता, उसने सोच लिया पहले से कि क्या-क्या बात करूंगा और यह भी कल्पना कर ली कि वह क्या-क्या उत्तर देगा। अनुमान कर लिया। उसके उत्तर मैं दे दूंगा। तो उसने सोचा, जाते से ही मैं पूछूंगा कि कहो कैसे हो? तो वह कहेगा, ठीक है, सब ठीक है। सभी लोग ऐसा कहते हैं। मरता हुआ आदमी भी यही कहता है कि सब ठीक है। कैसा झूठ है दुनिया में! वह भी कहता है सब ठीक है। सब बिल्कुल ठीक नहीं है, लेकिन सभी कह रहे हैं कि सब ठीक है।

उसने सोचा, वह तो कहेगा ही कि सब ठीक है। तो मैं कहूंगा कि परमात्मा की कृपा है, बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है। फिर मैं उससे पूछूंगा कि किस चिकित्सक का इलाज चल रहा है? तो वह किसी न किसी डाक्टर का तो नाम लेगा ही। तो मैं कहूंगा, वह तो बहुत ही अच्छा डाक्टर है। मेरे घर में भी उसके चरण पड़े तब से स्वास्थ्य ही स्वास्थ्य है। उसके तो पैर जहां पड़ जाएं वहीं स्वास्थ्य है। वह तो बड़ा जीवनदायी है। उससे मैं यह कहूंगा। ऐसा वह तय करके वहां गया।

उसने जाकर पूछा कि कहो ठीक तो हो?

उस आदमी ने कहा, कहां, ठीक कहां हूं, मरने के करीब बैठा हूं।

वह बोला, बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है, भगवान की कृपा है।

वह आदमी तो बहुत घबड़ाया, उसने यह आशा न की थी कि... यह कैसा आदमी है! उसने कहा, मैं मरने के करीब हूं, यह कहता है बहुत अच्छा है। यह किस शत्रुता का बदला ले रहा है? कब मैंने इससे कुछ बुरा कहा था जो यह बदला लेने आया है मरते वक्त! ऐसा कोई किसी से कहता है!

फिर उसने पूछा, किस चिकित्सक का इलाज चल रहा है?

उसने गुस्से में कहा कि मौत का! यमदूत चिकित्सा कर रहे हैं।

उसने कहा, वे तो बहुत ही भले चिकित्सक हैं। जहां उनके पैर पड़ जाएं वहीं जीवन ही जीवन है, स्वास्थ्य ही स्वास्थ्य है। उनके हाथों में तुम बिल्कुल सुरक्षित हो, घबड़ाना मत।

युवक तो घबड़ाया होगा, हैरान हुआ होगा!

लेकिन पूरे जीवन में ऐसा हो रहा है। हम बहरे हैं, हम अंधे हैं। शास्त्रों ने, विज्ञान ने, व्याख्याओं ने सब कान, आंखें, सब बंद कर दी हैं। जिंदगी से कुछ पूछते हैं, उत्तर हमें सुनाई नहीं पड़ता। उत्तर जो हम देते हैं वह हमारा अपना तैयार किया हुआ हजारों साल का उत्तर है, वह हम दे देते हैं। तब जिंदगी में हमारे उत्तर का कोई मेल नहीं होता। जिंदगी एक तरफ जाती है, हम दूसरी तरफ जाते हैं। और तब जीवन अगर दुख और विषाद हो जाता हो तो आश्चर्य नहीं है।

जीवन से जुड़ना जरूरी है। सारी दीवालें तोड़ देनी जरूरी हैं बीच की ताकि जीवन से हम जुड़ जाएं। यह कैसे होगा?

तो पहला चरण इसलिए मैंने कहाः अज्ञान का बोध। दूसरा चरण मैं आपसे कहता हूंः रहस्य उन्मुखता, रहस्य की तरफ उत्प्रेरणा। सदा जहां रहस्य हो, वहां व्याख्याएं हटा देना और डूबने की कोशिश करना। एक दरख्त के पास कभी बैठ कर देखना। दरख्त उतना ही नहीं है जितना दिखाई पड़ता है। वह लकड़ी नहीं है जिसका फर्नीचर बनता है बस, उतनी बात नहीं है। एक दरख्त दिखा और हमने सोचा कि अच्छा फर्नीचर बन सकता है। उतना नहीं है। दरख्त एक जीवित फिनॉमिना है, एक घटना है, एक जीवन की अदभुत कृति है, एक सृजन है, प्रभु का, परमात्मा का अदभुत रूप है, कुछ प्रकट हो रहा है वहां, कुछ बन रहा है।

फूल उतने ही नहीं हैं कि खरीदे और किसी को भेंट कर दिए या माला बना दी और किसी के गले में डाल दी। फूल उससे बहुत ज्यादा हैं। पत्ते-पत्ते में कोई कथा है, जो बहुत अदभुत है। छोटा-छोटा पत्ता भी कोई कहानी कह रहा है, जो अदभुत है। लेकिन सुनने वाले कान चाहिए, देखने वाली आंखें चाहिए। एक-एक कंकड़ में कुछ लिखा है। जो वेद में और कुरान में नहीं है वह एक-एक कंकड़ में है। जो गीता में और किसी महापुरुष के वचनों में नहीं है वह एक-एक पत्ते में है। लेकिन देखने वाली आंख चाहिए, खुले हुए कान चाहिए, खुला हुआ हृदय चाहिए। तो एक छोटे से पत्ते का कंपन कहीं ले जाएगा--किन्हीं दूर यात्राओं पर। पानी का कूदता हुआ एक कतरा किसी रहस्य को खोल देगा। आकाश में उठा हुआ कोई तारा कुछ कह जाएगा जो अबूझ है।

लेकिन खुली हुई आंख! आंख तो बंद है। कैसे यह खुलेगी?

थोड़ी कोशिश करनी पड़ेगी कि यह खुल सके, क्योंकि सैकड़ों साल इसको बंद करने में लगे हैं, हजारों साल ने इसको बंद किया है। धीरे-धीरे मनुष्य प्रकृति से टूटता गया है, टूटता गया है। अकेला रह गया है, आइसोलेटेड हो गया है। जब कि उसकी जड़ें हैं प्रकृति में, जब कि वहीं से कोई मार्ग हो सकता है। वह उससे टूटता गया, दूर हटता गया। हमारा कोई संबंध नहीं है, हम मनुष्य-निर्मित दुनिया में रह रहे हैं, परमात्मा के संसार से हमारा कोई संबंध नहीं है। मनुष्य ने एक दुनिया बना ली है अपनी, एक एनक्लोजर बना लिया है, एक घर बना लिया है, एक दीवाल बना ली है, उसके भीतर है। मनुष्य-निर्मित दुनिया है इसलिए कठिनाई हो गई है।

एक बड़ी दुनिया है जो चारों तरफ फैली है। जब मनुष्य नहीं था तब भी थी, हो सकता है मनुष्य न रह जाए तब भी होगी। और कोई फर्क नहीं पड़ेगा--पक्षी ऐसे ही गीत गाएंगे और पौधे ऐसे ही निकलेंगे, चांद ऐसे ही रोशनी देगा, सूरज ऐसे ही घूमेगा--आदमी नहीं भी हो सकता है। तो भी यह सब ऐसा ही था और ऐसा ही

होगा। और यह सूरज और यह पृथ्वी पर सब समाप्त नहीं है, ऐसे हजारों और लाखों सूरज हैं, ऐसे करोड़ों तारे हैं। जहां तक मनुष्य की दूर खोज जाती है, उसके पार भी बहुत कुछ है। असीम है सब, अनंत है सब।

इस असीम और इस अनंत के प्रति थोड़े हृदय को खोलना जरूरी है। उसके लिए जीवन में कुछ देखने के, सुनने के, जागने के प्रयोग करने जरूरी हैं। कभी किसी दरख्त को प्रेम करें, उसके पास रुकें। और आप हैरान हो जाएंगे, दरख्त में भी आपको कुछ चैतन्य के आभास मिलने शुरू होंगे।

एक वैज्ञानिक ने एक अदभुत काम किया इधर। कैक्टस का एक पौधा, जिसमें कांटे ही कांटे होते हैं और जिसमें कभी बिना कांटे की कोई शाखा नहीं होती, एक अमरीकन वैज्ञानिक उस पौधे को बहुत प्रेम करता रहा। लोगों ने तो समझा कि पागल है, क्योंकि पौधे को प्रेम करना! अरे आदमी को ही प्रेम करने वाले को बाकी लोग पागल समझते हैं, तो पौधे को प्रेम करने वाले को तो कौन समझदार समझेगा! उसके घर के लोगों ने भी समझा कि दिमाग खराब हो गया है।

वह सुबह से उठता तो वह पौधा ही पौधा था। उसी को प्रेम करता, उससे बातें भी करता। तब तो और पागलपन हो गया। पौधे से बातें! लेकिन वह उससे बातें भी करता। और उस पौधे से वह निरंतर कहता रहा कि कोई मेरा विश्वास नहीं करेगा, कोई मेरी सुनता नहीं, कोई मेरी मानता नहीं, मुझे तो लगता है कि तुममें भी जीवन है और अदभुत जीवन है। तुम भी शायद सुनते हो, तुम भी शायद समझते हो। शायद हमारी भाषाएं अलग हैं, शायद हमारे ढंग अलग हैं। पता नहीं क्या है! लेकिन तुम्हारे भीतर भी कुछ है। मैं कैसे उससे संबंधित हो जाऊं? क्या तुम मेरी बातों को सुनते हो या मेरे हृदय को अनुभव करते हो? या मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति जो प्रेम बहता है उसकी तरंगें तुम तक पहुंचती हैं? लेकिन मुझे कैसे पता चलेगा? क्या तुम मेरे लिए कुछ खबर दोगे? और उसने कहा, खबर का मैं एक सूत्र तुम्हें बताता हूं--यह वह सात साल तक निरंतर उस पौधे से कहता रहा--कि अगर तुम तक मेरा प्रेम पहुंचता हो तो तुममें एक ऐसी शाखा निकल आए जिसमें कांटे न हों, तो मैं समझ जाऊंगा।

और सात साल बाद एक शाखा निकल आई जिसमें कांटे नहीं थे।

अब क्या समझिएगा? सारे अमरीका में परेशानी खड़ी हो गई। उस पौधे में तो कभी बिना कांटे की कोई शाखा होती नहीं। वह आदमी पागल साबित नहीं हुआ। उसके प्रेम की खबरें वहां तक पहुंचीं, वहां कोई है जिसने उसको सुना, उत्तर भी आया।

ये पौधे ही नहीं हैं जो पास खड़े हैं। ये पक्षी ही नहीं हैं जो यहां-वहां घूम रहे हैं। इनके भीतर भी जीवन ने अनूठे रास्ते पकड़े हैं, इनके भीतर भी जीवन प्रकट हुआ है, इनके भीतर भी जीवन ने रूप लिया है, इनके भीतर भी कोई केंद्र है जहां जीवन मौजूद है--वही जीवन जो हमारे भीतर मौजूद है। इनसे कम्युनिकेशन हो सकता है, इनसे संबंध हो सकता है। इन तक प्रेम पहुंचाया जा सकता है, इनसे प्रेम पाया जा सकता है। यह कठिन नहीं है। लेकिन हमारे द्वार बंद हैं इसलिए कुछ पता नहीं चलता कि जीवन में क्या है। परमात्मा चारों तरफ है और हम पूछते हैं कि ईश्वर कहां है? और हम पूछते हैं कि किस मंदिर में जाएं, मस्जिद में जाएं कि गिरजाघर में जाएं?

जो भी यह पूछता है कि ईश्वर को खोजने कहां जाएं, वह जरूर अंधा है; क्योंकि जिसको खयाल आएगा थोड़ा सा भी, थोड़ा सा भी दिखाई पड़ेगा चारों तरफ, वह पाएगा--ईश्वर तो यहां है। यह जो चारों तरफ फैली हुई प्रकृति है, यह परमात्मा का घर है। ये जो चारों तरफ रूप दिखाई पड़ रहे हैं, इन रूपों से मत भटक जाना, इनके भीतर कुछ है जो अरूप है। उससे जुड़ना, उससे संपर्क साधना, उसके पास जाना, उसे प्रेम से पुकारना।

कोई संबंध होगा, कोई प्रेम फलित होगा। और इसी जीवन में और चारों तरफ फैले इसी जगत में, इसी विस्तार में हमारे प्राण संयुक्त होंगे तो ज्ञात होगा कि क्या है। तो ज्ञात होगा कि क्या है, तो अनुभव में आएगा, प्रतीति होगी कि सत्य क्या है, ईश्वर क्या है, आत्मा क्या है। जब तक यह नहीं तब तक सब व्यर्थ है। और इसके लिए तो मन के दर्पण को खूब साफ करना पड़े, धूल हटानी पड़े, चित्त से सारी व्याख्याएं हटानी पड़ें। छोटे बच्चे जैसा हो जाना पड़े, जो बिल्कुल निर्दोष आंखों से दुनिया को देखता है।

और तब, तब ठीक यहीं, इसी जगह कुछ होगा। उसके लिए इशारे किए जा सकते हैं, उसके लिए कहा नहीं जा सकता कि क्या होगा। उसकी हम कल बात करेंगे कि क्या हो सकता है और हम क्या करें कि जिस भांति इस प्रकृति से टूटे हुए संबंध जुड़ जाएं। मनुष्य अपरूटेड हो गया है, उसकी जड़ें उखड़ गई हैं। इसलिए तो सारी उदासी है। कोई पौधा इतना उदास नहीं, कोई पक्षी इतना उदास नहीं। मनुष्य के पास सब कुछ है और उदास है! क्या हो गया है? जरूर प्रकृति से कहीं हमारी जड़ें ढीली हो गई हैं। कहीं रस के स्रोत से हम टूट गए हैं, दूर हो गए हैं। इसलिए सब कुम्हलाया जा रहा है, सब सूखा जा रहा है। कांटे ही कांटे लगते हैं, कोई फूल दिखता नहीं, कोई फूल निकलता नहीं।

ये जड़ें वापस जोड़नी जरूरी हैं। साधना का कोई और अर्थ नहीं है, साधना का अर्थ है अपनी रूट्स को वापस, अपनी जड़ों को उनके मूलस्रोत तक वापस पहुंचा देना, जहां से वे जल पा सकें, जहां से वे प्राण पा सकें, जहां से वे जीवन के मूल केंद्र से संबंधित हो सकें।

लेकिन परमात्मा का जब भी खयाल उठता है तो हम आकाश की तरफ हाथ जोड़ लेते हैं। परमात्मा का जब भी खयाल उठे तो जड़ों का विचार करना, सिर की तरफ देखने से कोई फायदा नहीं है। नीचे की तरफ, जहां से जीवन जुड़ा है, वहां से।

यह रहस्य का बोध! अज्ञान का बोध, मैंने कल आपसे कहा। रहस्य का बोध! जीवन में एक काव्य होना चाहिए, जीवन में एक संगीत होना चाहिए, सौंदर्य का बोध होना चाहिए, प्रेम का बोध होना चाहिए। जुड़ना चाहिए आसपास। प्रेम का और क्या अर्थ है? अर्थ है जुड़ना।

इसलिए तो कहा कि प्रेम से परमात्मा मिल सकता है। उसका क्या मतलब है? उसका मतलब यह नहीं है कि प्रेम-प्रेम, प्रेम-प्रेम जपेंगे तो परमात्मा मिल जाएगा। प्रेम का अर्थ हैः जुड़ना। अकेला प्रेम है जो जोड़ता है, और सब तोड़ता है।

प्रेम को फैलाना होगा, चारों तरफ फैलाना होगा। कभी विचार करें, कभी देखें, अभी दो दिन यहां हैं, रात जब तारे आकाश में हों तो चले जाएं एकांत में, जरा आंखें साफ करके पहली दफा तारों को देखें। सब हटा दें अपने मन को और चुपचाप तारों के नीचे बैठे रह जाएं। जाने दें हृदय के प्रेम को तारों तक। और प्रेम की कोई पुकार अनसुनी नहीं आती, प्रेम की कोई पुकार बिना प्रत्युत्तर के नहीं लौटती, उत्तर लाती है साथ। यह असंभव है कि प्रेम खाली लौट आए, दुगना प्रेम लेकर लौटता है।

तो तारों को जब प्रेम के गीत से भर कर आप देखेंगे तो वहां से भी कुछ आएगा। और जब वृक्षों के पास प्रेम से बैठेंगे तो वहां से भी कुछ आएगा। पक्षी भी कुछ देंगे। सब तरफ से कुछ मिलेगा। जो बाहर की तरफ प्रेम फेंकता है उसके हृदय की तरफ प्रेम के अनंत-अनंत स्रोत आने शुरू हो जाते हैं। और तब उसके भीतर एक ऊर्जा होगी, एक जागरण होगा, एक होश आएगा, वह मिस्टीरियस उसको पकड़ लेगा, वह जो रहस्यपूर्ण है उसको पकड़ लेगा। तब वह व्यक्ति नहीं रह जाएगा, तब वह समष्टि का धीरे-धीरे एक अंग होने लगेगा। तब वह इकाई

नहीं रह जाएगा, वह सबका एक हिस्सा होने लगेगा। धीरे-धीरे उसका व्यक्ति मिटता जाएगा और परमात्मा प्रकट होता चला जाएगा।

जो व्यक्ति रहस्य से जितना दूर है उतना अहंकार से भर जाता है। जो व्यक्ति जितना अहंकार से भर जाता है उतना ही जीवन के रहस्य से दूर होता चला जाता है। अहंकार का अर्थ हैः मैं हूं और मेरा किसी से कोई संबंध नहीं है। मैं हूं और मेरा किसी से कोई प्रेम नहीं है। मैं सेवा ले सकता हूं, शोषण कर सकता हूं, लेकिन मेरा कोई संबंध नहीं है। मेरे प्राण अलग और दूर हैं। इसलिए अहंकार ऊपर उठना चाहता है और अकेला होना चाहता है। जितना आदमी ऊपर उठता जाता है उतना अकेला होता जाता है। जितना ज्यादा धन उसके पास होता जाता है उतना वह टूटता जाता है दूसरों से, उसके भवन में बंद होता चला जाता है। वह किसी देश का राजा हो जाता है, राष्ट्रपति हो जाता है, सबसे टूट जाता है, अलग खड़ा हो जाता है।

मैं अलग होना चाहता है; प्रेम जुड़ना चाहता है। जो मैं के रास्ते पर जाएगा वह सबसे टूट जाएगा और उसकी जड़ें छिन्न-भिन्न हो जाएंगी। वह फूल तोड़ सकता है, फूल को जान नहीं सकता। वह किसी की गर्दन दबा सकता है, किसी को प्रेम नहीं कर सकता।

हिंदुस्तान से तैमूरलंग जब वापस लौटा, एक गांव में ठहरा। उसके स्वागत में आसपास की वेश्याएं नाचने के लिए आईं, रात को उसके दरबार में वे नाचीं। जब वे लौटने लगीं, अंधेरी रात थी। उसने उनके सौंदर्य की खूब प्रशंसा की और उनके नृत्यों और उनके गीतों का बहुत आनंद लिया। और उन्हें बहुत भेंटें दीं और कहा कि मैंने ऐसी सुंदर स्त्रियां नहीं देखीं, ऐसे गीत नहीं देखे, ऐसे नृत्य नहीं देखे। मैं आनंदित हुआ। और उसने उन्हें बहुत-बहुत भेंटें दीं। लेकिन रात अंधेरी थी, अमावस की थी। उन वेश्याओं ने कहा, रात अंधेरी है, हमें दूर तक जाना है। तो उसने अपने सिपाहियों को कहा कि जाओ और बीच के सब गांवों में आग लगा दो ताकि रोशनी हो जाए। क्योंकि कोई यह न कहे बाद में कि तैमूरलंग के पास नाचने आई हुई वेश्याएं अंधेरे में वापस लौटीं। उसने रात में भी दिन करवा दिया। आसपास के दस-बारह गांवों में आग लगा दी गई। सोए हुए लोग वहां जल गए और वे वेश्याएं प्रकाश में लौटीं।

इसने नृत्य देखा होगा? इसने संगीत सुना होगा? इसने उनके सौंदर्य को अनुभव किया होगा? कैसे संभव है? यह कैसे संभव है?

तो चित्त पर निरंतर विचार करना जरूरी है, चित्त के प्रति सजग होना जरूरी है कि मैं जो कर रहा हूं कहीं वह मेरे भीतर क्रूरता, घृणा, हिंसा, इन सबको तो बलिष्ठ नहीं करता जाता? कहीं मेरे भीतर अहंकार को तो पुष्ट नहीं करता जाता?

एक तरफ मैं यह करता रहूं जीवन भर और फिर अचानक जब मैं इससे घबड़ा जाऊं, अहंकार से पीड़ा पाऊं, अशांति पाऊं, दुख से भर जाऊं, तो मैं कहूं कि मुझे परमात्मा चाहिए, मुझे ईश्वर चाहिए, मुझे मोक्ष चाहिए, तो कैसे होगा? यह अहंकार को समझना होगा, तोड़ना होगा, मिटाना होगा। अहंकार मरे तो ही कुछ हो सकता है।

अहंकार के मरने के मैंने दो सूत्र आपसे कहे, तीसरे सूत्र की मैं कल चर्चा करूंगा। ज्ञान जाने दें, रहस्य आने दें। ये दो बातें मैंने कहीं, कल तीसरी बात आपसे कहूंगा। इस संबंध में कुछ प्रश्न होंगे तो वह दोपहर और सांझ बात हो जाएगी।

अब हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे। आज की बात के बाद सुबह का ध्यान और भी आसान हो जाना चाहिए। आज की बात के बाद सुबह के ध्यान में और अर्थ आ जाना चाहिए। तो अब मैं कुछ और नहीं कहूंगा, कल मैंने सुबह के ध्यान के बाबत आपसे कहा है।

हम सब दूर-दूर हट जाएंगे। दरख्तों के नीचे चले जाएं या कहीं भी चले जाएं, दूर हट जाएं।

छठवां प्रवचन

ध्यान--जागरण का द्वार

तने दिन की चर्चा में मैंने यह कहा कि अज्ञानी मनुष्य, अज्ञान से घिरा हुआ व्यक्ति जो भी करेगा वह गलत होगा। वह जो भी करेगा गलत होगा।

पूछा हैः यदि अज्ञान से घिरा हुआ व्यक्ति जो भी करेगा वह गलत होगा, तो ध्यान, जागरण, इसकी जो चेष्टा है वह भी उसकी गलत होगी। फिर तो कोई द्वार नहीं रहा, फिर तो कोई मार्ग नहीं रहा। इससे संबंधित और दो-तीन प्रश्न भी हैं इसलिए सबसे पहले इसी प्रश्न को मैं ले लेता हूं।

निश्चित ही, भीतर अज्ञान हो तो हम जो भी करेंगे वह ठीक नहीं हो सकता। सामान्यतया सोचा जाता है कि कर्म ठीक होते हैं या गलत होते हैं। एक आदमी मंदिर जाता है तो हम कहते हैं ठीक है; एक आदमी वेश्यागृह में जाता है तो हम कहते हैं गलत है। एक आदमी चोरी करता है तो हम कहते हैं बुरा है, पाप है; एक आदमी दान देता है तो हम कहते हैं शुभ है, पुण्य है। हम कर्मों को देखते और विचार करते हैं। मेरे देखे यह आमूलतः गलत है। कर्म न तो अच्छे हो सकते हैं और न बुरे; चेतना अच्छी होती है या बुरी। और चेतना यदि गलत हो तो चाहे कर्म ऊपर से कितना ही ठीक दिखाई पड़े, बुनियाद में, आधार में गलत होगा।

जैसे, एक आदमी जिसने जीवन भर शोषण किया हो, शोषण से धन इकट्ठा किया हो, मंदिर बनाए, तो मंदिर बनाना कृत्य अच्छा नहीं हो सकता। मंदिर बनाना दिख रहा है कि बहुत अच्छा, लेकिन उसके प्रयोजन अच्छे नहीं हो सकते हैं। हो सकता है वह अपने नाम को छोड़ जाने के लिए मंदिर बनाता हो, अपने अहंकार की पुष्टि के लिए मंदिर बनाता हो। और सच तो यही है कि अब तक जो मंदिर बनाए गए हैं उनमें परमात्मा की कोई स्थापना नहीं हुई, उनमें तो अपने-अपने बनाने वालों का अहंकार ही प्रतिष्ठित हुआ है। इसीलिए तो जो मंदिर बनाता है उसकी चिंता इसकी बहुत कम होती है कि उसके भीतर क्या होता है, उसकी चिंता यही ज्यादा होती है कि उसके बाहर किसका नाम है। नाम की चिंता प्रमुख है, परमात्मा की और प्रार्थना की कोई चिंता नहीं है।

जो व्यक्ति, भीतर से जिसकी चेतना शुभ नहीं हुई है, जाग्रत नहीं है, कुछ भी करेगा--वह दान भी देगा तो भी दान में जिसे उसने दान दिया उसके प्रति प्रेम नहीं होगा। हो सकता है दान में भी अहंकार की ही पूजा हो। उसमें भी वह यह अनुभव करना चाहता हो कि मैं बड़ा दानी हूं। उसमें भी वह मजा लेना चाहता हो। उसमें भी उसका रस हो। होगा! उसका रस यह नहीं होगा कि किसी की दरिद्रता मिट जाए। क्योंकि अगर दानी का यही रस होता कि किसी की दरिद्रता मिट जाए तो उसके पास धन इकट्ठा कैसे होता? अगर दरिद्रता मिटाना ही उसके चित्त की स्थिति होती, दुख मिटाना ही उसके चित्त की स्थिति होती, तो धन इकट्ठा कैसे होता? दरिद्रता पैदा कैसे होती?

आश्चर्यजनक है कि दुनिया में दानी भी हैं और दरिद्रता भी है! और हो सकता है ये दानी ही दरिद्रता के लाने में भी कारण हों। क्योंकि यह धन कहां से आता है?

जब कोई धन इकट्ठा करता है तो दूसरी तरफ दरिद्रता पैदा होती है। जब एक तरफ धन के ढेर लगने लगते हैं तो दूसरी तरफ धन का अभाव पड़ जाता है। जिसके पास ढेर बहुत बढ़ जाते हैं वह उनके दान भी करने लगता है। लेकिन उस चित्त में दरिद्र के प्रति प्रेम नहीं है। और यह दान जो वह कर रहा है इसमें भी और नये इनवेस्टमेंट हैं, मोक्ष तक के इनवेस्टमेंट हैं। वह दान इसलिए कर रहा है, यहां उसने इकट्ठा किया, यहां उसने सुख भोगा--जिसको उसने सुख समझा, वह सुख हो या न हो--यहां उसने बहुत धन इकट्ठा किया, बड़े मकान बनाए, अब वह इस बात के लिए भी चिंतित है कि स्वर्ग में उसकी हवेली छोटी न हो, वहां भी बड़ी होनी चाहिए। वहां भी पुण्य का खाता वह खोल लेना चाहता है, वहां भी जाकर वह दावेदार होगा, वहां भी जाकर वह अपना इंतजाम कर लेना चाहता है, इसलिए सारी व्यवस्था कर रहा है। दरिद्र से उसे प्रेम नहीं है। अपने अमीर होने से पश्चात्ताप नहीं है। धन के प्रति उसका मोह कम नहीं हुआ है, लोभ उसका कम नहीं हुआ है, बल्कि और बढ़ गया है। इस संसार को छोड़ कर परलोक तक उसके लोभ की व्यापकता हो गई है, वह दूर तक सोचने लगा है। यहां उसका बैंक है, यहां उसका एकाउंट है। वहां परमात्मा के जगत में भी अगर कोई एकाउंट हो सकता है, उसकी भी व्यवस्था है, वह कर रहा है। वह वहां दर्ज करवा रहा है कि स्मरण रहे, मैं यहां भी दरिद्र नहीं था, मैं वहां भी दरिद्र नहीं रहना चाहता हूं। और तब उससे दान निकल रहा है। तब वह बांट रहा है गरीबों को।

यह सब झूठा होगा, यह मिथ्या होगा। यह शुभ नहीं है। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि आप क्या करते हैं, महत्वपूर्ण यह है कि आप क्या हैं! आपका होना महत्वपूर्ण है, आपकी बीइंग। आपका एक्शन और आपकी डूइंग नहीं। आप क्या करते हैं, यह महत्वपूर्ण नहीं है। आप क्या हैं? क्योंकि उसी होने से तो आपका कृत्य निकलेगा, उसी होने से आपका कर्म निकलेगा।

कर्म हो सकता है अच्छा दिखाई पड़े। और अच्छा क्यों दिखाई पड़ता है? समाज को जिसमें सुविधा होती है वह अच्छा दिखाई पड़ने लगता है कर्म, जिसमें समाज को असुविधा होती है वह बुरा दिखाई पड़ने लगता है। लेकिन धर्म के और आत्मा के जगत में वैल्यूज अलग हैं, मूल्य अलग हैं। समाज मूल्य नहीं है। कौन सी स्थिति मुझे अधिक जागरण, अधिक आनंद, अधिक सत्य के करीब ले जाती है, वह शुभ है। कौन सी स्थिति मेरे भीतर दुख को लाती है, चिंता को लाती है, अंधेरे को लाती है, अज्ञान को बढ़ाती है, वह अशुभ है।

सवाल बिल्कुल भीतर है। और इस भीतर को हम आचरण से नहीं तौल सकते हैं। क्योंकि भीतर दूसरा आदमी हो सकता है, आचरण में दूसरा आदमी हो सकता है। भीतर बहुत क्रोधी आदमी हो सकता है, ऊपर क्षमा की बातें कर सकता है। और अक्सर ऐसा होता है, जो भीतर बहुत क्रोधी होता है वह बाहर क्षमा को ओढ़ लेता है। जो बहुत कुरूप अपने को अनुभव करता है वह सुंदर वस्त्र पहनता है ताकि कुरूपता छिप जाए। जो जितना कुरूप खयाल करता है अपने को उतने आभूषण लाद लेता है ताकि कुरूपता छिप जाए। सौंदर्य को ओढ़ता है ताकि कुरूपता दिखाई न पड़े। जहां जितना क्रोध है वहां उतनी क्षमा को ओढ़ने की चेष्टा चलती है। जहां भीतर जितनी हिंसा है वहां ऊपर अहिंसा को ओढ़ने की तरकीबें चलती हैं। भीतर कुछ और है, बाहर कुछ और है, क्योंकि बाहर हम वह नहीं दिखना चाहते हैं जो हम भीतर हैं। इसलिए हम अहिंसा ओढ़ सकते हैं, सस्ती अहिंसा ओढ़ सकते हैं और उसके ओढ़ने के भीतर अपनी हिंसा को छिपा सकते हैं।

यह जो स्थिति है, यह जो हमारी स्थिति है भेद की--भीतर हम कुछ और हैं, बाहर हम कुछ और हैं। इसलिए केवल कृत्य से नहीं सोचा जा सकता कि क्या हो रहा है। कृत्य से नहीं सोचा जा सकता। वही आदमी चर्च को बनाने के लिए पैसा देता है, वही आदमी वार-फंड में भी पैसा देता है। वही आदमी है! वही मंदिर भी

बनाता है, वही युद्ध के लिए भी पैसा दान करता है। यह इस आदमी की चेतना कैसी है? क्योंकि जिस आदमी ने परमात्मा के मंदिर के लिए दान दिया, उसके लिए युद्ध के लिए दान देने का अब कोई उपाय नहीं रह गया।

लेकिन वही आदमी दे रहा है! उसके पास पैसा है, वह युद्ध में भी देता है। वह उस चर्च को भी देता है जहां प्रेम की शिक्षा दी जाती है और वह युद्ध को भी देता है जहां आदमी की हत्या की जाती है। वही गीता भी छपवा कर बंटवाता है, वही युद्ध के लिए भी सहायता करता है।

यह जो आदमी है इसके भीतर चेतना सोई हुई है, यह जो भी कर रहा है वह गलत है। गलत चेतना से ठीक कर्म असंभव है। एक ऐसे कुएं से जिसमें जहर भरा हो, ऐसा पानी निकालना असंभव है जिसमें जहर ऊपर न आ जाए। आएगा ही! जो भीतर है वही बाहर आता है। इसलिए मैंने कहा कि अज्ञान की स्थिति में जो भी हम करेंगे वह गलत होगा, वह शुभ नहीं हो सकता।

तो दूसरी बात उन्होंने यह पूछी है कि फिर यह ध्यान का क्या होगा? जागरण का क्या होगा? साधना का क्या होगा? फिर तो यह भी गलत हो जाएगी।

निश्चित! अगर यह भी एक कर्म हो, एक एक्शन हो, तो गलत हो जाएगी। यह एक्शन ही नहीं है, यह कर्म ही नहीं है, इसलिए गलत नहीं हो सकती।

अब इस थोड़ी सी बात को समझना बहुत जरूरी है।

ध्यान कोई क्रिया नहीं है, कोई कर्म नहीं है। ध्यान कोई एक्ट नहीं है। मैंने कहा, कोई भी कर्म अज्ञान से निकलेगा, गलत होगा। ध्यान कोई कर्म नहीं है।

जापान में एक बहुत बड़ा राजा हुआ। उसने सुनी खबर कि पास के पहाड़ पर एक फकीर लोगों को ध्यान सिखाता है। बहुत लोगों ने खबर दी कि बहुत शांति मिली है, बहुत आनंद मिला है और प्रभु की झलक दिखाई पड़ी है। तो वह राजा भी गया। दूर-दूर तक पहाड़ में फैला हुआ आश्रम था, बीच में बड़ा भवन था, जो उस पूरे आश्रम में सबसे ऊपर और अलग दिखाई पड़ता था, बाकी तो झोपड़े थे। तो वह फकीर झोपड़ों का तो बताने लगा कि वे यहां स्नान करते हैं, यहां भोजन करते हैं, यहां पढ़ते हैं, यहां वह करते हैं। वह राजा बोला कि मैं समझ गया झोपड़ों की बात, लेकिन इस बीच के बड़े भवन में क्या करते हैं? लेकिन फकीर इस बात को पूछते ही चुप हो जाता था। राजा बहुत परेशान हुआ। वह दूसरे झोपड़ों के बाबत फिर बताने लगा। आखिर विदा होने का वक्त आ गया, न तो वह उस बड़े भवन में ले गया और न उसके संबंध में कुछ कहा।

राजा ने चलते हुए कहा कि या तो तुम पागल हो या मैं पागल हूं। जिस चीज को देखने आया था उसको तो तुमने दिखाया भी नहीं, उस बड़े भवन में मुझे ले भी नहीं गए, उसके संबंध में कुछ कहते भी नहीं। मैं दो-चार बार पूछ भी चुका। और तुम यह सब फिजूल--कि भिक्षु यहां स्नान करते हैं, यहां पानी है, यहां यह है--यह सब तुमने मुझे बताया, इससे क्या प्रयोजन है?

वह फकीर बोला, मैं जरा मुश्किल में पड़ गया जब आप पूछते थे कि भिक्षु यहां क्या करते हैं? तो कठिनाई हो गई कि बात गड़बड़ हो जाएगी। भिक्षु वहां कुछ करते नहीं, वहां ध्यान में जाते हैं। और ध्यान कोई करना नहीं है। इसलिए मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया। अगर मैं कहूं कि ध्यान करते हैं, तो गलती हो जाएगी, क्योंकि ध्यान किया नहीं जाता।

वह कोई एक्ट नहीं है आपका, आपकी कोई क्रिया नहीं है। बल्कि जब आप सारी क्रियाएं छोड़ कर मौन हो जाते हैं, वहां कोई क्रिया नहीं रह जाती; शरीर कुछ नहीं कर रहा है, मन भी कुछ नहीं कर रहा है; शरीर भी शांत हो गया, मन भी शांत हो गया। दो ही तो क्रियाएं होती हैं--शरीर की या मन की। आत्मा की कोई क्रिया

नहीं होती। आत्मा की कोई भी क्रिया नहीं होती। शरीर की क्रिया होती है या मन की क्रिया होती है। ध्यान वह स्थिति है जब शरीर की भी सारी क्रियाएं शांत हो गई हैं, मन की भी सारी क्रियाएं शांत हो गई हैं। फिर क्या है? वहां कोई एक्शन नहीं है, वहां सिर्फ बीइंग है। वहां कोई कर्म नहीं है, मात्र आत्मा है। वहां मात्र होना मात्र है। वहां कुछ किया नहीं जा रहा है, हम सिर्फ हैं।

इस फर्क को समझ लेंगे तो आपको खयाल में आ जाएगा कि अकेला ध्यान ऐसी स्थिति और अवस्था है जिसको अज्ञानी भी कर सकता है। भाषा की भूल है। अज्ञानी भी कर सकता है और कुछ बुरा नहीं होगा। बल्कि इसके ही द्वारा उसका अज्ञान टूटेगा और नष्ट होगा।

मैं एक शिविर में था। वहां एक अत्यंत वृद्ध महिला, कोई अस्सी वर्ष की बूढ़ी महिला भी उस शिविर में आईं। वे बड़ी सीधी महिला हैं, अत्यंत गांव की हैं, बिल्कुल बे-पढ़ी-लिखी हैं। बहुत लोग उनको आदर करते हैं। कारण खोजना कठिन है आदर का। क्योंकि न वे कुछ बोलती हैं, न कोई खास बात है, गांव की बिल्कुल सामान्य महिला हैं। फिर भी उनके घर को लोग तीर्थ मानते हैं और आसपास उनके घर के चक्कर लगा जाते हैं।

वे भी आ गईं। किसी उनके भक्त ने कहा कि वहां चलिए, तो उन्होंने कहा, ठीक है, तो वे भी आ गईं। उनके पास गुजरात के एक बहुत प्रतिष्ठित वकील कोई बीस-तीस वर्षों से सब कुछ छोड़ कर उनके पास ही रहते हैं, उनके पैर दाबते रहते हैं, उनके कपड़े धोते रहते हैं। वे उनके साथ आए हुए थे।

सुबह की चर्चा में मैंने ध्यान के लिए समझाया। रात को हम ध्यान के लिए बैठे तो वे वकील मेरे पास आए और उन्होंने कहा उन महिला के बाबत कि वे तो नहीं आती हैं। मैंने बहुत कहा कि ध्यान करने चलो, तो वे हंसती हैं और कहती हैं, तुम जाओ। मैं नहीं समझा, उन्होंने कहा। वकील ने मुझसे कहा कि मैं नहीं समझ पाया वे क्यों नहीं आती हैं?

मैंने कहा, कल सुबह मेरे सामने ही उनसे पूछना।

कल सुबह उन वकील ने खड़े होकर उनसे पूछा कि मैं यह निवेदन करता हूं कि यह बताइए आप कल आईं क्यों नहीं? जब मैंने आपसे बार-बार कहा कि ध्यान करने चलिए तो आप नहीं आईं।

तो वे हंसने लगीं और मुझसे बोलीं, आपने इतना समझाया सुबह कि ध्यान किया नहीं जाता। मगर ये फिर भी मुझसे कहने लगे कि ध्यान करने चलिए, ध्यान करने चलिए। तो मुझे हंसी आने लगी कि ये कुछ समझे नहीं तो ध्यान क्या करेंगे? तो मैंने इनसे कहा, तुम जाओ। और जब ये चले आए तो मैं ध्यान में चली गई। उन्होंने मुझसे कहा, जब ये चले आए और कमरा सन्नाटा हो गया, तो मैं ध्यान में चली गई। ये यहां ध्यान करते रहे और वहां मैं ध्यान में चली गई।

ध्यान करना नहीं है, क्योंकि करने में एक एफर्ट है, कोशिश है, काम है। ध्यान कोई काम नहीं है, ध्यान एक अवस्था है। ध्यान ऐसी अवस्था है जहां कोई क्रिया नहीं हो रही है।

तो इसलिए अज्ञान की स्थिति में एकमात्र द्वार है जहां से ज्ञान तक पहुंचा जा सकता है। वह ध्यान है। बाकी तो फिर सब क्रियाएं हैं। कोई प्रार्थना करता है तो क्रिया हो जाती है। लेकिन अगर वह प्रार्थना न करे और प्रार्थना में हो जाए, तो फिर वह अक्रिया हो जाएगी, फिर वह ध्यान हो जाएगा। जब मैं आपसे कहता हूं मैं आपको प्रेम करता हूं, तो कोई क्रिया करता हूं क्या? नहीं, प्रेम कोई क्रिया नहीं है। मैं प्रेम में होता हूं। यह बात गलत है जब मैं कहता हूं कि मैं प्रेम करता हूं। कहना चाहिए कि मैं प्रेम में हूं। प्रेम करना जैसी कोई चीज नहीं है, प्रेम में होना जैसी चीज है। ऐसे ही ध्यान में होना जैसी चीज है। उस पर हम और विचार करेंगे कि ध्यान में होना और ध्यान करना, इन दोनों में बुनियादी फर्क है। अगर ध्यान करते हैं, तो आप निश्चित मानिए, ध्यान भी

एक गलत कृत्य होगा। और तब इस ध्यान के करने का यही परिणाम होगा कि आपके भीतर अहंकार मजबूत होगा कि मैं ध्यान करने वाला हूं, मैं धार्मिक हूं, मैं ज्ञानी हूं! और दूसरों को आप हीन समझना शुरू कर देंगे जो ध्यान नहीं करते हैं।

मोहम्मद ने एक दिन अपने एक रिश्तेदार के लड़के को कहा कि कल सुबह तू भी मस्जिद चलना। उस युवा को सुबह-सुबह पांच बजे उठा लिया और लेकर चले। वह पहले दिन पहली बार गया। जब मस्जिद से लौटते थे तो कुछ लोग बाहर सोए हुए थे। तो उस युवा ने मोहम्मद से कहा कि ये अधार्मिक, ये पापी देखो अभी तक सो रहे हैं!

मोहम्मद ने वहीं खड़े होकर ऊपर हाथ उठाए और कहा, हे परमात्मा, मुझसे भूल हो गई। यह घर ही सोया रहता तो बेहतर था, कम से कम यह दूसरों को अधार्मिक और पापी तो नहीं समझता था। यह आज एक दिन मस्जिद क्या हो आया है, इसने और एक अहंकार के लिए नया बिंदु खोज लिया कि दूसरे जो सो रहे हैं वे पापी हैं और अधार्मिक हैं।

यह प्रार्थना एक्ट हो गई, क्रिया हो गई अज्ञान से निकली हुई। अगर यह मस्जिद में जाकर प्रार्थना में चला गया होता तो लौटते में यह खयाल असंभव था कि ये अधार्मिक हैं और पापी हैं। यह असंभव था। क्योंकि अहंकार का पोषण संभव नहीं था। प्रार्थना में और ध्यान में अहंकार तो विलीन हो जाता है, शून्य हो जाता है। वह बिंदु नहीं रह जाता सोचने का और विचार करने का। उसके आधार पर फिर चिंतन नहीं होता। फिर इसे कुछ और स्थिति होती। इसे शायद उन पर दया आती, शायद उन पर प्रेम आता, शायद यह उनकी सेवा में लग जाता, शायद यह उनकी फिक्र करने लगता कि किस दिन ये भी प्रार्थना के आनंद को उपलब्ध हो जाएं। लेकिन अभी यह नहीं हुआ। अभी यह हुआ कि उसे लगा कि ये दुष्ट, ये सब पापी! उसने एक मजा ले लिया।

दूसरे को नीचा दिखाने के बहुत उपाय हैं। एक आदमी साधु बन कर बैठ जाता है, सारी दुनिया को असाधु मान लेता है। मजा आ गया। एक आदमी संन्यासी होकर बैठ जाता है, बाकी सबको भोगी मान लेता है। आनंद आ गया, बहुत गहरा आनंद आ गया। सबको नीचा दिखाने का दुनिया में बड़ा रस है।

तो अगर ध्यान क्रिया है तो आपको यह रस आ जाएगा लौट कर कि मैं एक ध्यान के शिविर से लौट रहा हूं, साधारण आदमी नहीं हूं, ध्यानी हूं। तो जो नहीं आए हैं उनको नीचा दिखाने की आपको एक सुविधा हो गई। यह वही रास्ता है! एक आदमी छोटी कुर्सी पर बैठता है, दूसरा बड़ी कुर्सी पर बैठ जाता है, वह बड़ा हो जाता है। एक आदमी के पास दस रुपये हैं, एक के पास दस हजार हैं, वह बड़ा हो जाता है। एक आदमी बेचारा मंदिर नहीं जाता है, दूसरा जाता है, वह बड़ा हो जाता है। एक आदमी रोज गीता उठा कर पढ़ता है, वह बड़ा हो जाता है।

ये सब अहंकार की खोजें हैं। अहंकार के रास्ते बहुत सूक्ष्म हैं। अहंकार वहीं टूटता है जहां क्रिया न हो। जहां क्रिया है वहां तो अहंकार मजबूत होगा।

सिर्फ ध्यान एक ऐसी स्थिति है जीवन में जो क्रिया नहीं है और इसलिए उसमें प्रवेश हो सकता है। और वह प्रवेश अशुभ नहीं होगा। और उसी सूत्र के द्वारा अज्ञान से ज्ञान में संक्रमण होता है।

फिर ज्ञान में पहुंच कर भी क्रियाएं होंगी। लेकिन वे क्रियाएं अहंकार को मजबूत नहीं करेंगी, क्योंकि ध्यान से गुजरने में अहंकार तो विलीन हो जाएगा। तब भी क्रियाएं होंगी। महावीर को ज्ञान उपलब्ध हुआ हो, बुद्ध को उपलब्ध हुआ हो, क्राइस्ट को, फिर जीवन भर क्रिया तो करते रहे, फिर जीवन भर दौड़ते तो रहे एक

गांव से दूसरे गांव, लोगों को समझाते तो रहे, बोलते तो रहे, यह सब क्रिया तो हुई। लेकिन फिर इससे अहंकार कोई पुष्ट नहीं हुआ, वह तो जा चुका था।

जब तक अहंकार है, अज्ञान है, तब तक क्रिया वासना-प्रेरित होती है। और जब अहंकार विलीन हो जाता है तो क्रिया करुणा से स्फुरित होती है। वासना आगे होती है जिसको पाने के लिए क्रिया होती है, करुणा पहले होती है जिससे क्रिया का स्पंदन होता है, जिससे क्रिया निकलती है।

दो तरह की क्रियाएं हैं जगत में--वासना के लिए प्रेरित और करुणा से स्फूर्त। करुणा से स्फूर्त क्रिया शुभ है, वासना से प्रेरित क्रिया अशुभ है। लेकिन हमारी तो सारी क्रियाएं, चूंकि हम अज्ञान में हैं, वासना से प्रेरित होंगी। हम पूछेंगे कि किसलिए?

इसमें एक प्रश्न पूछा हैः ध्यान किसलिए करें? सत्य की खोज किसलिए करें? आत्मा की खोज किसलिए करें?

ठीक पूछा है। क्योंकि हम तो हर बात के लिए पूछेंगे कि किसलिए? कोई कारण हो पाने के लिए तो ठीक है, कुछ दिखाई पड़े कि धन मिलेगा, यश मिलेगा, गौरव मिलेगा, कुछ मिलेगा, तो फिर हम कुछ कोशिश करें। क्योंकि जीवन में हम कोई भी काम तभी करते हैं जब कुछ मिलने को हो। ऐसा कोई काम करने के लिए कोई राजी नहीं होगा जिसमें कहा जाए कि कुछ मिलेगा नहीं और करो। वह कहेगा, फिर मैं पागल हूं क्या? कि जब कुछ मिलेगा नहीं और मैं करूं।

लेकिन मैं आपसे निवेदन करता हूं, जीवन में वे ही क्षण महत्वपूर्ण हैं जब आप कुछ ऐसा करते हैं जिसमें कुछ भी मिलता नहीं। यह मैं फिर से दोहराऊं, जीवन में वे ही क्षण महत्वपूर्ण हैं जब आप कुछ ऐसा करते हैं जिसमें कुछ मिलता नहीं। जब कुछ मिलने के लिए आप करते हैं तब बहुत क्षुद्र हाथ में आता है। विराट को पाने के लिए कुछ पाने की आकांक्षा नहीं होनी चाहिए। हो तो फिर बाधा हो जाएगी।

ध्यान किसलिए करते हैं? अगर कोई आपसे पूछे, प्रेम किसलिए करते हैं? तो क्या कहेंगे? कहेंगे, प्रेम स्वयं अपने आप आनंद है। वह किसी के लिए नहीं, कोई परपज नहीं है और आगे। प्रेम अपने में ही आनंद है। उसके बाहर और कोई कारण नहीं जिसके लिए प्रेम करते हों। और अगर कोई किसी कारण से प्रेम करता हो तो हम फौरन समझ जाएंगे कि गड़बड़ है, यह प्रेम सच्चा नहीं है।

मैं आपको इसलिए प्रेम करता हूं कि आपके पास पैसा है, वह मिल जाएगा। तो फिर प्रेम झूठा हो गया। मैं इसलिए प्रेम करता हूं कि मैं परेशानी में हूं, अकेला हूं, आप साथी हो जाएंगे। वह प्रेम झूठा हो गया। वह प्रेम न रहा। जहां कोई कारण है वहां प्रेम न रहा, जहां कुछ पाने की इच्छा है वहां प्रेम न रहा। प्रेम तो अपने आप में पूरा है।

ठीक वैसे ही, ध्यान के आगे कुछ पाने को जब हम पूछते हैं--क्या मिलेगा? वह हमारा लोभ पूछ रहा है। मोक्ष मिलेगा कि नहीं? आत्मा मिलेगी कि नहीं? वह पूछ रहा है हमारा लोभ। वही जो हमारी हमेशा लाभ, लोभ की जो चिंतना है, वह काम कर रही है।

नहीं, मैं आपसे कहता हूं, कुछ भी नहीं मिलेगा। और जहां कुछ भी नहीं मिलता वहीं वह मिल जाता है, सब कुछ जिसे हम कहें। जिसे हमने कभी खोया नहीं, जिसे हम कभी खो नहीं सकते, जो हमारे भीतर मौजूद है। अगर उसको पाना हो जो हमारे भीतर मौजूद है तो कुछ और पाने की चेष्टा सार्थक नहीं हो सकती है। सब पाने

की चेष्टा छोड़ कर जब हम मौन, चुप रह जाएंगे, तो उसके दर्शन होंगे जो हमारे भीतर निरंतर मौजूद है। कुछ वहां मौजूद है, उसे पाने के लिए अक्रिया में हो जाना जरूरी है, सारी क्रियाएं छोड़ कर अक्रिया में हो जाना जरूरी है।

अगर मुझे आपके पास आना हो तो दौड़ना पड़ेगा, चलना पड़ेगा। और अगर मुझे मेरे ही पास आना हो तो फिर कैसे दौडूंगा और कैसे चलूंगा? और अगर कोई आदमी कहे कि मैं अपने को ही पाने के लिए दौड़ रहा हूं, तो हम उससे कहेंगे, तुम पागल हो, दौड़ने में तुम समय खराब कर रहे हो। दौड़ने से क्या होगा? दौड़ते हैं दूसरे तक पहुंचने के लिए, अपने तक पहुंचने के लिए कोई दौड़ना नहीं होता। फिर? अपने तक पहुंचने के लिए सब दौड़ छोड़ देनी होती है।

क्रिया होती है कुछ पाने के लिए, लेकिन जिसे स्वयं को पाना है उसके लिए कोई क्रिया नहीं होती, सारी क्रिया छोड़ देनी होती है। जो क्रिया छोड़ कर, दौड़ छोड़ कर रुक जाता, ठहर जाता, वह स्वयं को उपलब्ध हो जाता है। और यह स्वयं को उपलब्ध कर लेना सब उपलब्ध कर लेना है। और जो इसे खो देता है वह सब पा ले तो भी उसके पाने का कोई मूल्य नहीं। एक दिन वह पाएगा वह खाली हाथ था और खाली हाथ है।

अज्ञान की स्थिति में सिवाय ध्यान के कोई और मार्ग नहीं है, और ध्यान अज्ञान का कृत्य नहीं है।

उन्होंने यह भी पूछा है कि यदि ध्यान मात्र जागरण है, तो किसके प्रति जागरण?

स्वभावतः हम जीवन में तो हमेशा ऑब्जेक्टिव कांशसनेस को जानते हैं। किसी के प्रति जागरण को जानते हैं। दरख्त को देखते हैं, आदमी को देखते हैं, मकान को देखते हैं, चांद-तारों को देखते हैं। तो कुछ न कुछ हमारी चेतना में ऑब्जेक्ट होता है, कोई विषय होता है, कोई वस्तु होती है। स्वभावतः पूछा है कि ध्यान किसका? जागरण किसके प्रति?

एक बात समझ लेंः जब तक किसी के प्रति आप जागे हैं, तब तक आप संसार में हैं; जब तक कोई ऑब्जेक्ट मौजूद है चेतना में, तब तक आप अपने से बाहर हैं। जिस क्षण चेतना अकेली रह गई और वहां कोई ऑब्जेक्ट, कोई विषय, कोई वस्तु न रही, कोई नाम, कोई शब्द, कोई रूप न रहा, कोई भी न रहा, चेतना अकेली रह गई, कंटेंटलेस, विषय-वस्तु से रहित और शून्य, अकेली, उस क्षण--उस क्षण आप अपने में हैं।

निश्चित ही, अगर हम एक दीया जलाएं तो उस दीये के प्रकाश में आसपास के दरख्त दिखाई पड़ेंगे। लेकिन क्या दरख्तों के दिखाई पड़ने के अतिरिक्त दीये का अपना होना नहीं है? अगर दीये का अपना होना न हो तो दरख्त भी कैसे प्रकाशित होंगे? प्रकाश अलग है उन दरख्तों से जो प्रकाशित हो रहे हैं।

मैं आपको देख रहा हूं, आपसे अलग हूं, मेरे भीतर अपनी चेतना है। अगर इस चेतना के शुद्ध स्वरूप को मुझे अनुभव करना है, तो मुझे अपनी चेतना को सारे विषयों से अलग, शांत और निस्पंद कर लेना होगा। उस घड़ी मैं स्वयं को जानूंगा। जब तक कोई और मौजूद है तब तक मैं उसे जानूंगा।

विज्ञान किसी और को जानता है, धर्म स्वयं को। विज्ञान ऑब्जेक्टिव खोज है--वस्तु की, पदार्थ की, पर की, पराए की, बाहर की। धर्म उसकी खोज है जो स्व है, स्वयं है, भीतर है, वह जो सब्जेक्टिविटी है, वह जो आत्मिकता है, वह जो आंतरिकता है। और दो ही दिशाएं हैं मनुष्य के सामने। भूगोल तो कहती है दस दिशाएं हैं, लेकिन मनुष्य के सामने वस्तुतः दो दिशाएं हैं। दस दिशाओं की बात तो झूठी है। एक दिशा है बाहर की तरफ,

एक दिशा है भीतर की तरफ। और कोई दिशा नहीं है। एक खोज है बाहर की दुनिया में, एक खोज है भीतर की दुनिया में।

बाहर की दुनिया में हम सारे लोग खोजते हैं और जीवन उलझता से उलझता चला जाता है। हम तो समाप्त हो जाते हैं, खोज वहीं की वहीं रह जाती है। क्योंकि एक बुनियादी बात हम भूल गए कि जिस आदमी ने स्वयं को नहीं खोजा है उसकी कोई भी खोज सार्थक नहीं हो सकती। क्योंकि जिसको स्वयं का ही कोई बोध नहीं है उसे और ज्ञान कैसे हो सकता है? जो अपने भीतर अंधेरे से भरा है, सारे जगत में भी रोशनी हो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा, वह जहां जाएगा अपने अंधेरे को साथ ले जाएगा। अंधेरा उसके भीतर है, तो वह जहां भी जाएगा, अंधेरा उसके रास्तों को घेर लेगा।

इसीलिए तो विज्ञान इतनी खोज करता है, लेकिन परिणाम अच्छे नहीं आते हैं। क्योंकि आदमी के भीतर अंधकार है और बाहर विज्ञान बड़ी ताकतें इकट्ठी कर लेता है, वे अज्ञानी आदमी के हाथ में पड़ जाती हैं। उनसे फल शुभ नहीं आता, अशुभ आता है। आदमी को मारने के उपाय निकलते हैं उनसे, हत्या करने के, हिंसा करने के तीव्र उपाय निकलते हैं। निकलेंगे ही। बाहर की कोई खोज सार्थक नहीं है जब तक भीतर आलोकित न हो।

यह जो ध्यान है यह भीतर की तरफ गमन है। क्रमशः उस स्थिति में पहुंच जाना है जहां मैं जान सकूं कि मेरे केंद्र पर, मेरे व्यक्तित्व के बीच मध्य में कौन चेतना बैठी है, क्या है वह? उसका मेरे सामने पूरा उदघाटन हो जाए।

निश्चित ही, वहां तक जाने के लिए सब छोड़ देना होगा। सब छोड़ देने से मेरा मतलब कोई घर-द्वार छोड़ कर भाग जाने से नहीं है। सब छोड़ने से मेरा मतलब कोई मित्र, परिजन, प्रियजन छोड़ कर भाग जाने से नहीं है। सब छोड़ने से मेरा मतलब हैः चेतना को धीरे-धीरे ऑब्जेक्टलेस, वस्तु से रहित, विचार से शून्य और रिक्त करने से है।

भीतर एक भीड़ घिरी है। चौबीस घंटे चेतना किसी न किसी चीज पर अटकी हुई है। उस अटकाव की वजह से वह स्वयं को नहीं जान पाती। अगर कोई अटकाव न रह जाए तो फिर क्या होगा? तब एक ही रास्ता रह जाएगा कि चेतना स्वयं को जाने। चेतना जब तक पर को जानती है तब तक स्वयं को जानने से वंचित हो जाती है। जब वह सब पर से खाली हो जाती है, फिर क्या होगा?

फिर तो एक क्रांति हो जाएगी भीतर, फिर तो एक अभूतपूर्व घटना घट जाएगी। तब यह होगा कि चेतना स्वयं को जानेगी। जानना उसका धर्म है, ज्ञान उसका स्वभाव है। जब तक वह बाहर जानती रहती है, तो भीतर नहीं जान पाती। जब बाहर के जानने से वह थोड़ा विराम लेती है, उपराम होती है, तो स्वयं को जान पाती है।

आत्म-ज्ञान का अर्थ किसी चीज पर ध्यान करना नहीं है, वरन ध्यान से सब चीजों को विदा कर देना है। जब चेतना की धारा शुद्ध रह जाती है और उसमें कोई नहीं रह जाता मौजूद, तब चेतना स्वयं को जानती है, स्वयं से परिचित होती है, स्वयं में प्रतिष्ठित होती है।

मैं समझता हूं मेरी बात खयाल में आई होगी।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

वह ध्यान का अंतर्गमन है। यह जो चेतना का भीतर की तरफ लौटना है, यह जो चेतना का अंतर्गामी पथ है, यही जीवन की वृत्तियों के ट्रांसफार्मेशन का, उनके परिवर्तन का माध्यम है, उपाय है, द्वार है।

कल मैंने आपसे कहा था--कैसे चित्त की जो वृत्तियां हैं वे परिवर्तित हों? क्रोध कैसे क्षमा बन जाए? घृणा कैसे प्रेम बन जाए? हिंसा कैसे करुणा बन जाए? कैसे यह हो?

दो रास्ते हैं। एक रास्ता तो यह है कि भीतर तो क्रोध रहे, ऊपर से हम क्षमा को ओढ़ लें। यह एकदम सरल और आसान रास्ता है। भीतर घृणा रहे, ऊपर से हम प्रेम को ओढ़ लें। वस्त्रों की भांति हम इनको ओढ़ लें। भीतर तो कठोरता रहे, ऊपर से हम करुणा ओढ़ लें। यह कठिन नहीं है। ठीक-ठीक अनुशासन दिया जाए जीवन को, नैतिक शिक्षा दी जाए, संस्कार दिए जाएं, भय दिए जाएं, प्रलोभन दिए जाएं, हो जाता है; इज्जत दी जाए, आदर दिया जाए, हो जाता है। ऊपर से चीजें ओढ़ लेना कठिन नहीं है।

लेकिन जो आदमी ऊपर से ओढ़ने में लग जाता है उसका जीवन नष्ट हो जाता है। क्योंकि भीतर वह वही का वही रहता है। ऊपर सारा ढोंग हो जाता है, भीतर वही का वही होता है। वह जीता नहीं, वह करीब-करीब एक्टिंग में होता है, अभिनय में होता है।

सारा अभिनय है उसका ऊपर। इसे कोई भी सोचेगा तो दिखाई पड़ेगा, कोई भी भीतर थोड़ी खोज करेगा तो समझ में आएगा कि सब धोखा है, वंचना है, डिसेप्शन है। यह मैं क्या? ... जिनके प्रति आपका कोई आदर नहीं होता, उनके सामने हाथ जोड़ कर खड़े हुए हैं। आदर को ओढ़ा हुआ है। जिनके प्रति आपको कोई प्रेम नहीं, उनके साथ प्रेम की गहरी से गहरी बातें कर रहे हैं। सब झूठा है। और अगर इस तरह ओढ़ते चले गए, ओढ़ते चले गए, तो पर्तों में खो जाइएगा, आपको पता ही नहीं रहेगा कि आपकी वास्तविकता क्या थी?

लेकिन अब तक तो सभ्यता ने यही सिखाया है कि अच्छे-अच्छे वस्त्र ओढ़ लो। भीतर कुछ भी हो उसकी फिक्र छोड़ो, बाहर से अच्छे आदमी बन जाओ। आचरण अच्छा हो, आत्मा से हमें क्या लेना-देना है! इस आचरण ने पाखंड पैदा किया है, सारी दुनिया में पाखंडी व्यक्तित्व पैदा हो गए हैं। भीतर कुछ और है, बाहर कुछ और। और तब फिर दुख होगा, क्योंकि खुद के भीतर ही लड़ाई शुरू हो गई, हमारे भीतर ही संघर्ष शुरू हो गया। हमारा बाहर का ही व्यक्तित्व भीतर की आत्मा से चौबीस घंटे लड़ेगा, चौबीस घंटे लड़ेगा। लड़ाई स्वाभाविक है।

यह दमन हुआ, जिसकी मैंने कल आपसे रात बात की, यह सप्रेशन हुआ, भीतर वेग दबा लिए गए। यह ट्रांसफार्मेशन नहीं है, यह परिवर्तन नहीं है, यह जीवन का ऊर्ध्वगमन नहीं है। यह तो जीवन का एक कांफ्लिक्ट में पड़ जाना है, एक द्वंद्व में पड़ जाना है। इसका एक ही परिणाम हो सकता है कि आदमी टूटे और नष्ट हो जाए। और हम सब इसी तरह टूट-टूट कर खंडहर हो गए हैं। लड़ते हैं चौबीस घंटे, खुद के खिलाफ ही लड़ रहे हैं। अपने ही दोनों हाथों को लड़ाइएगा तो कोई जीतेगा फिर? कोई भी नहीं जीतेगा। एक परिणाम होगाः दोनों हाथों के लड़ने में आपकी ही ताकत दोनों तरफ से खर्च होगी। आप ही टूटते चले जाएंगे। आखिर में आप एक खाली खंडहर मात्र रह जाएंगे। बुढ़ापे तक आदमी खंडहर हो जाता है। होना तो उलटा चाहिए। होना तो यह चाहिए कि जीवन भीतर गहरे से गहरा, घने से घना हो जाए, इंटेंस से इंटेंस हो जाए। क्योंकि मतलब यह हुआ कि इतने दिन जीए, तो बच्चा जितना समृद्ध था, बूढ़ा उससे ज्यादा समृद्ध होना चाहिए।

लेकिन दिखता उलटा है। बूढ़े से भी पूछो तो वह कहता है, बचपन में दिन बड़े अच्छे थे। इसका मतलब? बाकी खोए दिन! जिंदगी गई व्यर्थ! बचपन की इतनी प्रशंसा उसी दुनिया में हो रही है जिसमें कि बूढ़े धीरे-धीरे खंडहर होते जाते हैं, तो पीछे की याद आती है कि बचपन बहुत अच्छा था। यह क्या मूर्खता है? अगर बचपन अच्छा था तो जिंदगी उलटी चली। मतलब हम ऊपर नहीं चले, नीचे गिरे। हमने खोया, पाया नहीं।

लेकिन दुनिया भर में कविताएं हैं जो बचपन की तारीफ करती हैं--कि बचपन बड़ा अदभुत था। होना तो यह चाहिए कि बुढ़ापा अदभुत हो। तब तो विकास हुआ, सम्यक विकास हुआ, आगे गए। अगर बचपन अदभुत था तब तो बड़ी मूढ़ता हो गई, यह तो बड़ा पागलपन हो गया कि हम पहली सीढ़ी पर थे तब बहुत अदभुत था, अब ऊपर आ गए तो सब खत्म हो गया। तो यह चढ़ना हुआ या उतरना हुआ? बुढ़ापा चढ़ाव है या उतार है?

आमतौर से उतार है। आमतौर से खोते जाते हैं, खोते जाते हैं। यह तो अजीब बात हो गई। यह तो जिंदगी व्यर्थ हो गई। इससे ज्यादा और फ्यूटिलिटी क्या हो सकती है? और व्यर्थता क्या हो सकती है? और तब फिर बुढ़ापा कुरूप हो जाए, दरिद्र हो जाए, दीन हो जाए, हीन हो जाए, तो आश्चर्य क्या?

नहीं, इसके पीछे कारण वही है कि हम व्यक्तित्व में ओढ़ते हैं। ओढ़ने से सब झूठा होता जाता है। बच्चा ही सच्चा होता है बूढ़े की बजाय। कुछ ओढ़ा हुआ नहीं होता, सीधा और साफ होता है सब। अभी कोई आचरण नहीं होता है उसके ऊपर, अभी जो उसका अंतःकरण होता है वही होता है।

यह अंतःकरण विकसित होना चाहिए। बूढ़े के पास और भी समृद्ध अंतःकरण होना चाहिए, बड़ी गहरी आत्मा होनी चाहिए। तो बुढ़ापे से ज्यादा सुंदर और कुछ भी नहीं है फिर। और बुढ़ापे से ज्यादा आनंदपूर्ण कुछ भी नहीं है फिर। बुढ़ापा तो शिखर है जीवन का। वह तो क्रमशः-क्रमशः, धवल से धवल, शुभ्र से शुभ्र होता जाना चाहिए। लेकिन जीवन की विधि ही गलत है तो क्या होगा? विधि हैः ओढ़ो, ऊपर से ढांको अपने को, ऊपर से थोपते चले जाओ। थोपने का परिणाम तो बुरा होगा। बुरा यह होगा कि भीतर की असलियतें भूल जाएंगी, मिटेंगी थोड़े ही। भीतर की जो वास्तविकता है वह बनी रहेगी और हम अपने को धोखा--अपने को क्या धोखा, दूसरों को धोखा देते रहेंगे।

लेकिन जब मौत करीब आने लगेगी तो वस्त्र काम नहीं देंगे। तब दिखाई पड़ने लगेगा कि यह तो मौत करीब आ गई! और मौत तो सब आचरण छीन लेगी, सिर्फ आत्मा बचेगी। मौत सब वस्त्र छीन लेगी, मौत सब ओढ़ा हुआ छीन लेगी, तब जो बच रहेगा वह फिर घबड़ाने लगता है। मौत से जो डर है वह डर मौत का नहीं है, वह उन सब वस्त्रों के छिन जाने का है जिन्हें हमने जीवन भर सम्हाला और ओढ़ा। नहीं तो जिस आदमी ने जीवन में समृद्धि पाई हो आंतरिक, मौत उसके लिए आनंद की एक घड़ी है। मौत तो उसके लिए आनंद की घड़ी है।

चीन में ऐसा हुआ, च्वांगत्सु एक व्यक्ति था, उसकी पत्नी मर गई। राजा उसे आदर देता था, फकीर था च्वांगत्सु, तो उसके पास गया उसको संवेदना के दो शब्द कहने। जब वह पहुंचा तो वह देख कर हैरान हुआ। च्वांगत्सु एक झाड़ के नीचे बैठ कर खंजड़ी बजा रहा था। सुबह उसकी पत्नी मरी थी। राजा थोड़ा हैरान हुआ, उसने च्वांगत्सु से कहा कि यह तो बर्दाश्त के बाहर है। तुम दुख न मनाते इतना ही काफी था, लेकिन तुम खंजड़ी बजाओ और गीत गाओ। दुख न मनाते उतना ही काफी था, लेकिन तुम यह गीत गाओ और खंजड़ी बजाओ, यह तो कुछ समझ में नहीं आता है।

च्वांगत्सु बोला, जिसको विदा दी है उसने इस विदा से कुछ पाया है, खोया नहीं। तो खुशी मनाऊं कि रोऊं? और फिर जिसके साथ इतने दिन रहा हूं उसे आंसुओं के साथ विदा करना क्या शुभ होगा? उचित है कि मेरे गीत की छाया में ही उसकी विदा हो। उसके आगे के मंगल-पथ पर यही उचित होगा कि मेरे गीत उसके साथ जाएं बजाय मेरे आंसुओं के और मेरे रोने के। और च्वांगत्सु ने कहा, स्मरण रखो, जब मैं मरूं तो जरूर तुम गीत गाना। क्योंकि मैं तो प्रतीक्षा कर रहा हूं उस क्षण की जब मैं विदा होऊंगा, कब मेरी तैयारी पूरी होगी और

कब मैं विदा होऊं। क्योंकि स्कूल से विदाई का वक्त दुख का थोड़े ही होता है। प्रशिक्षण था, पूरा हुआ, विदा आ गई।

जीवन तो एक प्रशिक्षण है, एक बहुत गहरे अर्थों में, बहुत गहरी अनुभूतियों का। जब परिपक्व होकर कोई विदा होता है तो प्रसन्नता से विदा होता है। जब असफल होकर कोई विदा होता है तो दुख से विदा होता है। वह दुख असफलता का है, विदाई का नहीं है। वह जीवन की व्यर्थता का है, अर्थहीनता का है। अगर कहीं कोई सार्थकता पा ली हो तो मृत्यु तो सुख है, मृत्यु तो आनंद है। मृत्यु से ज्यादा बड़ा सखा और मित्र कौन है? लेकिन चूंकि सब गलत है और सब गलत इकट्ठा होता जाता है जीवन भर, एक्युमुलेटेड होता चला जाता है, तो मौत एकदम गलत दिखाई पड़ती है। जीवन भर का गलत मौत के वक्त ही सामने आता है।

अगर जीवन सुंदर रहा हो, शांत रहा हो और आनंद से भरा हुआ रहा हो, तो मृत्यु एक घनी अनुभूति होगी। सारे जीवन का आनंद मृत्यु के समक्ष सामने आ जाएगा। जो हम जीवन में करते हैं वह मृत्यु के साथ हमारे सामने खड़ा हो जाता है। और हम गलत करते हैं। गलत यह करते हैं कि हम थोपते हैं ऊपर से। थोपना परिवर्तन नहीं है।

फिर क्या हो?

तो मेरा पहला निवेदन तो यह है कि क्रोध को बदलने की चिंता न करें, घृणा को बदलने की चिंता न करें। क्योंकि बदलने की चिंता से ही थोपने का उपाय सामने आ जाता है। तो फिर करें क्या?

इतना ही जानें कि जीवन जब बहिर्गामी होता है, चेतना जब बाहर की तरफ बहती है, तो उसके लक्षण हैं--क्रोध, घृणा, हिंसा। ये बहिर्गामी चेतना के अनिवार्य लक्षण हैं। ये चेतना के लक्षण हैं, ये चेतना को बाहर बहाने के कारण नहीं हैं, चेतना को बाहर ले जाने के कारण नहीं हैं। चेतना चूंकि बाहर है इसलिए ये लक्षण प्रकट होते हैं। अगर चेतना भीतर लौटने लगे तो दूसरे लक्षण प्रकट होने शुरू हो जाते हैं। घृणा की जगह प्रेम प्रकट होने लगता है, क्रूरता की जगह करुणा प्रकट होने लगती है। वे भीतर जाती चेतना के लक्षण हैं।

बहिर्गामी चेतना के लक्षण हैं ये सब; अंतर्गामी चेतना के लक्षण दूसरे हैं। वे केवल खबरें हैं कि अब चेतना भीतर जाने लगी है।

इसलिए इसकी बिल्कुल फिक्र छोड़ दें कि क्रोध मिटे। इससे तो केवल इतना संकेत लें कि मेरी चेतना बाहर बहती है इसलिए क्रोध है। इसलिए मैं चेतना को भीतर लाऊं। क्रोध की फिक्र छोड़ दें, क्रोध तो लक्षण है।

एक आदमी बीमार पड़ा है, उसका हाथ गरम है। तो वैद्य उसका हाथ देखता है।

अगर नीमहकीम हो, तो वह कहेगा, हाथ गरम है, जरूर गर्मी के कारण इसको बुखार आ गया है। तो इसको खूब ठंडा करो, पानी में डुबाओ, ठंडा करो, ठंडा करो, सब ठीक हो जाएगा। गर्मी के कारण बुखार आ गया है।

नहीं, बुखार के कारण गर्मी है, गर्मी के कारण बुखार नहीं है। गर्मी तो सूचना है, लक्षण है, इंडिकेशन है। गर्मी बीमारी नहीं है, गर्मी तो मित्र है। अगर बुखार भीतर हो और शरीर की गर्मी न बढ़े तो आदमी मर जाएगा। प्रकृति फौरन खबर देती है कि भीतर बुखार है, भीतर कोई बीमारी है। शरीर पर ताप आ जाता है, ताप खबर देता है, सूचना उसने कर दी--कि मित्र, सम्हल जाओ! भीतर कुछ गड़बड़ है! शरीर को गर्म करके प्रकृति ने खबर भेज दी। यह गर्मी बीमारी नहीं है, यह बीमारी की खबर है, सूचना है। अगर इसका ही इलाज करने लगे तो मरीज मरेगा, बच नहीं सकता। इसका इलाज नहीं करना है, इसको तो समझ लेना है कि ताप बढ़ गया, खबर मिल गई कि भीतर कोई बीमारी है। अब बीमारी दूसरी बात है।

ऐसे ही क्रोध है, काम है, लोभ है, मोह है, ये सूचक हैं, ये सूचनाएं हैं, ये खबर देते हैं कि चेतना बहिर्गामी है। इससे ज्यादा कुछ भी इनका अर्थ नहीं है। चेतना बाहर की तरफ बह रही है, ये इसकी खबर देते हैं। इनसे सचेत हो जाना चाहिए कि मेरी चेतना बाहर की तरफ बह रही है। अगर बहुत क्रोध है, बहुत काम है, तो ये तो मित्र हैं, ये तो सूचक हैं, ये तो खबर दे रहे हैं, ये शत्रु थोड़े ही हैं। इन्होंने तो खबर दी है आपको, आपके ऊपर कृपा की है। अगर ये खबर न देते तो आप डूब ही जाते, आपको पता भी नहीं चलता कि चेतना कहां बह रही है।

मकान पर हम एक पंखी लगा देते हैं पक्षी की। हवा जहां होती है, पंखी वहीं मुड़ जाती है। कोई आदमी पंखी को कस कर बांध दे एक ही तरफ कि हम तो पूरब की तरफ ही हवा चाहते हैं, तो पंखी को पूरब की तरफ कस कर बांध दे। तो इससे क्या पूरब की तरफ हवा हो जाएगी? इससे पंखी भर पूरब की तरफ हो जाएगी, हवा तो पश्चिम की तरफ बहती है तो बहती रहेगी। लेकिन एक खतरा हो जाएगा, अब यह पंखी खबर भी नहीं दे सकेगी कि हवा किस तरफ बह रही है।

तो जो लोग क्रोध को दबा कर बांध देते हैं और ऊपर से क्षमा को ओढ़ लेते हैं उनकी पंखी बंद हो गई, अब वह सूचना भी नहीं देगी कि किस तरफ हवा है। अब वे मरे, अब उपद्रव निश्चित है उनके जीवन में। क्योंकि वह तो सूचक थी, उसका कोई कसूर नहीं था कि वह बताती थी कि पश्चिम को हवा बह रही है। पश्चिम को हवा बहती थी तो पश्चिम को बताती थी, पूरब को बहेगी तो पूरब को बताने लगेगी। उसका तो काम था कि वह बता दे कि हवा कहां बह रही है।

तब चेतना बहिर्गामी होती है तो क्रोध, काम, मोह, लोभ सूचनाएं देते हैं कि सम्हल जाएं, बाहर की तरफ बहे जा रहे हैं। इनको नहीं बदलना है, चेतना की धारा को भीतर ले जाना है। चेतना की धारा जैसे-जैसे भीतर जाएगी, आप पाएंगे कि क्रोध क्षीण हुआ, वैसे-वैसे आप पाएंगे कि काम क्षीण हुआ, वैसे-वैसे आप पाएंगे कि मोह क्षीण हुआ। क्षीण होने लगें तो समझना कि हवाएं पूरब की तरफ बहने लगीं, पंखी घूम रही है। जिस दिन क्षीण हो जाएं, समझ लेना कि हवाएं भीतर पहुंच गई हैं। अब न क्रोध उठता है, न मोह उठता है।

लेकिन अगर दबा लिया तो झूठ हो जाएगा। दबाने से कुछ फर्क नहीं पड़ता। पंखी बांध देने से हवाएं वहां नहीं बहने लगती हैं। हां, हवाएं वहां बहने लगें, पंखी वहां बताने लगती है।

ट्रांसफार्मेशन, परिवर्तन होता है, किया नहीं जाता। आप कर नहीं सकते क्रोध के साथ कुछ भी, आप कर सकते हैं चेतना के साथ कुछ। और जब चेतना परिवर्तित होगी तो क्रोध विलीन हो जाएगा।

लोग कहते हैं, महावीर ने अहिंसा साधी।

मैं कहता हूं, बिल्कुल ही झूठ कहते हैं। महावीर ने आत्मा साधी, अहिंसा आई।

लोग कहते हैं, अहिंसा परम धर्म है।

बिल्कुल झूठी बात कहते हैं। आत्मा परम धर्म है, अहिंसा तो लक्षण है। जो आत्मा को साध लेता है, अहिंसा उसके पीछे चली आती है। कोई भी, कहीं भी साध ले, अहिंसा पीछे चली आएगी, प्रेम पीछे चला आएगा, करुणा पीछे चली आएगी, नाम कुछ भी रख लें। ये तो खबरें हैं! जब किसी आदमी में अहिंसा का प्रकाश होने लगे तो जानना, प्रेम किसी में प्रकट होने लगे तो जानना कि हवाएं भीतर बहने लगी हैं।

लेकिन अगर कोई आदमी जबरदस्ती प्रेम प्रकट करने लगे, तो खतरा हो गया, उसके भीतर असली प्रेम के पैदा होने की संभावना हमेशा के लिए समाप्त हो गई। इसलिए जीवन में चरित्र को ओढ़ने की कोशिश मत करना। जैसे हम सहज हैं उसको जानना और पहचानना। और उसकी पीड़ा को अनुभव करना, उसके दुख को अनुभव करना। क्रोध को बदलना मत, क्रोध के दुख और पीड़ा को अनुभव करना। वह दुख और पीड़ा कहेगी कि

चेतना बाहर बह रही है। वह दुख और पीड़ा तुम्हें राजी करेगी कि भीतर चलो। वह पीड़ा तुम्हें परेशान करेगी कि भीतर आओ।

लेकिन हम होशियार हैं, हम क्रोध को दबाने में लग जाते हैं। और उसका जो मौलिक काम था वह व्यर्थ हो जाता है। वह जो खबर देने की बात थी वह खो जाती है। और तब जीवन धीरे-धीरे नीचे उतरता है, ऊपर नहीं जाता।

ऊर्ध्वगमन के लिए--यह अंतिम बात कहता हूं, फिर कुछ और प्रश्न हैं वे रात लूंगा--ऊर्ध्वगमन के लिए अंतर्गमन मार्ग है। ऊर्ध्वगमन के लिए अंतर्गमन मार्ग है, ऊपर जाने के लिए भीतर जाना मार्ग है। नीचे जाने के लिए बाहर जाना मार्ग है। नीचे अगर जा रहे हैं तो नीचे से सीधे ऊपर नहीं जा सकते हैं। नीचे जा रहे हैं, यह इस बात की खबर है कि बाहर चेतना जा रही है। जो चेतना बाहर जाती है वह नीचे की तरफ जाती है। वह पानी की तरह है बाहर की तरफ जाने वाली चेतना, वह नीचे उतरती है। जो चेतना भीतर की तरफ जाती है वह ऊपर की तरफ जाती है, वह आग की तरह है, जैसे अग्नि की लपटें ऊपर की तरफ उठती हैं। इसलिए अग्नि जो है वह प्रतीक है ऊर्ध्वगमन का और जल जो है वह प्रतीक है अधोगमन का, नीचे जाने का। बाहर जाने वाली चेतना नीचे जाती है, भीतर जाने वाली चेतना ऊपर जाती है। ऊपर जाना है तो नीचे से ऊपर जाने का सीधा कोई रास्ता नहीं है। ऊपर जाना है तो बाहर से भीतर जाना पड़ता है।

इस सूत्र पर थोड़ा विचार करेंगे तो खयाल में आ सकेगा।

मेरी बातों को इतनी शांति से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।

सातवां प्रवचन

शास्त्र, धर्म और मंदिर

किसी ने पूछा है कि मैं कहता हूंः शास्त्र-ग्रंथ और धर्म-मंदिर व्यर्थ हैं। यह कैसे? शास्त्र-ग्रंथों से तो तत्व का ज्ञान मिलता है और मंदिर की भगवान की मूर्ति देख कर सम्यक दर्शन की प्राप्ति होती है।

संभवतः मैंने जो इतनी बातें कहीं, जिन्होंने भी पूछा है उन्हें सुनाई नहीं पड़ी होंगी।

मैंने यह कहा कि पदार्थ का ज्ञान बाहर से मिल सकता है, क्योंकि पदार्थ बाहर है। जो बाहर है उसका ज्ञान बाहर से मिल सकता है। कोई आत्म-ज्ञान से गणित और इंजीनियरिंग और केमिस्ट्री और फिजिक्स का ज्ञान नहीं हो जाएगा और न ही भूगोल के रहस्यों का पता चल जाएगा। जो बाहर है उसे बाहर खोजना होगा।

विज्ञान उस काम को करता है, इसलिए विज्ञान के शास्त्र होते हैं। विज्ञान एक शास्त्र है। विज्ञान के शास्त्र होते हैं, बिना शास्त्रों के विज्ञान का कोई ज्ञान नहीं हो सकता। केमिस्ट्री सीखनी हो, फिजिक्स या गणित सीखना हो, तो शास्त्र से सीखना पड़ेगा। क्योंकि विज्ञान के विषय भी बाहर हैं और उसका ज्ञान भी बाहर है।

इसलिए अगर मैं ठीक से कहूं तो विज्ञान के ज्ञान को मैं ज्ञान ही नहीं कहता हूं, वह इनफार्मेशन है; वह सूचना है, नॉलेज नहीं है। विज्ञान इनफार्मेशन है, सूचनाएं है। सूचनाएं बाहर से मिल सकती हैं।

धर्म सूचना नहीं है, अनुभव है, अनुभूति है। अनुभूति बाहर से नहीं मिल सकती। कोई प्रेम के संबंध में कितने ही शास्त्र पढ़े, क्या प्रेम का उसे ज्ञान हो जाएगा? क्या यह संभव है कि प्रेम का उसे ज्ञान हो जाए? सौंदर्य के संबंध में कोई कितने ही शास्त्र पढ़े, क्या उसे सौंदर्य का ज्ञान हो जाएगा? नहीं, संभावना इसी बात की है कि सौंदर्य का जो थोड़ा सा बोध भी होगा, शास्त्र पढ़ने पर वह भी नष्ट हो जाएगा। प्रेम की अगर थोड़ी सी कोई किरण दिखाई भी पड़ती होगी, तो शब्दों में वह भी भटक जाएगी।

रवींद्रनाथ ने अपना एक संस्मरण लिखा है। लिखा है कि मैं क्रोशे के एक ग्रंथ को पढ़ता था, एस्थेटिक्स पर, सौंदर्यशास्त्र पर। अदभुत ग्रंथ है। सौंदर्य क्या है, इसी पर सारी चर्चा और विचार है। रात देर तक वे पढ़ते रहे, पढ़ते रहे, फिर थक गए। और उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि शास्त्र जब नहीं पढ़ा था, यह सौंदर्यशास्त्र, तो थोड़ा-बहुत सौंदर्य का पता भी था, अब तो वह भी गड़बड़ हो गया। अब तो कोई पूछे सौंदर्य क्या है, तो कठिन हो गई बात।

जी ई मूर नाम के एक विचारक ने एक किताब लिखी है नीतिशास्त्र पर। दो-ढाई सौ पृष्ठों की किताब पढ़ने के बाद यह बताना कठिन है कि शुभ क्या है? गुड क्या है? नीति क्या है? सब गड़बड़ा जाता है।

रवींद्रनाथ तो हैरान हो गए, उन्होंने दीया बुझा दिया, शास्त्र बंद किया। थक गए थे, खिड़की पर जाकर खड़े हो गए। ऊपर चांद था, आकाश में थोड़ी सी बदलियां तैर रही थीं। वे हैरान हुए कि मैं कैसा पागल हूं, सौंदर्य बाहर खड़ा है द्वार के और मैं शास्त्र पढ़ रहा हूं! और जितनी देर मैं शास्त्र में अटका रहा, उतनी देर बाहर जो सौंदर्य था उससे वंचित हो गया।

जीवन की जो अनुभूतियां हैं उन्हें बाहर से पाने का उपाय नहीं है, उन्हें भीतर से जगाना पड़ता है। भीतर से वे जगें, यह दृष्टि में आ जाए, इसलिए मैंने कहा कि शास्त्र आत्म-ज्ञान को या सत्य के ज्ञान को नहीं दे सकते हैं। और अगर किसी को यह भ्रम हो कि वे देते हैं, तो जितने पंडित हुए हैं, जो शास्त्रों की बाल की खाल निकालते

रहते हैं, उन सबको आत्म-ज्ञान कभी का प्राप्त हो गया होगा। तब तो फिर बड़ी आसान बात है। विद्यालय हैं, सिखाया जाता है धर्मशास्त्र, लोग सीख लेते हैं, आत्म-ज्ञानी हो जाएंगे। आखिर शास्त्र तो सभी पढ़ सकते हैं, कठिनाई क्या है? फिर आत्म-ज्ञान हो क्यों नहीं जाता? शास्त्र तो सभी पढ़ते हैं, फिर आत्म-ज्ञान क्यों नहीं हो जाता?

बड़ा मजा यह है--शास्त्र पढ़ने के कारण उन्हें झूठे ज्ञान का बोध हो जाता है, जिसका मैंने पहले दिन आपसे विचार किया। वह झूठा ज्ञान उनके वास्तविक ज्ञान की प्यास में बाधा हो जाता है। और फिर इन शास्त्रों में कौन सत्य है, यह आप कैसे जानते हैं?

मुसलमान घर में पैदा हुए हैं तो मुसलमान शास्त्र सत्य है और जैन घर में पैदा हुए हैं तो जैनशास्त्र और हिंदू घर में पैदा हुए हैं तो हिंदूशास्त्र। पैदा होना ही सच्चे होने का सुबूत है! और पैदा होने से क्या फर्क पड़ता है? एक जैन बच्चे को मुसलमान के घर में रखो, एक मुसलमान बच्चे को ईसाई के घर में रखो, वह ईसाई हो जाएगा, मुसलमान घर में बच्चा मुसलमान हो जाएगा, जैन घर में बच्चा जैन हो जाएगा। यह तो प्रोपेगेंडा है जन्म के बाद, यह तो प्रचार है बच्चे के आसपास कि यही शास्त्र सत्य है, तो वह वही दोहराने लगता है बड़े होकर कि यही शास्त्र सत्य है।

यह बुद्धि का लक्षण थोड़े ही है, यह तो अबुद्धि का लक्षण है। यह तो कोई भी चीज बार-बार दोहराई जाए तो उसे सत्य मालूम होने लगती है।

अडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि किसी भी असत्य को बार-बार दोहराया जाए, वह थोड़े दिनों में सत्य हो जाता है। और यह ठीक लिखा है। सत्य होने का और मतलब ही क्या है आमतौर से? किसी बात को खूब प्रचारित किया जाए, खूब प्रचारित किया जाए, तो सत्य मालूम होने लगती है।

लेकिन यह कोई सत्य थोड़े ही है। सत्य का प्रचार से तो पता ही नहीं चल सकता। बल्कि सब प्रचार जब मन से हटा दिए जाएं, सब पक्षपात छोड़ दिए जाएं...

शास्त्र क्या हैं? पक्षपात हैं। जैन का अपना पक्षपात है, हिंदू का अपना, मुसलमान का अपना। सबकी अपनी प्रिज्युडिस है, वही उनका शास्त्र है। उसी को पकड़े बैठे हैं, उसी को...

जब तक आप किसी धारणा को सत्य के संबंध में पकड़ कर बैठ जाते हैं तो फिर सत्य को कैसे जानिएगा? सत्य को जानने के लिए सब धारणाएं छोड़ कर, मन को निष्पक्ष, खाली और शांत करके जाना होगा, तब तो सत्य जाना जा सकता है। जो जैसा है वह जाना जा सकता है, अगर हम अपनी कोई धारणा वहां न ले जाएं। लेकिन अगर हम अपनी कोई धारणा ले जाएं, तो मनुष्य की मन की कल्पना की शक्ति बहुत प्रखर है, वह जो भी कल्पना करे उसी को देख सकता है, उसमें कोई कठिनाई नहीं है।

अगर एक हिंदू भक्त को एक कमरे में बंद कर दिया जाए, तो वह रात को कृष्ण को देखता रहेगा। वहीं राम का भक्त बंद कर दिया जाए, तो रात को धनुर्धारी राम को देखता रहेगा। वहीं एक क्रिश्चियन को बंद कर दिया जाए, तो वह सूली पर लटके हुए क्राइस्ट के दर्शन करता रहेगा। और तीनों में से किसी दूसरे को दूसरे का भगवान बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ेगा उस कमरे में। और वे तीनों लड़ते रहेंगे कि हमारा सच्चा है, क्योंकि हमारा दिखाई पड़ रहा है। दूसरा भी यह कहेगा, हमारा सच्चा है, हमको तो अनुभव हो रहा है।

ये सब कल्पनाओं के प्रक्षेपण हैं, ये इमेजिनेशन हैं। ये कोई सत्य के अनुभव नहीं हैं। और मनुष्य की कल्पना अदभुत है। कल्पना से कुछ भी अनुभव किया जा सकता है, वह सत्य नहीं होगा। जहां सारी कल्पना शांत हो जाती है और कोई अनुभव होता है, वही सत्य है। बहुत सी कल्पनाएं हम अनुभव कर सकते हैं। कवि हैं,

भक्त हैं, बहुत सी कल्पनाएं हैं, उनको अनुभव कर लेते हैं। वे कोई सत्य नहीं हैं। लेकिन उन्हें प्रतीत होगा कि यह सत्य है। और वही प्रतीति उनके लिए खतरा हो जाती है।

कल्पना से बचना हो तो सबसे पहले तो पक्षपाती मन नहीं चाहिए। सारा पक्षपात मन से छोड़ देना जरूरी है।

यह मैं नहीं कह रहा हूं कि शास्त्र असत्य है किसी का। मैं यह कह रहा हूं कि शास्त्र को पकड़ने वाला मन असत्य है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि महावीर ने जो कहा, बुद्ध ने जो कहा, कृष्ण ने जो कहा, क्राइस्ट ने जो कहा, वह असत्य है। इससे मुझे क्या लेना-देना? नहीं, उनको जो पकड़ लेता है वह असत्य में स्थापित हो जाता है, वह पक्षपात से भर जाता है। अगर सच में ही वही जानना है जो महावीर ने कहा है तो महावीर की वाणी से मुक्त हो जाओ, तो किसी दिन उसी अनुभव की उपलब्धि होगी जो महावीर को हुई थी। महावीर कौन सा शास्त्र लेकर जंगल गए थे, इसकी कोई खबर है? कौन से शास्त्र लेकर वे जंगल गए थे? कौन सी पोथियां अपने सिर पर ले गए थे रख कर? या बुद्ध कौन सा बस्ता ले गए थे जिसमें अपनी किताबें साथ ले गए हों, जब वे जंगल गए थे? या क्राइस्ट जब अकेले पहाड़ पर थे या मोहम्मद जब अकेले पहाड़ पर थे तो कौन सा शास्त्र ले गए थे कुछ पता है?

किसी शास्त्र को नहीं ले गए थे। शास्त्र तो छोड़ गए थे पीछे। सब तरह खाली होकर वहां गए थे। मन में जो और कचरा रह गया होगा उसको भी वहां जाकर खाली कर दिया था। मन जब बिल्कुल शून्य और शांत हो गया था, उसमें कोई विचार, कोई धारणा, कोई सिद्धांत नहीं रह गए थे, कोई शास्त्र नहीं रह गया था, उस निर्विचार, निर्विकल्प, उस शांत चित्त स्थिति में सत्य को उन्होंने जाना था। जब भी किसी ने सत्य को जाना है तो सब शब्दों से मुक्त होकर जाना है। और आप कहते हैं, शास्त्र में सत्य है। तो उसका मतलब क्या होगा? उसका मतलब होगाः शब्द को पकड़ लो, शास्त्र को मस्तिष्क में भर लो। फिर तो मस्तिष्क में कचरा इकट्ठा हो जाएगा, भीड़ इकट्ठी हो जाएगी शब्दों की, फिर सत्य को कैसे जानिएगा?

नहीं, शास्त्र सत्य तक कभी किसी को ले नहीं गए हैं। हां, सिद्धांत तक ले जाते हैं, मत तक ले जाते हैं, ओपीनियन तक ले जाते हैं, विवाद पर ले जाते हैं, वाद पर ले जाते हैं, इज्म पर ले जाते हैं, सत्य पर नहीं ले जाते। ले ही नहीं जा सकते, क्योंकि सत्य है भीतर और शास्त्र है बाहर। बाहर से भीतर लाना पड़ेगा शास्त्र को और सत्य को लाना है तो भीतर से बाहर लाना पड़ेगा।

जैसा मैं अक्सर कहता हूं कि कोई चाहे तो अपने घर में एक हौज बना कर पानी भर ले, तो हौज में पानी बाहर से लाना पड़ता है। और कोई चाहे तो गड्ढा खोदे, जमीन खोदे, पत्थर-मिट्टी बाहर निकाले, फिर कुआं बन जाता है, फिर पानी भीतर से आता है। हौज का पानी पराया पानी है। जिंदा पानी नहीं है, मुर्दा पानी है, थोड़े दिन में सड़ जाएगा। उसके मूलस्रोत से कोई संबंध नहीं हैं, उधार है, थोड़े दिन में उस पर मच्छर और कीड़े इकट्ठे होंगे और गंदगी हो जाएगी।

पंडित का मस्तिष्क भी ऐसे ही उधार होता है, इसीलिए तो गंदा हो जाता है। इसलिए दुनिया में पंडितों ने जितने उपद्रव किए हैं, बड़े से बड़े पापियों ने नहीं किए हैं और न करवाए हैं। यह कौन लड़ाता है मस्जिद और मंदिर को? यह कौन लड़ाता है हिंदू और जैन को, मुसलमान और ईसाई को, मुसलमान और हिंदू को? कौन लड़ाता है? पंडित! ये सब पंडित के मस्तिष्क से निकले हुए फितूर हैं।

शैतान ने बहुत दिन पहले ही पंडितों को राजी कर लिया है। और उसने बड़ी होशियारी की, अपने पंडितों को भगवान का पुजारी बना दिया है। इसलिए मामला बहुत आसानी से चल रहा है शैतान का, क्योंकि पहचान

में ही नहीं आता। मंदिर तो भगवान का है, पुजारी शैतान के हैं। और जब तक दुनिया पुजारियों से मुक्त नहीं होगी, दुनिया में धर्म नहीं हो सकता। क्योंकि पुजारी धर्म की हत्या करते रहे हैं। वे शास्त्र के तो समर्थक हैं, सत्य के वे समर्थक नहीं हैं। क्योंकि सत्य आएगा तो न मंदिर टिक सकते हैं, न मस्जिद, न यह पूजा, न यह धंधा, न यह सब पाखंड, यह कुछ भी नहीं टिक सकता, दुनिया बहुत और तरह की होगी। इसलिए वे कहेंगे कि शास्त्र में सब कुछ है, शास्त्र ही सत्य है। और फिर इसको प्रचारित करते हैं, प्रचारित करते हैं, तो छोटे-छोटे बच्चों के मस्तिष्क में बिठाल देते हैं, वे भी उसको दोहराने लगते हैं।

दोहराना जो है एक तरह की कंडीशनिंग है। छोटे से बच्चे को कुछ भी सिखाइए, तो वह सीख जाता है। सीख जाता है, उसी को दोहराने लगता है। उसको सिखा दीजिए कि ईश्वर है, तो वह कहने लगता है ईश्वर है। उसको सिखा दीजिए कि ईश्वर नहीं है, तो वह कहने लगता है ईश्वर नहीं है। लेकिन यह कोई ज्ञान है? वहां रूस में वे सिखाते हैं कि कोई ईश्वर नहीं है, कोई आत्मा नहीं। वहां के बच्चे यही कहते हैं कि कोई आत्मा नहीं, कोई ईश्वर नहीं। उनको ज्ञान हो गया?

आपको ज्ञान हो गया है? आपको सिखाया गया हैः ईश्वर है, आत्मा है, फलां है, ढिकां है। आप भी उसको ही दोहराए चले जा रहे हैं। दोहराने वाली बुद्धि कोई प्रतिभा नहीं है, जड़ता का लक्षण है, ईडियाटिक है। दोहराने वाली बुद्धि, जो सिखा दिया उसको दोहराए चले जा रहे हैं। इनकार करिए उससे, तो कुछ खोज होगी। उसको अस्वीकार करिए कि मैं क्यों दोहराऊं? मैं कोई मशीन हूं जो दूसरों को दोहराऊं? जो मुझे सिखा दिया गया उसको मैं रिपीट करता रहूं? मैं उसको इनकार करता हूं। मैं अपनी खोज करूंगा। मैं अपने जीवन को लेकर आया हूं, तो मैं अपने जीवन के अर्थ खोजूंगा। कौन मुझे सिखाने को है? किसको हक है इस बात को सिखाने का?

लेकिन हम सिखा देते हैं। सीख लेता है मन और दोहराने लगता है। बड़ी खूबियां हैं, तरकीबें हैं। जब हम कुछ बात सिखा देते हैं तो वह स्मृति में बैठ जाती है, मेमोरी का हिस्सा हो जाती है। फिर जब जिंदगी में प्रश्न आते हैं तो मेमोरी से उत्तर आ जाते हैं, हम समझते हैं कि ये उत्तर असली हैं।

ये उत्तर नकली हैं!

एक जगह मैं गया, वहां बच्चों को वे धर्म-शिक्षा देते हैं, तो उन्होंने सिखा दिया है कि आत्मा है, ईश्वर है। मैंने उनसे पूछा, ईश्वर है?

उन्होंने सबने हाथ हिलाया कि हां, ईश्वर है।

कहां है?

उन्होंने कहा, ऊपर है।

आत्मा है?

उन्होंने कहा, है।

मैंने पूछा, कहां है?

उन्होंने कहा कि यहां भीतर है।

तो मैंने एक बच्चे से पूछा, हृदय कहां है?

उसने कहा, यह तो हमें बताया नहीं। यह तो हमें बताया ही नहीं गया, यह तो हमारा पाठ ही नहीं है।

यह बच्चे को सिखा दिया--आत्मा कहां है। सीख गया बच्चा। रोज-रोज दोहराया, परीक्षा दिलवाई, पुरस्कार दिए, मिठाई खिलाई, वह सीखता गया। वह सीख गया। जब बूढ़ा हो जाएगा तब तक भी इसी

सिखावन को दोहराता रहेगा। जब भी जिंदगी में सवाल उठेगा--आत्मा है? उसका हाथ मशीन की तरह इधर चला जाएगा और कहेगा, हां, यहां आत्मा है। यह मूर्खता हो गई, यह तो जड़ता हो गई।

पावलफ हुआ एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक, उसने कंडीशनिंग पर बहुत से प्रयोग किए। कैसे चित्त संस्कारित हो जाता है और सब गड़बड़ हो जाता है।

कुत्ते को वह रोटी खिलाता था। तो रोटी रखते से ही कुत्ता लार टपकाने लगता था। तो वह रोटी देने के साथ-साथ रोज घंटी भी बजाता था। रोटी देता, कुत्ते को रोटी रखता, तो कुत्ते की लार टपकने लगती, साथ में घंटी भी बजती। पंद्रह दिन तक यही क्रम थाः घंटी बजती, रोटी देता। सोलहवें दिन रोटी तो नहीं दी, घंटी बजाई। लेकिन घंटी बजते से ही कुत्ते की जीभ से लार टपकने लगी।

अब घंटी से लार का कोई संबंध नहीं है। घंटी से लार का कोई भी संबंध नहीं है। किसी कुत्ते के सामने घंटी बजाइए तो क्या लार टपकेगी? नहीं टपकेगी। लेकिन उसको सिखा दिया गया। पंद्रह दिन में रोटी के साथ लार टपकती थी, रोटी के साथ घंटी बजती थी, तीनों चीजें संयुक्त हो गईं। सोलहवें दिन घंटी बजाई, तो रोटी तो वहां नहीं थी, लेकिन लार टपकने लगी। यह शिक्षा हुई। सब शिक्षा इसी तरह की है। अब यह कुत्ता धोखे में पड़ गया। अब इसको समझ में नहीं पड़ रहा कि यह लार क्यों टपक रही है? लेकिन लार टपकने लगी।

आप जब मंदिर के सामने से निकलते हैं और ऐसा हाथ जोड़ लेते हैं, तो आपको पता नहीं, यह भी लार टपकने से भिन्न नहीं है। घंटी पर लार टपक रही है। यह आपको सिखा दिया गया है कि यह मंदिर है, यहां भगवानजी रहते हैं--बचपन से ही--इधर हाथ जोड़ो! पिता ने भी जोड़ा, मां ने भी जोड़ा। आपको भी लगा कि जब मां-बाप, चूंकि बड़े मालूम होते हैं छोटे से बच्चे को कि बहुत महान हैं, बहुत ज्ञानी हैं, बहुत समझदार, बड़े शक्तिशाली, क्योंकि उसके कान उमेठते हैं, चांटा मारते हैं। उनको बड़े शक्तिशाली मानता है वह। जब ये हाथ जोड़ रहे हैं, वह भी हाथ जोड़ता है। नहीं जोड़ता तो एक चांटा भी पड़ता है, शिक्षा भी पड़ती है। जोड़ता है तो तारीफ होती है कि बच्चा हमारा बहुत अच्छा है, अभी से बड़ा धार्मिक है, मंदिर जाता है, प्रशंसा होती है। बस लार के साथ घंटी जुड़ने लगी। वह बड़ा हो जाएगा, मंदिर के सामने से निकलेगा, हाथ जुड़ जाएंगे।

यह कुछ भी नहीं है। यह सिखा दिया गया स्मृति को, इससे जड़ता पैदा हो गई, इससे कोई बोध पैदा नहीं हुआ। जिस दिन होश आ जाए, उसे इस तरह की सब कंडीशनिंग से इनकार कर देना चाहिए।

मुझे एक सज्जन मिले। वे बोले, मैं क्या करूं, मैं नहीं भी जोड़ना चाहूं तो मंदिर के सामने से अगर बिना जोड़े निकल जाऊं तो मुझे डर लगता है कि कोई हानि न हो जाए! तो ऐसा हो जाता है कि मैं...

मेरी बात उन्होंने एक दिन मान ली और मंदिर से बिना हाथ जोड़े निकल गए होंगे। शाम को ही आए, बोले, मैं तो बहुत घबड़ा रहा हूं कि पता नहीं क्या होगा, क्या नहीं होगा! आज मैं बिना ही हाथ जोड़े निकल गया।

तो मैंने कहा, इससे तो बेहतर था तुम जोड़ ही लेते। अब यह तो और ज्यादा परेशानी हो गई। इसका मतलब तुम दिन भर हाथ जोड़ते रहे।

यह जड़ता हो गई। अब चित्त भय खाने लगा कि कहीं नहीं जोड़े तो भगवान नाराज न हो जाएं। जब भगवान खुश होते हैं तो नाराज भी होते ही होंगे। जब स्तुति से प्रसन्न होते हैं तो निंदा से नाराज भी होते होंगे। तो घबड़ाहट आदमी को स्वाभाविक है। ये सब भगवान भूत की तरह आदमी के पीछे पड़े हुए हैं भय के कारण। यह कोई आपकी अनुभूति नहीं है, यह आपकी कोई समझ नहीं है, यह कोई अंडरस्टैंडिंग नहीं है, यह आपने कहीं

जाना नहीं है। बस ये तो भय की वजह से आपके पीछे लग गए हैं और आपका पीछा कर रहे हैं। वैसे ही आदमी के पीछे बहुत भूत लगे हैं और भगवान लगे हुए हैं। कई तरह की मुसीबतें उसके पीछे लगी हैं, वह उनको पाले हुए है, पाले हुए है... और फिर शांत होना चाहता है, फिर सत्य को जानना चाहता है। कैसे होगा यह? इतने भयभीत लोग कुछ भी नहीं जान सकते। थोड़ी सी फियरलेसनेस चाहिए, थोड़ा साहस चाहिए। थोड़ा तोड़ना चाहिए, देखना चाहिए कि जड़ता क्या है? मगर नहीं, दिखाई नहीं पड़ता।

अभी उसमें लिखा है कि मूर्ति के दर्शन करने से भगवान का सम्यक ज्ञान हो जाता है।

हुआ? मूर्तियां तो बहुत हैं। हुआ दर्शन करने से सम्यक ज्ञान?

और यह भगवान की ही मूर्ति है, यह कैसे पता चल गया? क्योंकि वही मूर्ति, एक दूसरा आपका पड़ोसी है वह कहता है, भगवान-वगवान की नहीं है। उसको तो लगता है कि इसको तोड़ दें तो धर्म होता है। तो फिर? उसी मूर्ति को एक आदमी तोड़ दे तो वह सोचता है कि जन्नत मिलेगी, स्वर्ग मिलेगा। और एक आदमी उसी के दर्शन किए खड़ा है और सोच रहा है कि सम्यक ज्ञान हो जाएगा इनके दर्शन से। और कारीगर जिसने मूर्ति बनाई है, वह जानता है कि पत्थर है और हमने खोदा है और पैसे लिए हैं। लेकिन आपको खयाल नहीं आ सकता है, क्योंकि वर्षों की शिक्षा है पीछे इस बात की कि ये भगवान हैं। कौन अब इसमें झंझट करे! जो इसको कहेगा कि मुझे शक होता है, वही नासमझ समझा जाएगा।

एक दफा ऐसा हुआ कि एक राजा के दरबार में एक बहुत खुशामदी आदमी था, बहुत स्तुतिकार था। और सभी राजाओं के दरबारों में रहे हैं। तो वह कुछ भी राजा को समझाता रहता था और पैसे लेता रहता था। एक दिन उसने कहा कि महाराज, आपके पास जो ये वस्त्र हैं, ये आप जैसे सम्राट के योग्य नहीं। मैं इंद्र की पोशाक आपके लिए ला सकता हूं।

तो राजा ने कहा, यह तो बिल्कुल ही ठीक है। कितना खर्च होगा?

उसने कहा कि पांच हजार रुपये तो खर्च होगा। पांच हजार रुपये लाने ले जाने में, क्योंकि दो लोक तक जाना।

तो कौन जाएगा?

उसने कहा, इसकी आप फिक्र न करें, मैंने एक आदमी खोज लिया है जो जाता है चमत्कार के बल से। तो पांच हजार आने-जाने का खर्च होगा, पांच हजार वस्त्रों के दाम हो जाएंगे।

राजा ने कहा, ये दस हजार रुपये लो। क्योंकि मैं इतना छोटा सम्राट तो नहीं कि साधारण कपड़े पहनूं, मुझे इंद्र की पोशाक चाहिए।

और दरबारियों ने कहा कि यह बिल्कुल निपट गंवारी की बात है, यह कभी सुना नहीं गया, इंद्र की पोशाक! लेकिन अब क्या कहते, ठीक है, अब अगर यह आदमी कहता है तो। उसने कहा, पंद्रह दिन बाद मैं हाजिर हो जाऊंगा। पंद्रह दिन बाद वह आया और बोला, बहुत मुश्किल है, वहां भी रिश्वत चलने लगी। वे पांच हजार में देने को राजी नहीं होते। दस हजार लग जाएंगे।

और खबर तो पहुंच ही गई होगी रिश्वत की, वे कोई नासमझ तो नहीं हैं देवता, कि इधर आदमी इतना मजा कर रहा है और वे वहां नासमझी करते रहें, वे भी रिश्वत लेने लगे होंगे। तो राजा को भी जंचा कि गलती तो कुछ है नहीं, जब यहां रिश्वत चलती है तो वहां भी चलती होगी। तो उसने पांच हजार और दिए। कितने दिन लगेंगे?

उसने कहा, और पंद्रह दिन लग जाएंगे।

दरबारी तो समझते ही थे कि यह धोखा देगा। यह फिर गड़बड़ कर रहा है। पता नहीं बाद में कहने लगे कि वह आदमी लौटा ही नहीं, मर गया या क्या हुआ। लेकिन अब क्या कह सकते थे?

लेकिन पंद्रह दिन बाद हैरान हुए, जब वह पेटी ही लेकर आ गया तो सब हैरान हुए। जब वह पेटी ही लेकर दरबार में आ गया तो सब हैरान हुए कि यह तो ले ही आया। उसने आकर ताला खोला और उसने कहा कि एक शर्त फकीर ने बतलाई है इस पोशाक के साथ। क्योंकि यह देवलोक की पोशाक है, यह पृथ्वी पर सभी को दिखाई नहीं पड़ेगी, यह सिर्फ उन लोगों को ही दिखाई पड़ेगी जो अपने ही बाप से पैदा हुए हों। क्योंकि यह तो देवलोक की पोशाक है, सबको दिखाई नहीं पड़ सकती है।

राजा ने कहा, यह तो बात ठीक ही है, देवलोक की पोशाक! पार्थिव जगत! सबको कैसे दिखाई पड़ेगी यह? ये तो अदृश्य वस्त्र हैं! लेकिन हां, उनको दिखाई पड़ेगी जो अपने ही बाप से पैदा हुए हैं।

राजा से उसने कहा कि अब मैं निकालता हूं वस्त्र, आप अपने वस्त्र निकालें।

राजा ने अपना कोट निकाला, उसने वहां से ऐसे हाथ किया और कहा, यह कोट लीजिए।

वह किसी को दिखाई तो पड़ा नहीं। कुछ था भी नहीं तो दिखाई क्या पड़ता। राजा ने भी कहा कि अगर मैं यह कहूं कि मुझे दिखाई नहीं पड़ता तो व्यर्थ ही गड़बड़ हो जाएगी, लोग समझेंगे कि इनके बाप गड़बड़ रहे। दरबारियों ने भी कहा कि अब कौन इस झंझट में पड़े। किसी को दिखाई नहीं पड़ रहा, लेकिन सब कहने लगे कि वाह-वाह, कितना सुंदर कोट है!

राजा ने पहना, वह डरा बहुत, क्योंकि कोट उतर गया उसका, वह उघाड़ा हो गया, और कोट जो पहना वह तो दिखाई पड़ता नहीं था। लेकिन जब सब दरबारी कहने लगे कि बहुत सुंदर, अदभुत, ऐसा तो कभी देखा नहीं! तो उसने भी सोचा कि अब मैं ही गलती क्यों करूं खुद कह कर। जब इन सबको दिखाई पड़ रहा है तो जरूर मेरे बाप में कुछ गलती, गड़बड़ रही है, नहीं तो इन सबको कैसे...

बाकी ने भी यही सोचा। स्वाभाविक था, सीधा लाजिकल है, सीधा तर्क है। सबको यह लगा कि जब सबको दिखाई पड़ रहा है तो मैं व्यर्थ ही झंझट में पड़ जाऊं और अपनी बदनामी करवाऊं, क्या फायदा! मुझे तो दिखाई नहीं पड़ रहा, लेकिन कहूं कैसे?

उसने धीरे-धीरे वस्त्र सब उतरवा लिए, राजा बिल्कुल नंगा हो गया और एक-एक झूठे वस्त्र दे दिए, वे राजा ने पहन लिए। अब उसे बड़ी घबड़ाहट हुई। सारे गांव में खबर पहुंच गई कि राजा नंगा हो गया है, लेकिन दरबारी सब कहते हैं कि कपड़े पहने हुए है।

राजा का जुलूस निकला। अब सड़कों पर भीड़ है, लोग खड़े हैं, देख रहे हैं कि राजा नंगा है, लेकिन कौन कहे? यह कौन कहे कि यह नंगा है, क्योंकि जो यह कहे वह फजीहत में पड़ जाए, वह मुसीबत में पड़ जाए। सब लोग कहने लगेंः वाह! तुम्हारे पिता जरूर तुम्हारे पिता नहीं रहे, गड़बड़ है कुछ मामला। पूरी बस्ती में घूम आया। एक छोटा सा बच्चा बीच में आया और वह बोला कि मैं बड़ा हैरान हूं, यह राजा तो बिल्कुल नंगा है!

लोगों ने कहा कि चुप, यह कहना मत।

वह लड़का बोला, लेकिन हद्द हो गई, ये सब लोग देख रहे हैं राजा नंगा है!

उसने कहा, दुनिया देख रही हो, तू मत बोल, उसके बाप ने कहा। तुझे बोलने की जरूरत नहीं है, तू शांत रह।

यह कथा हंसने जैसी नहीं है, करीब-करीब जिंदगी में ऐसा ही हो गया है, धर्म का मामला करीब-करीब ऐसा ही हो गया है। पत्थर की मूर्तियां रखी हैं कि ये भगवान हैं। और सब कह रहे हैं कि हां। अगर कोई बच्चा कभी कहे तो उसको हम डांट देंगे--चुप! तू झंझट में क्यों पड़ता है?

फिर ये रामचंद्रजी खड़े हुए हैं, ये कृष्णजी खड़े हुए हैं, ये क्राइस्ट खड़े हुए हैं। ये सब मूर्तियां बनी हैं, बच्चों के खिलौने लगाए हुए हैं, गुड्डा-गुड्डी बनाए हुए हैं, और भगवान हैं और इनको देखने से ज्ञान हो जाएगा! तो दुनिया में अब तक सबको ज्ञान हो गया होता।

आंखें होते हुए अंधे हम बने हुए हैं। आंखें होते हुए देखने की हमारी इच्छा नहीं है। इतने भय से डर गए हैं। इतना भय है कि हम क्यों? जरूर हम ही गड़बड़ होंगे अगर हम कुछ कहेंगे।

लेकिन मैं आपसे निवेदन करता हूं, जो विचारशील है वह अनिवार्य रूप से विद्रोही होगा। जिसके भीतर विचार है वह कहेगा कि नहीं, मुझे तो पत्थर दिखाई पड़ता है, भगवान दिखाई नहीं पड़ते। क्षमा करें, मुझे वस्त्र नहीं दिखाई पड़ते, मुझे तो राजा नंगे दिखाई पड़ते हैं। और जब तक इतना साहस न हो कि भीड़ ने जो प्रचारित किया है और भीड़ जिस धारा में बही जा रही है उससे आप अलग खड़े न हो सकें, तब तक सत्य के जगत में आपका कोई संबंध नहीं हो सकता।

अगर भीड़ का ही संबंध सत्य से होता तो दुनिया अब तक कितनी सुंदर और अच्छी नहीं हो गई होती! भीड़ गलत है, समाज गलत है। व्यक्तियों ने तो सत्य जाना है, अब तक समाज ने कोई सत्य नहीं जाना। समाज बुनियादी रूप से गलत आधारों पर दौड़ रहा है। कभी इक्के-दुक्के व्यक्ति जरूर सत्य को उपलब्ध होते हैं। लेकिन वे वे ही लोग होते हैं जो राजपथ को छोड़ देते हैं और पगडंडी पर चलते हैं। जो राजपथ से हट जाते हैं और कहते हैं, भीड़ जहां जा रही है वहां नहीं, हम कुछ अपना रास्ता खोजेंगे। वे ही लोग जान पाते हैं, वे ही लोग पहचान पाते हैं।

लेकिन जो भीड़ से प्रभावित है और भीड़ के साथ बहा जाता है, वह कहीं भी नहीं पहुंचेगा। बस उसको एक ही आश्वासन है कि सभी लोग वहां जा रहे हैं इसलिए मैं भी जा रहा हूं। तो जब सभी जा रहे हैं तो ठीक ही जा रहे होंगे, तो मैं क्यों गलती करूं? मैं क्यों गड़बड़ करूं?

तो जाइए, बहे जाइए। इस सारी दुनिया का, समाज का, भीड़ का जो सागर है, इसमें बहे जाइए। इसमें आप मिटेंगे, कहीं पहुंच नहीं सकते हैं।

धर्म वैयक्तिक खोज है, सामूहिक उपक्रम नहीं। समूह के साथ बहे जाने का नाम धर्म नहीं है, व्यक्तिगत खोज है धर्म, निजी खोज है धर्म। और बड़े साहस की और बड़े अभय की जरूरत है। नहीं तो यह नहीं हो सकता।

तो थोड़ा आंख खोल कर विचार करिए तो आपको दिखाई पड़ेगा कि यह सब प्रचार है। मगर हम देखते भी नहीं। हम यह भी नहीं देखते कि यह प्रचार... हजारों तरह के प्रचार हैं दुनिया में, फिर भी हमको दिखाई नहीं पड़ता कि जो जिस प्रचार के चक्कर में है वह उसको सत्य मानता है। दूसरा दूसरे प्रोपेगेंडा के चक्कर में है तो उसको सत्य मानता है। कोई लक्स टायलेट को सत्य मानता है कि उसी से सुंदर होते हैं, कोई हमाम साबुन को सत्य मानता है कि उसी से सुंदर होते हैं, कोई तीसरे साबुन को सत्य मानता है।

कोई एक मूर्ति को भगवान मानता है, कोई दूसरी मूर्ति को, कोई तीसरी। यह सब प्रचार है और प्रोपेगेंडा है। इसमें कोई खोज नहीं है, कोई इंक्वायरी नहीं है हमारे मन के भीतर कि हम खोजने गए हों।

आपने खोज की है कि जैन धर्म जो कहता है वह सत्य है?

नहीं, खोज नहीं की। आपके पिता कहते थे, आपके गुरु कहते थे, आपके साधु कहते थे, इसलिए आप भी कहते हैं। आपकी कोई व्यक्तिगत खोज है? आपने कोई अपने व्यक्तिगत रूप से कोई अनुसंधान किया? कहीं आप गए? नहीं, आप उधारी पर बैठे हुए हैं। तो फिर कोई भी मूढ़ताएं समझाई जा सकती हैं और चलाई जा सकती हैं।

दुनिया में जिस दिन लोग इन मूढ़ताओं के प्रति सचेत होंगे, दुनिया में एक ही धर्म बचेगा, बहुत धर्म नहीं बच सकते हैं। बहुत धर्मों की कोई वजह नहीं है, कोई जरूरत नहीं है। बहुत धर्म इसीलिए हैं कि हम प्रचार से पीड़ित हैं और प्रचार की जकड़ में हैं, इसलिए बहुत धर्म हैं। गणित एक है, फिजिक्स एक है। ...

मनुष्य की सृष्टि जहां नहीं है, मनुष्य से पूर्व जो मौजूद है और मनुष्य के बाद भी जो मौजूद रहेगा, मेरे जन्म के पहले जो था और मेरी मृत्यु के बाद भी जो रहेगा, उसको जिस दिन मैं जानूंगा और खोजूंगा, उस दिन तो धर्म का और सत्य का अनुभव होगा। जो मैंने ही बना लिया है, उससे धर्म के और सत्य के अनुभव का कोई संबंध नहीं। और जब तक निर्णायक रूप से इन संबंधों के संबंध में हमारी मनःस्थिति स्पष्ट नहीं होगी तब तक दुनिया में धर्म नहीं हो सकता।

हां, धर्म बने रहेंगे बहुत प्रकार के और बहुत तरह की बीमारियां फैलाते रहेंगे, मनुष्य को मनुष्य से तोड़ते रहेंगे। विश्वास मनुष्यों को तोड़ता है। शास्त्र मनुष्यों को तोड़ते हैं और लड़ाते हैं। हालांकि वे प्रेम की बातें भला करते हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

भीतर है कुछ, उस पर आग्रह है, उस पर जोर है, इसलिए मैंने कहा। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि उन शास्त्रों में जो कहा है, जिस दिन आप अनुभव को उपलब्ध होंगे, उस दिन पाएंगे कि वे शास्त्र गलत हैं। नहीं, जिस दिन आप अनुभव को उपलब्ध होंगे, आप पाएंगे कि उनमें जो कहा है वह भी सत्य है। लेकिन जिस दिन आप अपने सत्य को जान लेंगे उसी दिन तो उनके सत्य को भी परख पाएंगे, उस दिन आपको दिखाई पड़ेगा।

महावीर ने कहा है, आत्मा सत्य है, आत्मा धर्म है, आत्मा को ही पा लेना सब कुछ है। और बुद्ध ने कहा है, आत्मा को मानना अज्ञान है, आत्मा को मानना अधर्म है, अनात्मा को पा लेना सब कुछ है। अब ये दोनों बिल्कुल विरोधी बातें हैं अगर शास्त्र पढ़ेंगे तो। तो एक बौद्ध है, वह कहेगा कि ये जैन अज्ञान में हैं। और एक जैन है, वह बौद्धों से कहेगा, ये अज्ञान में कहते हैं कि अनात्मा सत्य है, आत्मा का न होना सत्य है।

बुद्ध कहते हैं आत्मा को मानने से बड़ा अज्ञान नहीं है और महावीर कहते हैं आत्मा को जानने से बड़ा ज्ञान नहीं है। तो अब तो दो शास्त्र हो गए, दो सिद्धांत हो गए, दो वाद हो गए, ये लड़ेंगे।

लेकिन जो जान लेगा वह हैरान होकर पाएगा कि बुद्ध जिसको अनात्मा कहते हैं, महावीर उसी को आत्मा कहते हैं और उन दोनों में कोई भी फर्क नहीं है। वे दोनों विरोधी शब्द एक ही तरफ इशारा करते हैं। जैसे कि हम एक गिलास में पानी भर कर रख दें आधा गिलास। और एक आदमी कहे, गिलास आधा खाली है। और एक आदमी कहे, गिलास आधा भरा है। और शास्त्र बन जाएं दो और लड़ाई शुरू हो जाए। और एक कहे कि आधा खाली होना ही सत्य है। और एक कहे कि आधा भरा होना ही सत्य है। और दूसरा गलत है, क्योंकि दूसरा बिल्कुल विरोधी शब्द उपयोग कर रहा है। लेकिन जो जाने और गिलास को पहचाने और देखे, वह कहेगा कि ठीक है, समझ गया।

सत्य सत्य है, शास्त्र सत्य नहीं है। बहुत रूपों में कहा जा सकता है, बहुत शब्द दिए जा सकते हैं, क्योंकि रूप और शब्द हमारी सूझ और समझ के परिणाम हैं, सत्य की अनुभूति के अनिवार्य हिस्से नहीं हैं। हिंदुस्तान में हम और शब्द देते हैं, चीन में और शब्द देते हैं, जेरुसलम में और शब्द देते हैं। जिसको महावीर ने मोक्ष कहा,

बुद्ध ने निर्वाण कहा, उसको क्राइस्ट कैसे मोक्ष कह सकते थे? मोक्ष जैसी उनकी भाषा में कोई चीज नहीं, निर्वाण जैसी कोई कल्पना नहीं उनकी कौम के पास। उन्होंने कहा, किंगडम ऑफ गॉड, ईश्वर का राज्य।

हमारे लिए गड़बड़ हो गया। क्योंकि जैनी कहेगा, ईश्वर तो है ही नहीं, ईश्वर का राज्य क्या होगा? तो यह किंगडम ऑफ गॉड तो गड़बड़ बात है।

लेकिन जो मतलब मोक्ष का है, जो मतलब निर्वाण का है, वही मतलब किंगडम ऑफ गॉड का है। उसमें कोई फर्क नहीं है। जहां मनुष्य का सब राज्य समाप्त हो जाता है, वहां जो शेष रह गया उसको कहते हैं किंगडम ऑफ गॉड। जहां मनुष्य के निर्माण का सारा राज्य समाप्त हो जाता है, वहां जो शेष है, वहां जो अनंत और अनादि शेष है, उसको वे कह रहे हैं किंगडम ऑफ गॉड। लेकिन उनके पास यहूदी टर्मिनालॉजी थी, उनके पास यहूदी शब्द थे। मजबूरी थी, इसमें कोई कठिनाई भी नहीं थी, तो उन्होंने उनका उपयोग किया।

दुनिया में शब्दों का झगड़ा है। और शास्त्रों में शब्द हैं और अज्ञानी शास्त्र को पकड़ेगा तो शब्दों से जकड़ जाएगा। इसलिए मैं कहता हूंः सत्य को जानो, शास्त्र सत्य हो जाएंगे; लेकिन शास्त्र को पकड़ लो, जीवन पूरा का पूरा असत्य हो जाएगा। शास्त्र को जिसने पकड़ा उसका जीवन गया। सत्य तो मिलेगा ही नहीं, शास्त्र को भी नहीं जान पाएगा। लेकिन जिसने सत्य को खोजा वह सत्य को तो पाएगा ही, साथ ही साथ शास्त्रों में जो है उसको भी जान लेगा।

सोचने की और विचारने की कोशिश करना कि मैं जो कह रहा हूं वह क्या है?

मूर्ति तो छूट जाएगी जो भगवान को खोजेगा, क्योंकि वह पत्थर को मूर्ति नहीं मान सकता। लेकिन जिस दिन भगवान को खोज लेगा, भगवान के सिवाय कुछ भी शेष नहीं रह जाएगा, पत्थर में भी वही होगा। मूर्ति को जिसने पकड़ा वह तो पत्थर पर अटक जाएगा, लेकिन जिसने सब छोड़ा और भगवान को खोजा, पत्थर भी एक दिन भगवान हो जाएगा। कोई फिर फर्क नहीं रह जाएगा। अभी तो फर्क है। अभी जो पत्थर सीढ़ी का है उसको तो नमस्कार नहीं करते हैं; लेकिन जो पत्थर मूर्ति का है उसको नमस्कार करते हैं। और कल हट जाए मूर्ति वहां से तो वह भी पत्थर हो जाएगी और सीढ़ी पर लगा दी जाएगी। लेकिन जिसको भगवान का अनुभव होगा उसके लिए सभी पत्थरों में वही हो जाएगा।

एक फकीर हुआ। एक नास्तिक था उस गांव में। उसको बहुत लोगों ने समझाया, वह नहीं समझा। तो उन्होंने कहा कि पास के गांव में एक फकीर है, तुम वहां जाओ। वही तुम्हें समझा सकता है, अब और तुम्हें कोई नहीं समझा सकता।

उस नास्तिक ने कहा कि ठीक है, वहां भी मैं जाता हूं। नास्तिक बड़े गुरूर से भरा हुआ था, उसके पास दलीलें थीं। और नास्तिक के पास हमेशा दलीलें रही हैं, दलीलों में कमी नहीं है। वह दलीलें लेकर गया। पहुंचा, सुबह कोई आठ बजते थे, जाकर मंदिर में गया जहां वह फकीर रहता था, साधु रहता था। देख कर हैरान हो गया, शंकर का मंदिर था और वह जो साधु नाम के सज्जन थे, शंकर की पिंडी पर पैर रखे हुए विश्राम कर रहे थे, सो रहे थे। उसे तो बहुत हैरानी हो गई, उसने कहा कि नास्तिक तो मैं जरूर हूं, लेकिन अभी पैर मैं भी शंकर की पिंडी को नहीं लगा सकता। पता नहीं कौन सी झंझट खड़ी हो जाए? पता नहीं ये शंकर इसका क्या बदला लें? हों ही कहीं, क्या पता? दलीलें तो ठीक हैं, लेकिन अगर कहीं हुए तो वे तो मुसीबत बाद में डालेंगे, तो पैर तो मैं भी नहीं लगा सकता। लेकिन यह साधु अजीब है! और यह मुझे क्या समझाएगा, यह तो परम नास्तिक मालूम होता है। और यह भी कैसा साधु है, ब्रह्ममुहूर्त कब का निकल गया और यह अभी आठ बज रहे हैं और सो रहा है? क्योंकि साधु तो ब्रह्ममुहूर्त में उठते हैं!

इसलिए साधु होना बहुत आसान है। ब्रह्ममुहूर्त में उठिए, साधु हो गए। यह तो सीधा सा गणित है, इसमें कठिनाई क्या?

वह बहुत हैरान हुआ। लेकिन बैठ गया। बोला, इसके पास भेजा है! लेकिन थोड़ी देर बाद वह साधु उठा तो उसने पूछा कि महाराज, मैंने तो सुना था कि साधु ब्रह्ममुहूर्त में उठते हैं और आप अभी सो रहे हैं और सूरज आकाश में खूब चढ़ चुका!

वह साधु हंसने लगा और बोला, हमने भी बहुत खोजा कि ब्रह्ममुहूर्त कौन सा है, इसका पता चल जाए। फिर हमको यही पता चला कि जब हमारी नींद खुल जाए, ब्रह्म का जब जागरण हो जाए, वही ब्रह्ममुहूर्त है। तो जब हम उठते हैं उसी को ब्रह्ममुहूर्त मान लेते हैं। और तो हमारी समझ में नहीं आया कि ब्रह्ममुहूर्त कौन सा है? बहुत खोजा, लेकिन कुछ पक्का पता नहीं चला। फिर हमने यही सोचा कि भीतर तो ब्रह्म है, जब वह खुलती है उनकी नींद तो समझो ब्रह्ममुहूर्त है। और नींद खुल रही है तो वह मुहूर्त ब्रह्म। तो जब हमारी नींद खुलती है तब हम ब्रह्ममुहूर्त मानते हैं।

उसने कहा कि ठीक है। अब इनसे क्या बकवास की जाए! कहा, और यह क्या कर रहे हैं कि आप भगवान की मूर्ति पर पैर रखे हुए हैं?

उसने कहा कि पहले हम भी ऐसा ही सोचते थे। लेकिन जब भगवान को जाना तो मुसीबत हो गई कि अब पैर कहां रखें? कहीं भी पैर रखें वहीं भगवान है। कहीं भी पैर रखें वहीं भगवान है, तो कहीं तो रखेंगे ही! तो यह बताने को लोगों को कि जहां भी पैर रखें वहीं भगवान है, इसलिए जहां-जहां लोग भगवान मानते हैं वहीं-वहीं हम पैर रखते हैं, ताकि लोगों को पता चल जाए कि कहीं भी पैर रखो वहीं भगवान है।

वह बोला कि ठीक है, अब आपसे तो कोई रास्ता न रहा, बाकी हम तो हैं नास्तिक और हम विवाद करने आए थे।

उसने कहा, फिर भी रुको, कुछ खाना-वाना हम बनाएंगे तो तुम खाकर ही जाना, अब आ गए हो।

तो वह गांव से भिक्षा मांग कर लाया और उसने बाटियां बनाईं। और जब वह बाटियां बना रहा था, एक कुत्ता उसकी बाटी लेकर भाग गया। तो वह घी की हंडी लेकर उसके पीछे भागा। वह नास्तिक हैरान हुआ कि दिखता है यह दुष्ट उसकी बाटी छुड़ा कर लौटेगा। तो वह नास्तिक भी पीछे गया। लेकिन उसने कुत्ते को आखिर जाकर पकड़ ही लिया उस फकीर ने और उससे कहा कि देखो राम, बिना घी की बाटी न तो हमको पसंद है और हम सोचते हैं तुमको भी पसंद न होगी, इसलिए पहले इस बाटी को घी में डुबा लेने दो और फिर खाना। उस कुत्ते से कहा, देखो राम, हमको बिना घी की बाटी पसंद नहीं तो तुमको भी न होगी। तो कृपा करके इतना करो। तो उसने उस कुत्ते के मुंह से बाटी निकाली, अपने घी के बर्तन में उसको डुबाई, वापस कुत्ते के मुंह में लगाई और कहा, राम, अब जाओ।

उस नास्तिक ने उसके पैर छुए और कहा, मैं जाता हूं, अब मुझे कुछ सीखना नहीं आपसे। क्योंकि मैं तो हैरान हो गया, भगवान की मूर्ति पर पैर टेकते हो और कुत्ते से राम कहते हो!

जो जानता है वह यही करेगा। क्योंकि जिसे दिखाई पड़ेगा परमात्मा, उसे फिर कुत्ते में भी दिखाई पड़ेगा, पत्थर में भी, मकान में भी, सब तरफ वही दिखाई पड़ेगा, उसके अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं पड़ सकता है। लेकिन आपको दिखाई पड़ता है मंदिर में, तो जरूर गड़बड़ है। आपको दिखाई पड़ता है मूर्ति में, तो जरूर गड़बड़ है। मूर्ति में तो भगवान नहीं है, लेकिन जिस दिन भगवान का अनुभव होगा उस दिन मूर्ति भी भगवान

के बाहर नहीं रहेगी। वह तो समष्टि का अनुभव है। लेकिन इन क्षुद्रताओं में जो उलझ जाता है वह समष्टि तक नहीं उठ पाता है, नहीं उठ सकता है।

क्षुद्रताएं छोड़ें, जागें विराट के प्रति, जागें विराट के प्रति, असीम के प्रति, तब तो धर्म का अनुभव होगा, तब तो भगवान की या सत्य की--या कोई भी नाम दे दें--उसकी प्रतीति होगी।

एक और छोटा सा प्रश्न है और बहुत बढ़िया हैः एक उलझन है कि मेरे मन में चोरी करने का भाव हो उठता है, खर्च की कमी रहती है इसलिए मुझसे चोरी हो जाती है। इस बात का कृपया उपाय बतलाएं कि इस चोरी से कैसे मुक्त हुआ जाए?

बड़ी ईमानदारी की बात पूछी है, इसलिए बहुत अच्छी है। क्योंकि लोग भगवान की बातें पूछते हैं, पुनर्जन्म की बातें पूछते हैं। यह तो कोई पूछता ही नहीं कि मैं चोर हूं। जो आदमी यह पूछता है उसकी जिंदगी में कुछ हो सकता है। उसकी जिंदगी का प्रश्न सच्चा है और सीधा है। उसे कोई चीज खटक रही है जिंदगी में, वह उस पर विचार कर रहा है। लेकिन दूसरे लोग तो विचार कर रहे हैं--आत्मा अमर है या नहीं? और भगवान है तो किस शास्त्र में है?

ये सब झूठे प्रश्न हैं। ये वास्तविक प्रश्न नहीं हैं। वास्तविक प्रश्न तो जिंदगी के होते हैं--कि मेरे भीतर बेईमानी है, मेरे भीतर क्रोध है, मुझे चोरी हो आती है, मैं क्या करूं?

तो मैंने दोपहर जो कहा है, अगर उसे समझा होगा, तो इस प्रश्न का उत्तर मिल जाना चाहिए।

चोरी तो रहेगी। जब तक चेतना बाहर की तरफ गति करती है, चोरी रहेगी। यह मत सोचना कि जो जेलों में बंद हैं वे ही चोर हैं। जो पकड़ जाते हैं वे बंद हैं, जो नहीं पकड़ते वे बाहर हैं। इस खयाल में मत रहना कि जो भीतर जेल के बंद हैं वे ही चोर हैं। जो पकड़ जाते हैं वे बंद हैं बेचारे; वे जरा कमजोर चोर हैं या नासमझ चोर हैं; होशियार नहीं हैं, बहुत चालाक नहीं हैं। जो चालाक हैं, होशियार हैं, वे बाहर हैं। जो उनसे भी ज्यादा चालाक हैं वे मजिस्ट्रेट हैं। जो उनसे भी ज्यादा चालाक हैं वे पुरोहित हैं, जो उनसे भी ज्यादा चालाक हैं वे साधु हैं। चोर सब हैं, क्योंकि जिसकी चेतना बाहर की तरफ बह रही है वह बिना चोरी किए बच नहीं सकता।

एक दफा ऐसा हुआ कि सिकंदर के पास हिंदुस्तान से लौटते वक्त उसके फौजी पड़ाव में एक डाकू ने डाका डाल दिया। रात फौजें सोई थीं, वह सामान चुरा कर ले गया। सिकंदर बहुत हैरान हुआ, उसने कहा, हद्द हो गई। सुबह वह डाकू पकड़ कर लाया गया। सिकंदर ने कहा कि तुम कैसे बदतमीज हो! कैसे अनैतिक व्यक्ति हो!

उस डाकू ने कहा कि नहीं, ऐसा व्यवहार न करें। जैसा एक बड़ा भाई छोटे भाई के साथ व्यवहार करता है वैसा व्यवहार करें।

सिकंदर ने कहा, तू मेरा छोटा भाई कैसे?

उसने कहा, तुम बड़े डाकू हो, तुम्हें दुनिया मानती है। हम छोटे डाकू हैं, हमें मानती नहीं। हम जरा कमजोर हैं, शक्तिहीन हैं, हम छोटे-मोटे डाके डालते हैं। तुम बड़े डाके डालते हो, तुम बादशाह हो। तुम भी वही करते हो, हम भी वही करते हैं।

आपके बड़े से बड़े राजा भी चोरी करते रहे हैं। चोरी न करें तो राजा कैसे हो जाएंगे? हां, उनकी चोरी स्वीकृत है, क्योंकि वे बड़े चोर हैं और ताकतवर चोर हैं। इसलिए वे हड़प लेते हैं तो उसको जीत कहा जाता है। वे जमीन बढ़ा लेते हैं तो उसको राज्य कहा जाता है। आप बगल वाले की जमीन दबाएंगे तो चोर समझे जाएंगे;

आप बगल वाले की जेब में हाथ डालेंगे तो चोर समझे जाएंगे। और सब राजा आपकी जेबों में हाथ डाले रहे, नहीं तो उनके पास आता कहां से? वे बड़े चोर हैं, वे स्वीकृत चोर हैं, समाज उनको मान्यता देता है। और क्यों? क्योंकि समाज उनसे डरता है। वे जो चाहते हैं मनवा लेते हैं।

नेपोलियन ने कहा है कि जो मैं कह दूं वही कानून है।

तो ठीक कहा है, जो ताकतवर कह दे वह कानून है। दुनिया में दो तरह के चोर रहे--ताकतवर और कम ताकतवर। कम ताकतवर सजा भोगते हैं, ताकतवर अपनी चोरी का पुण्य यहीं लूटते हैं, मजा करते हैं। और उन ताकतवरों ने बड़ी होशियारी की बातें की हैं कि उन्होंने पुरोहितों को भी मना लिया है। क्योंकि उनकी चोरी में भागीदार ये भी हैं, पुरोहित भी उनकी चोरी में भागीदार हैं, तो इनको भी मना लिया है। इनसे वे यह कहते हैं कि जिनके पास नहीं है वे पिछले जन्मों के पाप का फल भोग रहे हैं और हमारे पास है तो हम पिछले जन्मों के पुण्य का फल भोग रहे हैं।

जब कि असलियत यह है कि या तो उनके बापों के पाप का फल है उनकी संपत्ति या उनके और बापों के या उनके खुद के। बिना पाप के संपत्ति इकट्ठी होनी कठिन है, बिना चोरी के संपत्ति इकट्ठी नहीं होती। संपत्ति मात्र चोरी है। यह असंभव है। लेकिन जिनके पास संपत्ति है वे यह व्यवस्था करते हैं कि हमारी संपत्ति खो न जाए, चोरी न चली जाए। तो वे पुरोहितों को कहते हैं, लोगों को समझाओ कि चोरी बहुत बुरी चीज है, चोरी बहुत पाप है। ताकि जिनके पास नहीं है वे दूर रहें, डरे हुए रहें। पुलिस है, अदालत है, सब है। लेकिन फिर भी डर है कि फिर भी आदमी चोरी करने को राजी हो जाए। इसलिए बचपन से उसके भीतर कांशियंस पैदा करता है समाज--कि देखो, चोरी बहुत बुरी चीज है। चोरी बहुत बुरी चीज है, मतलब जिनके पास संपत्ति है उनसे मत लेना।

लेकिन उनके पास संपत्ति कैसे आ गई? उनके पास संपत्ति कैसे आ गई? उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिए यह भी व्यवस्था कर रखी है कि चोरी मत करना। यह संपत्ति का जो केंद्रीकरण है उसने ही "चोरी न करना" इसको प्रचारित किया हुआ है। लेकिन उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि शोषण मत करना। अभी तक दुनिया के किसी धर्मग्रंथ में यह नहीं लिखा है कि शोषण करना पाप है। लिखा है चोरी करना पाप है। शोषण करना पाप नहीं है। जब कि शोषण के कारण ही चोरी पैदा होती है। नहीं तो चोरी पैदा क्यों होगी? अगर दुनिया में शोषण नहीं होगा, चोरी नहीं होगी।

कनफ्यूशियस हुआ चीन में। उसकी अदालत में एक मुकदमा आया। अदालत में मुकदमा यह था कि एक आदमी ने चोरी की थी। उस पर मुकदमा था, चोरी पकड़ गई थी, संपत्ति भी पकड़ गई थी। कनफ्यूशियस ने फैसला दिया--ढाई हजार साल पहले फैसला दिया, अदभुत फैसला दिया, मैं भी उसकी जगह होता तो वही फैसला देता, हालांकि अभी तक दुनिया उससे राजी नहीं कि उसने ठीक किया--उसने छह महीने की सजा साहूकार को दे दी और छह महीने की सजा चोर को दे दी।

साहूकार हैरान हुआ कि तुम्हारा दिमाग खराब है? मेरी संपत्ति चोरी जाए और मुझे सजा! यह कौन से कानून में लिखा हुआ है?

उसने कहा कि तुम्हारे पास इतनी संपत्ति इकट्ठा होना ही चोरी का बुनियादी कारण है। इस गांव में तुम्हारे पास इतनी संपत्ति इकट्ठी हो गई है कि बाकी लोग भी चोरी नहीं कर रहे हैं, यही आश्चर्य की बात है।

जीवन की धारा एकदम गलत है, एकदम गलत है, उसमें सब चोरी कर रहे हैं। इसलिए जिसको यह खयाल आ गया है कि मुझसे चोरी हो रही है, मैं क्या करूं? उसके भीतर एक चिंतन तो पैदा हुआ है। कुछ हो

सकता है। लेकिन चोरी की बहुत फिक्र न करें, चोरी से तो वह नहीं बच सकेगा। मान्य चोरी करेगा, अमान्य चोरी करेगा, चोरी से तो नहीं बच सकेगा, जब तक कि उसकी चेतना-धारा बाहर की तरफ बहती है।

तो मैंने दोपहर जो बात की है उससे इसे जोड़ लेना। चेतना की धारा भीतर की तरफ बहे तो चोरी बंद होती है। चोरी बंद होती है। उसके बिना चोरी बंद नहीं हो सकती। दुनिया में अगर कभी भी चोरी समाप्त होगी तो वह तभी जब अधिक जीवन अंतर्गामी होंगे। बहिर्गामी होंगे, चोरी बंद नहीं हो सकती। हां, छोटी चोरियां पकड़ी जाती रहेंगी, बड़ी चोरियां सम्मानित होती रहेंगी। बड़े चोर इतिहास बनाएंगे, छोटे चोर कारागृहों में बंद होंगे। यह होगा, लेकिन चोरी बंद नहीं होगी। चाहे समाजवाद आ जाए तो भी चोरी बंद नहीं होगी। चोरी की शक्लें बदल जाएंगी। शक्लें दूसरी हो जाएंगी, लेकिन चोरी होगी।

हिंदुस्तान में गरीब है, अमीर है। समाजवादी मुल्कों में सामान्य जनता है और सरकार में प्रतिष्ठित राजनीतिज्ञ है। वह उनका शोषण कर रहा है, वह उनकी चोरी कर रहा है। सब चल रहा है। उससे बचा नहीं जा सकता। जब तक कि बहुत गहरे अर्थों में अधिकतम आत्माएं अंतर्गामी न हों, जीवन में चोरी होगी। चोरी से तभी कोई बच सकता है जब उसके जीवन में अपरिग्रह पैदा हो। परिग्रह चोरी है। और अपरिग्रह तभी पैदा होगा जब उसे आत्मबोध हो। इसके पीछे एक कारण है, जब तक हमें भीतर संपदा न मिले तब तक हम बाहर संपत्ति को खोजेंगे। वह भीतर की संपत्ति को इस तरह सब्स्टीट्यूट करेंगे। भीतर तो खाली हैं, भीतर कोई संपत्ति नहीं, तो बाहर संपत्ति को इकट्ठा करेंगे। उस संपत्ति को इकट्ठा करके किसी तरह कमी पूरी कर लेंगे। भीतर तो खाली हैं, भीतर तो कोई संपदा नहीं, तो बाहर संपदा इकट्ठी होती है। जब किसी व्यक्ति को भीतर संपदा मिलने लगती है तो बाहर की संपदा पर से अपने आप हाथ छूट जाते हैं। भीतर जब संपदा मिलती है तो कोई पागल बाहर संपदा इकट्ठा करेगा।

एक आदमी जा रहा हो और उसके हाथ में कंकड़-पत्थर रखे हों और आप उसको बता दें कि ये सामने हीरे पड़े हैं, तो क्या उसको याद भी रहेगा कि कंकड़-पत्थर कहां गए?

वे तत्क्षण कंकड़-पत्थर छूट जाएंगे और हीरों पर मुट्ठी बंध जाएगी। उसे त्याग नहीं करना पड़ेगा कंकड़-पत्थरों का, वे छूट ही जाएंगे।

चोरी तभी बंद हो सकती है जब और गहरी संपदा भीतर उपलब्ध होनी शुरू हो जाए। परिग्रह तभी छूट सकता है जब भीतर आत्मिक जीवन और आत्मिक आनंद पर हाथ पड़ने शुरू हो जाएं। तो यहां छूट जाएगा, कंकड़-पत्थरों को कौन पकड़ेगा? महावीर ने कोई त्याग करके कोई बड़ा काम नहीं किया, या बुद्ध ने या किसी ने भी। यह त्याग-व्याग नहीं है, यह कंकड़-पत्थर का छूट जाना है। भीतर कुछ मिला है अदभुत, अब उसके लिए हाथ खाली चाहिए, तो बाहर सब छूट गया।

जब तक अपरिग्रह न हो... परिग्रह हो, तो फिर परिग्रह में तो चोरी होगी। उसके नाम अलग हो सकते हैं। एक सम्मत चोरी हो सकती है, समाज के द्वारा स्वीकृत; और एक समाज के द्वारा अस्वीकृत चोरी हो सकती है। वह दूसरी बात है, उससे मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन यह मैं कहूं कि जब तक अपरिग्रह न भीतर हो तब तक चोरी होगी। और जब तक चोरी होगी तब तक दुनिया में शोषण जारी रहेगा। और जब तक शोषण जारी रहेगा तब तक मनुष्य के जीवन में कोई ऐसा समाज पैदा नहीं हो सकता जो सुंदर हो, स्वस्थ हो, शांत हो, सुखी हो, समान हो, स्वतंत्र हो। नहीं हो सकता। और अपरिग्रह आता है आत्मिक गति से। जितना-जितना व्यक्ति आत्मा में प्रविष्ट होता है, उतना-उतना अपरिग्रह आता है।

मैं आपसे बाहर की संपत्ति छोड़ने को नहीं कहता हूं, मैं आपसे भीतर की संपत्ति उपलब्ध करने को कहता हूं। बाहर की संपत्ति तो जाएगी अपने आप, उसे छोड़ने की कोई कठिनाई नहीं है। और अगर बाहर संपत्ति पर पकड़ ढीली हो जाए तो दुनिया में एक दूसरी तरह का मानव-समाज निर्मित हो सकता है। इसलिए चिंता न करें कि चोरी है। चिंता करें इस बात की कि मेरी दिशा बाहर की तरफ है। चोरी तो चलने दें, वह चलेगी इधर-उधर, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन भीतर जागें और भीतर की तरफ गति करें। और जिस दिन भीतर की तरफ गति हो जाए उस दिन आप पाएंगे कि चोरी तो गई। चोरी जाएगी।

एक मित्र मेरे पास आते थे। वे मुझसे कहे, मैं शराब पीता हूं। मैं कैसे ध्यान करूं?

मैंने कहा, इसका क्या संबंध, शराब पीने से और ध्यान करने से! खूब शराब पीओ और ध्यान भी करो।

वे बोले, लेकिन कोई भी... वे तो थोड़े हैरान हो गए और बोले, यह कैसे हो सकता है कि मैं शराब भी पीयूं और ध्यान भी करूं?

मैंने कहा, अगर यह नहीं हो सकता तब तो फिर रास्ता ही समाप्त हो गया। यह तो ऐसे ही हुआ, एक बीमार आदमी कहे कि मैं तो बीमार हूं तो मैं इलाज कैसे करूं? मैं तो बीमार हूं, मैं इलाज कैसे करूं? तो हम उससे कहेंगे, बीमार हो तो रहो, लेकिन इलाज तो करो।

शराब पीते हो, पीओ। मेरी दृष्टि में, मैंने उनसे कहा, शराब इसीलिए पीते हो कि भीतर शांत नहीं हो। भीतर अशांत हो इसलिए शराब पीते हो, ताकि भूल जाओ अपने को। जब ध्यान भीतर शांति लाएगा तो शराब पीने के बुनियादी कारण टूट जाएंगे।

आना शुरू किया। वे कुछ दिन ध्यान करते थे। कोई तीन महीने बाद उन्होंने आकर मुझसे कहा, आपने तो मुझे सच में धोखा दे दिया, शराब तो गई।

मैंने कहा, मुझे उससे क्या लेना-देना, रहे या जाए। उससे कोई संबंध नहीं है।

आपकी चोरी से कोई संबंध नहीं है। संबंध है इस बात से कि भीतर आप गति करें, थोड़ा ध्यान में गहरे हों। जाएगी, चोरी जाएगी, शराब जाएगी, बेईमानी जाएगी, उसे छोड़ना नहीं है, वह जाएगी। और जब जाए तभी शुभ है। छोड़ा हुआ झूठा होगा, वह भीतर बनी रहेगी, नये रास्ते पकड़ लेगी, नये ढंग से आने लगेगी, अपरिचित रास्ते पकड़ लेगी, परिचित रास्ते छोड़ देगी। मन बहुत होशियार है, बहुत कनिंग है। आप एक तरफ से छोड़ेंगे, वह दूसरी तरफ से शुरू कर देगा। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। फर्क पड़ता है अंतर्गमन से। और अंतर्गमन ही केंद्रीय तत्व है जीवन-साधना में।

और प्रश्न हैं, उनकी मैं कल बात करूंगा। अब हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे। तो मैं समझा तो चुका हूं, कुछ थोड़े से नये मित्र होंगे, उनको दो बात कह दूं।

रात्रि का ध्यान सोने के पहले करने का ध्यान है, यहां तो हम प्रयोग कर रहे हैं, रात को लौट कर कमरे पर उसे दोहराएं। क्योंकि यहां तो जमीन है, कंकड़-पत्थर हैं, लेट भी नहीं सकते, तकलीफ भी है। इतने लोग भी हैं, उनको भूल भी नहीं सकते। तो कमरे पर जाकर उसे दोहराएं। यहां तो सिर्फ हम प्रयोग कर रहे हैं कि आपको खयाल में आ जाए कि क्या करना है। लेट जाना है, सारे शरीर को ढीला छोड़ देना है। ढीला छोड़ने के सुझाव मैं दूंगा, उसके हिसाब से फिर छोड़ते जाना है। फिर श्वास शांत कर लेनी है, शांत छोड़ देनी है, उसके भी सुझाव दूंगा। फिर मन शांत होने के सुझाव दूंगा। अंत में कहूंगा कि दस मिनट के लिए सब शांत हो गया। उस शांति में सोए हुए भीतर जागे रहें, जैसा सुबह जागे रहते हैं उसी भांति।

तो बहनें यहां ऊपर जाएं और सारे भाई नीचे आ जाएं।

आठवां प्रवचन

अभाव का बोध

मेरे प्रिय आत्मन्!

बीते दो दिनों में सुबह की चर्चाओं में दो बिंदुओं पर हमने विचार कियाः अज्ञान का बोध और रहस्य का बोध।

अज्ञान का बोध न हो तो ज्ञान ही बाधा बन जाता है और रहस्य का बोध न हो तो व्यक्ति अपने में ही सीमित हो जाता है। और जो विराट ब्रह्म विस्तीर्ण है चारों ओर, उससे उसके संपर्क-सूत्र शिथिल हो जाते हैं, उससे उसकी जड़ें टूट जाती हैं। और जो व्यक्ति अपने में ही केंद्रित हो जाता है वह स्वभावतः पीड़ा और दुख में पड़ जाता है और चिंता में पड़ जाता है।

इन दो तत्वों के संबंध में विचार किया। मनुष्य सर्वसत्ता से इन दो दीवालों के कारण टूटा है। टूट की वजह से उसके भीतर कौन सी घटना घटी है और वह घटना कैसे विसर्जित होगी, उसकी चर्चा मैं आज करना चाहता हूं। क्यों मनुष्य अपने को ज्ञान से भरना चाहता है? क्यों मनुष्य प्रकृति के रहस्य से दूर हट गया और टूट गया? कोई सुनिश्चित कारण पीछे होंगे। अकारण यह नहीं हुआ है। उन कारणों पर थोड़ा सा विचार करेंगे, और कैसे वापस मनुष्य अपने थोथे अहंकार से मुक्त हो सकता है और जीवन से संबंधित, उसका भी।

मनुष्य के जीवन में, चाहे वह ज्ञान का संग्रह करता हो, चाहे धन का संग्रह करता हो, चाहे यश का संग्रह करता हो, एक बात बहुत स्पष्ट रूप से समझ लेने जैसी है कि मनुष्य जीवन भर संग्रह करता है, इकट्ठा करता है। यह दूसरी बात है कि वह क्या इकट्ठा करता है। दिशाएं अलग होंगी। कोई धन इकट्ठा करता होगा, कोई यश इकट्ठा करता होगा, कोई ज्ञान इकट्ठा करता होगा, कोई कला और कौशल इकट्ठा करता होगा, लेकिन एक बात केंद्रीय है कि मनुष्य जीवन भर इकट्ठा करता है, संग्रह करता है।

संग्रह क्यों करता है? क्यों यह प्रगाढ़ वेग है भीतर कि मैं इकट्ठा करूं? संग्रह करूं? क्यों? अगर इसे न समझा जा सके तो जीवन में कोई आधारभूत परिवर्तन संभव नहीं है। क्योंकि यह हो सकता है कि एक संग्रह को वह छोड़ दे, तो वह दूसरा संग्रह शुरू कर देगा, क्योंकि संग्रह का मूल वेग उसकी दृष्टि में नहीं है। अगर वह धन छोड़ना शुरू कर दे तो छोड़ सकता है, तो वह त्याग इकट्ठा करना शुरू कर देगा। त्याग भी इकट्ठा किया जाता है।

यह आश्चर्यजनक है! क्योंकि हम कहेंगे कि त्याग कैसे इकट्ठा किया जाता है? धन तो समझ में आता है इकट्ठा हो सकता है, लेकिन त्याग? त्याग भी इकट्ठा हो सकता है। उसका भी हिसाब होता है कि मैंने कितने उपवास किए, उसकी भी गणना होती है। मैंने कितना तप किया, मैंने कितनी प्रार्थना की, मैंने कितना कष्ट सहा--मैंने कितना त्याग किया। जहां गणित है, वहां संग्रह है। जहां कैलकुलेशन है, वहां संग्रह है। यह सबका हिसाब है कि मैंने कितना किया। मेरे पास कितना धन है, इसका भी हिसाब होता है। मेरे पास कितना त्याग है, इसका भी हिसाब होता है। मैं बड़ा त्यागी हूं या छोटा त्यागी हूं, इसका भी हिसाब होता है।

यह जो मनुष्य का मन है, अगर बिना संग्रह की मूल प्रवृत्ति को समझे, छोड़ने लगे, तो बड़ी विरोधी घटना घटती है--वह छोड़ने का भी संग्रह करने लगता है, छोड़ने का भी हिसाब रखने लगता है। वह भी उसकी संपत्ति बनने लगती है, त्याग भी संपत्ति बन जाती है।

ज्ञान तो स्पष्टतः संगृहीत होता है। लेकिन क्यों हम संग्रह करना चाहते हैं? मेरे देखे--और आप भी विचार करेंगे तो यह समझ में आएगा--मनुष्य के भीतर कोई अनिवार्य शून्यता है; मनुष्य के भीतर एंप्टीनेस है, कोई खालीपन है, कोई अभाव है; मनुष्य के भीतर कुछ बिल्कुल रिक्त है। उस रिक्त से घबड़ाहट है, भय है। वह जो शून्य है भीतर उससे डर मालूम होता है। उसको हम भरना चाहते हैं। उसको हम किसी न किसी रूप से भर देना चाहते हैं। उसके भीतर कुछ संगृहीत कर लेना चाहते हैं, ताकि शून्य से छुटकारा हो जाए, ताकि रिक्त भीतर जो खाली जगह है वह भर जाए।

शून्य का भय है जो मनुष्य को संग्रह में ले जाता है। ना-कुछ, नथिंगनेस का भय है, भीतर तो कुछ भी नहीं है, एकदम शून्य है वहां। है कुछ? वहां तो टोटल नथिंगनेस है, वहां तो एकदम सन्नाटा है और शून्य है और सब रिक्त है, वहां तो एकदम अभाव है। उस अभाव से घबड़ाहट होती है, उस अभाव से भय होता है, उस भय से आदमी भागता है। विपरीत दिशा में भागता है। भीतर सब खाली है तो बाहर सब भांति भर जाए, इसकी चेष्टा में लग जाता है। संग्रह की वृत्ति भीतर के अभाव से पलायन है, एस्केप है। वह जो भीतर सब खाली-खाली है उससे डर लगता है। लेकिन खाली होने से डर क्यों लगता है? यह भय क्या है? अगर आप नोबडी हैं, ना-कुछ हैं, तो भय क्या है?

जरूर कोई भय होगा। हर आदमी समबडी होना चाहता है, कोई नोबडी होने को राजी नहीं, ना-कुछ होने को कोई तैयार नहीं। प्रत्येक व्यक्ति कुछ होना चाहता है। वह कह सके कि मैं कुछ हूं। सारी राजनीति इससे पैदा होती है कि मैं कह सकूं कि मैं कुछ हूं। धन की दौड़ इससे पैदा होती है, ताकि मैं कह सकूं कि मैं कुछ हूं। मैं कुछ हूं! त्याग की दौड़ इसलिए पैदा हो सकती है कि मैं कह सकूं कि मैं कुछ हूं। ज्ञान इसलिए इकट्ठा होता है, ताकि मैं कह सकूं कि मैं कुछ हूं। संन्यास तक इसलिए लिया जा सकता है, ताकि मैं कह सकूं कि मैं कुछ हूं। तुम कुछ भी नहीं और मैं कुछ हूं! लेकिन यह क्यों? यह मैं क्यों कहना चाहता हूं? यह क्यों मेरे भीतर खयाल उठता है कि मैं कुछ हूं? यह दौड़ कहां से पैदा होती है?

भीतर मैं ना-कुछ हूं, भीतर मैं कुछ भी नहीं हूं। देखें, खोजें--भीतर आप क्या हैं? भीतर तो कोई भी कुछ नहीं है। भीतर तो कोई विशेषण नहीं है, कोई विशेषता नहीं है। भीतर तो एक सन्नाटा है और खालीपन है। खालीपन से घबड़ाहट लगती है। भागते हैं उसको भरने को, कुछ संग्रह करते हैं। ज्ञान इकट्ठा करते हैं, धन इकट्ठा करते हैं, यश इकट्ठा करते हैं। और जितना भागते हैं उतना ही, जितना इकट्ठा करने लगते हैं उतनी ही कठिनाई बढ़ती चली जाती है। क्योंकि लाख उपाय करें, भीतर वह जो ओरिजिनल एंप्टीनेस है, वह जो मौलिक और प्रकृतिगत अभाव है, उसे भरा नहीं जा सकता है, वह हमारा स्वभाव है, उसे भरने का कोई उपाय नहीं, कोई मार्ग नहीं।

अभाव जो है वह हमारा स्वभाव है। भीतर जो बिल्कुल रिक्त है स्थान, वही हमारा स्वभाव है। इसलिए उसे हम कितने ही भरने की कोशिश करें, उसे भरा नहीं जा सकता। और इसीलिए तो बाद में सब कुछ भर कर भी पता चलता है कि हम खाली हैं। तब पीड़ा बहुत बढ़ जाती है। जीवन व्यर्थ गया दौड़ में, संग्रह में, और संग्रह से कुछ भरा नहीं। संग्रह एक तरफ पड़ा रहता है, भीतर का खालीपन दूसरी तरफ खड़ा रहता है। दोनों का कहीं कोई मेल नहीं होता।

असल में क्यों भागने की वृत्ति होती है उस अभाव से? अभाव से इसलिए भागने की वृत्ति होती है कि उस अभाव में व्यक्ति नहीं टिक सकता है, उस अभाव में व्यक्ति तो मिट जाएगा, अहंकार मिट जाएगा, मैं मिट जाएगा। और मैं से बड़ा लगाव है, मैं को बचा लेना चाहते हैं, उसे मरने नहीं देना चाहते हैं। डर है कि कहीं मैं

मिट न जाऊं। वह जो भीतर अभाव है उसमें मौत मालूम होती है। अगर वहां गए तो मिटे, वहां तो मैं नहीं बचेगा। मैं जो राजनीतिज्ञ हूं, मैं जो राजा हूं, मैं जो राष्ट्रपति हूं, मैं जो फलां हूं, ढिकां हूं, वह नहीं वहां बचेगा। वहां तो सन्नाटा है और खाली शून्य है। उस शून्य में मैं नहीं बचूंगा, तो मैं अपने को बचाने की कोशिश में लगा हूं। इस बचाने की कोशिश से सारी दौड़ पैदा होती है जीवन की। और दौड़ का अंतिम फल असफलता हो सकती है।

कितना ही हम दौड़ें, जो हमारे भीतर है उससे दौड़ कर हम जाएंगे कहां? उससे भाग कर हम जाएंगे कहां? वह हमेशा हमारे साथ है। हम जहां भी जाएंगे वह हमारे साथ है।

एक आदमी चपरासी है और वह राष्ट्रपति हो जाए, भीतर जो खालीपन चपरासी होते वक्त था वही राष्ट्रपति के साथ भी रहेगा। कुर्सी बड़ी हो जाएगी, आकाश में बैठने लगेगा, लेकिन भीतर जो खालीपन था वह उसके साथ रहेगा। तब वह पाएगा कि राष्ट्रपति होने से भी कुछ नहीं होता, अब मुझे तो सारी दुनिया को, सारी दुनिया का प्रमुख हो जाना चाहिए। कोई राष्ट्रसंघ बने, उसका मैं प्रमुख हो जाऊं। सारे दुनिया के राज्य इकट्ठे हो जाएं, उसका मैं प्रमुख हो जाऊं। वह वहां भी पहुंच कर पाएगा कि नहीं, यह कुछ नहीं होता, वह भीतर का खालीपन साथ चला जाता है।

कितना ही हम इकट्ठा करें, आखिर में पाया जाता है कि भीतर हम पहले खाली थे, अब भी हम खाली हैं। तब घबड़ाहट पैदा होती है, तब फ्रस्ट्रेशन पैदा होता है, चिंता पैदा होती है, अशांति पैदा होती है कि यह क्या हुआ? भराव तो आया नहीं, गड्ढा खाली था और गड्ढा खाली है। क्या हो?

जीवन का सारा दुख इसलिए है कि भरने के सब प्रयास अंततः असफल हो जाते हैं। किसी के प्रेम से अपने को भरते हैं, किसी की मैत्री से भरते हैं, किसी परिवार से अपने को भरते हैं, लेकिन आखिर में कोई भराव नहीं आता। और तब हम गुस्से में उन पर चिल्लाते हैं जिनसे हमने प्रेम किया और भराव नहीं आया। तब हम उन पर नाराज होते हैं कि तुमने जरूर कुछ गड़बड़ की है।

लेकिन गड़बड़ उनकी नहीं है, कसूर किसी और का नहीं है, भीतर कुछ ऐसा शून्य है कि वह भरा ही नहीं जा सकता। इसलिए प्रेम जिसको करते हैं उस पर बाद में नाराज होते हैं, क्रोध करते हैं, और यह सोचते हैं कि उससे हमने प्रेम किया, उसने प्रेम नहीं दिया, इसलिए भीतर दुख हो रहा है। दुख इसलिए नहीं हो रहा। उसने प्रेम दिया हो तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता, उसका प्रेम भीतर के खालीपन को जाकर भर नहीं सकता है। वह खालीपन वहीं का वहीं पड़ा रहेगा। तब हम नाराज होते हैं कि शायद मेरे पास कम रुपये हैं इसलिए नहीं भर पा रहा हूं, जिनके पास ज्यादा रुपये हैं उनका भर गया होगा। तो हम ज्यादा रुपये की दौड़ में लगते हैं। उतने रुपये मिल जाते हैं, फिर भी हम पाते हैं कि नहीं भरा। वह खाली है और खाली है। और दौड़ चलती रहती है और आदमी भीतर खाली बना रहता है।

इस अनिवार्य सत्य को, इस तथ्य को बहुत स्पष्ट रूप से देखना जरूरी है कि किसी भी भांति भीतर के खालीपन को न कभी भरा जा सका है और न भरा जा सकता है। हजारों लोग दौड़े हैं, हम कोई नये लोग नहीं हैं जो दौड़ रहे हैं, हमसे पहले करोड़ों-अरबों लोग दौड़े हैं और उन्होंने भरने की कोशिश की है और असफल हुए हैं। और अंतिम कथा असफलता की है। हम भी दौड़ रहे हैं। दौड़ वही है पुरानी। आदमी बदलते जाते हैं, दौड़ वही है। भरने की दौड़ है। भीतर एक भय है कि अगर मैंने अपने को किसी चीज से नहीं भरा तो मैं तो ना-कुछ हो जाऊंगा।

लेकिन क्या कोई कभी अपने को भर सका है? क्या मनुष्य-जाति के अनुभव में यह घटना कभी घटी है कि किसी ने अपने को भरा हो?

एक बार ऐसा हुआ... किसी पुराण में यह लिखा हुआ नहीं है, पता नहीं पुराणकार कैसे चूक गए इस घटना को लिखने से... लेकिन एक बार ऐसा हुआ कि सारी मनुष्य-जाति से भगवान बहुत परेशान हो गया उनकी दौड़ को देख कर, उसने सुबह-सुबह ही घोषणा की कि आज मैं तुम्हारे सब दुखों का अंत कर दूंगा। सांझ तक जिसका जो दुख हो वह अपनी एक-एक गठरियों में उसको बांध ले। जिसका जो दुख हो! कोई दुख छोड़ने का कारण नहीं, कोई चिंता, सब उसमें बांध ले और रात सूरज ढलने के बाद गांव के बाहर जाकर उस गठरी को फेंक आए। जो-जो दुख उसमें बांध लिए जाएंगे वे समाप्त हो जाएंगे। और लौटते वक्त सूरज उगने के पहले उसी गठरी में जो-जो सुख उसे चाहिए हों उनको बांध ले और वापस लौट आए। घर पहुंचते ही वे सुख उसको उपलब्ध हो जाएंगे। कल्पना से ही बांधना था, एक-एक दुख को रखते जाना था गठरी में, फिर गठरी बांध कर ले जाना था। बाहर झड़ा कर गठरी को फिर वैसे ही कल्पना से सुख रख कर वापस लौट आना था।

शाम से ही लोग लग गए। दिन में कई को तो विश्वास हुआ, किसी को अविश्वास हुआ, लेकिन सांझ होते-होते सबको विश्वास आ गया। मरते-मरते सभी आदमी धार्मिक हो जाते हैं, विश्वासी हो जाते हैं। जिंदगी में जब जरा सुबह-सुबह जोश था, किसी ने कहा कि अफवाह है, किसी ने कहा कि पता नहीं यह सच है कि झूठ है, किसी ने कहा कि हम तो ईश्वर को मानते नहीं। लेकिन सुख को तो सभी मानते हैं। इसलिए सांझ होते-होते सभी को लगा कि कहीं ऐसा न हो कि हम चूक जाएं। सांझ अंतिम घोषणा हुई कि यह पहला ही मौका है मनुष्य-जाति के लिए और अंतिम भी, जो चूका वह सदा को चूक जाएगा, इसलिए सारे लोग दुख बांध लें। आखिर-आखिर पूरी मनुष्य-जाति ने सांझ होते-होते सबने अपने दुख बांध लिए। कोई दुख छोड़ा नहीं। कौन छोड़ता!

सारे दुख बांध कर लोग निकले। गांव का गरीब से गरीब आदमी भी उतनी ही बड़ी गठरी लिए हुए था जितना गांव का राजा भी। तब लोग बड़े हैरान हुए! यह क्या मामला है? गरीब सोचता था, दरिद्र सोचता था, दुख मेरे पास हैं, पीड़ाएं मेरे पास हैं। लेकिन गांव का राजा भी जब अपने सिर पर गठरी लेकर निकला और सारे लोग चौंक कर देखने लगे--गठरियां करीब-करीब सभी की बराबर थीं। किसी की गठरी छोटी-बड़ी नहीं थी, तो वे बहुत हैरान हुए! उनको एक चौंकने की बात अनुभव हुई कि यह तो बड़ी चौंकाने वाली बात हो गई! हम झोपड़े में थे इसलिए दुख में थे। यह महल में था, यह आदमी कैसे दुख में था?

यह जान कर आप हैरान होंगे, अज्ञान में दुख की गठरी सबके ऊपर बराबर है। और यह असंभव है कि किसी के ऊपर छोटी हो और किसी के ऊपर ज्यादा हो। यह असंभव है। सबके ऊपर गठरी बराबर है। लेकिन अपनी गठरी दिखाई पड़ती है, दूसरे की गठरी दिखाई नहीं पड़ती। इसलिए लगता है कि मैं ही बोझ से दबा जा रहा हूं और मरा जा रहा हूं, बाकी सब लोग कितनी मौज में और आनंद में हैं। और हर आदमी से पूछ लें, यही कहेगा कि मैं ही मरा जा रहा हूं, बाकी दुनिया कितने आनंद में है। मुझे न मालूम क्या हो गया है! मेरे भाग्य खराब, मेरे कर्म खराब, मेरे पिछले जन्म खराब। फिर वह एक्सप्लेनेशंस खोजता है। और कोई न कोई नासमझ मिल जाते हैं समझाने वाले कि तुम इसलिए दुखी हो कि तुमने पीछे कुछ गड़बड़ किया, उसके पीछे कुछ किया। यानी यह बताने वाले लोग मिल जाते हैं कि जरूर तुम्हारी गठरी बड़ी है और दूसरों की छोटी है। लेकिन मैं आपसे निवेदन करता हूं, किसी की गठरी छोटी और किसी की बड़ी नहीं, अज्ञान में सबके ऊपर बराबर गठरियां हैं। हो ही नहीं सकता कि छोटी-बड़ी हों। क्योंकि अज्ञान बराबर है, अज्ञान छोटा और बड़ा नहीं होता। अज्ञान

होता है तो पूरा होता है, नहीं होता है तो पूरा नहीं होता। छोटा और बड़ा अज्ञान जैसी कोई चीज नहीं होती कि एक आदमी कम अज्ञानी और दूसरा आदमी ज्यादा अज्ञानी, यह सब मूढ़ता है। अज्ञान ऐसा खंड-खंड नहीं होता कि छोटा अज्ञान, ज्यादा अज्ञान, ये बड़े अज्ञानी, वे और बड़े अज्ञानी, ऐसा नहीं है। अज्ञान में जो है वह एक से ही अज्ञान में है। अज्ञान के खंड और टुकड़े नहीं होते।

और न ज्ञान के खंड और टुकड़े होते हैं। तो कोई छोटे ज्ञानी और बड़े ज्ञानी भी दुनिया में नहीं होते, कि महावीर छोटे ज्ञानी कि बुद्ध बड़े ज्ञानी। ऐसे बेवकूफ भी हैं जो इसका हिसाब लगाते हैं। ऐसी किताबें मेरे सामने भेजी गईं जिनमें हिसाब लगाया गया है कि सबसे ऊपर कौन पहुंचा। फिर उसके बाद कौन, फिर उसके बाद कौन, फिर उसके बाद कौन। ज्ञान में भी खंड नहीं होते, अज्ञान में भी खंड नहीं होते। या तो अज्ञान, या ज्ञान। और जहां अज्ञान है वहां दुख का बोझ समान है। और जहां ज्ञान है वहां आनंद की स्फुरणा समान है। वहां भी कोई फर्क नहीं।

उस दिन सुबह लोग चौंके और घबड़ाए जब देखा कि गठरियां बराबर हैं। यह पहला ही मौका था कि दूसरों की गठरियां भी दिखाई पड़ीं। अपनी गठरी का तो हमेशा बोझ था। पूरा गांव, पूरी मनुष्य-जाति का ही मामला था। सब लोग जाने लगे। तभी एक गांव में यह अफवाह भी उड़ी कि एक बूढ़ा फकीर नहीं जा रहा है। वह एक ही आदमी था पूरी मनुष्य-जाति में। दिमाग खराब रहा होगा उसका। राजा भी जा रहा है, दरिद्र से दरिद्र जा रहा है, धनी से धनी जा रहा है, तो क्या पागल हो गया! वह गांव के बाहर रहता था। जाती हुई मनुष्य-जाति के हर आदमी ने उससे कहा, पागल हुए हो! अभी भी वक्त है, जितना भी थोड़ा-बहुत बांध सको बांधो और आ जाओ, बाद में पछताओगे। अगर झूठ भी हुई अफवाह तो हर्जा क्या है? गांव के बाहर टहलना हो जाएगा, थोड़ा स्वास्थ्य को लाभ भी हो जाएगा। इससे हर्जा क्या हो जाएगा? आ जाओ, कोई फिक्र न करो, जितना बांध सको! वक्त ज्यादा नहीं, क्योंकि हम तो दिन भर से बांध रहे थे, तुमको वक्त तो अब थोड़ा ही है, सूरज डूबने को है, लेकिन जो भी बांध सको बांध लो और आ जाओ।

वह फकीर बैठा रहा और हंसता रहा। लोगों ने समझा कि दिमाग खराब है। इतनी सारी दुनिया जो कर रही है, यह अकेला आदमी छोड़ रहा है। लोग चले गए। समझा सकते थे, समझाया। कोई नाराज भी हुआ, किसी ने गुस्से में भी कहा कि गलती कर रहे हो, बाद में पछताओगे, फिर मौका भी नहीं है दूसरा चुनाव का, चूके तो चूके। लेकिन वह फकीर हंसता रहा और बैठा रहा और उसने कहा कि लौटते में भी मिलते जाना। लोगों ने कहा कि ठीक।

लोग गए। बारह बजे रात के सबने अपनी गठरियां खाली कर दीं। अब दूसरी दौड़ शुरू हुई। सब सुख बांधने लगे। आधी रात से सुबह तक का वक्त था, कौन कितना बांध ले, कौन कितना बांध ले! कोई चूक न जाए, क्योंकि चूक गया तो हमेशा के लिए, कोई भूल न जाए। तो लोग अपनी-अपनी धुन में हैं। किसी को किसी की फिक्र नहीं है, कौन क्या बांध रहा है। लोग अपना-अपना बांधने में हैं। फुर्सत किसको कि एक क्षण किसी से बात कर ले! क्योंकि उतनी देर में न मालूम कितना बांधने से चूक जाए। सुबह करीब आ रही है। समय था थोड़ा, सुख थे बहुत, बहुत मुश्किल पड़ गई, लेकिन किसी तरह बांधा। यह भी डर था कि कोई ज्यादा न बांध ले, कोई कम न बांध ले। यह भी घबड़ाहट थी बीच-बीच में आंख उठा कर देखते भी जाते थे कि दूसरों की गठरियों का क्या हाल है। लेकिन सब लगे हुए थे अपना-अपना बांधने में। सुबह सूरज होते-होते वे सब वापस लौटे, देख कर

हैरान हो गए, किसी की गठरी छोटी नहीं, किसी की बड़ी नहीं! बहुत परेशान हुए कि क्या सभी लोगों ने बराबर-बराबर सुख बांध लिए?

असल में, जहां अज्ञान है वहां समान वासनाएं हैं, कोई फर्क थोड़े ही है। समान इच्छाएं हैं, कोई फर्क थोड़े ही है। समान आकांक्षाएं हैं, कोई फर्क थोड़े ही है। करीब-करीब गठरियां बराबर थीं। बड़े चौंके, बड़े हैरान हुए! सब दुखी भी हुए कि हमने इतनी कोशिश की, फिर भी ज्यादा न बांध पाए! ये सारे लोग उतने ही बांध लिए, मामला क्या है? किसी ने किसी से पूछा भी नहीं, फिर भी सबने वही बांध लिया। लौटे, फकीर बैठा हुआ था अपने द्वार पर। लौटे तो उसने कहा कि बड़े उदास दिखाई पड़ते हो, लोगों से कहा।

लोगों ने कहा कि दौड़-धूप में थक गए।

हम तो सोचते थे तुम इतनी खुशियां लेकर आ रहे हो तो बड़े खुश आओगे, उसने कहा।

कोई खास खुशी की बात नहीं, लोगों ने कहा, क्योंकि उतनी खुशियां पड़ोसी भी ला रहे हैं। मामला सब खराब हो गया।

गठरी हमारी बड़ी होती तो कुछ खुशी भी हो सकती थी। यह तो मामला ही गड़बड़ है। सारे लोग उतना ही बांधे हुए चले आ रहे हैं। चित्त खिन्न हो गया है, कोई अर्थ न रहा बांधने का, दौड़ का। क्योंकि खुशी इसमें है कि पड़ोसी छोटा पड़ जाए, खुशी इसमें नहीं है कि खुशी मेरे भीतर हो। वे सब दुखी लौट रहे थे सुबह। एक तो रात भर की थकान, दिन भर का बांधना, फिर ढोना, फिर रात भर का बांधना, सुबह जब हुई तो सूरज... वे सब थके और उदास और रोते लौट रहे थे।

फकीर हंसने लगा, उसने कहा, इसीलिए तो मैंने कहा था कि लौटते में मुझसे मिलते जाना। और एकाध दिन फिर अगर समय मिले तो फिर मिलने आ जाना।

वे लोग अपने घरों में लौटे, कोई खास प्रसन्न न था। सुख आ गए थे--छोटे झोपड़ों की जगह बड़े मकान बन गए, घर आए तो देख कर चौकन्ने हो गए, जहां कंकड़-पत्थर पड़े थे वहां हीरे-जवाहरात थे, जहां छोटे झोपड़े थे वहां बड़े महल थे--लेकिन सबके ही ऐसे हो गए थे, इसलिए कोई खास खुशी भी न थी। भीतर अपने घरों में चले गए, उसी तरह जिस तरह अपने झोपड़ों में जाते थे, कोई फर्क नहीं पड़ा था। क्योंकि सभी के एक साथ बड़े हो गए थे इसलिए बड़े होने का कोई अर्थ नहीं रहा था। अनुपात वही था। घर जाकर सोचा था अब तो कोई दुख न होगा, लेकिन बहुत हैरान हुए, जो-जो सुख आए थे वे अपने साथ नये दुख ले आए थे जिनकी उन्होंने कल्पना न की थी।

दुख अलग थोड़े ही होता है सुख से, कि आप दुख को छोड़ आएं और सुख को ले आएं। वह तो सुख की छाया है, वह तो उसके पीछे खड़ा है, वह तो उसी सिक्के का दूसरा पहलू है।

तो वे जो-जो सुख ले आए थे, उनके साथ-साथ उन्हीं सुखों की चिंताएं और उन्हीं सुखों के छायारूप दुख ले आए थे। रात वे उतने ही बेचैन सोए जितने हमेशा सोते थे। क्योंकि दुख अब नये थे, परेशानियां, चिंताएं अब नई थीं। तब तो वे बहुत हैरान हुए और उन्होंने सोचा, क्या वह फकीर ही आदमी ठीक किया जो न गया और न आया! आने-जाने के श्रम से भी बचा। जाते वक्त भी हंस रहा था, लौटते वक्त भी हंस रहा था।

दूसरे दिन बहुत से लोग उससे मिलने गए और कहा कि हम तो बड़े हैरान हो गए हैं।

उसने कहा, तुमने व्यर्थ ही मेहनत की। क्योंकि जो आदमी दुख छोड़ना चाहता है और सुख पाना चाहता है, वह सुख तो पा ही नहीं सकता और दुख को छोड़ भी नहीं सकता। इन दो में से जो एक को भी बचा लेना

चाहता है, वह दूसरे को भी बचा लेगा। दूसरा जाएगा कहां? ये दोनों तोड़े नहीं जा सकते, संयुक्त हैं। और तुम्हें कोई खुशी मिली?

उन्होंने कहा, खुशी तो कुछ पता नहीं चलती। नये दुख आ गए हैं। नई पीड़ाएं, नई परेशानियां आ गई हैं। फिर उन्होंने पूछा, तुम भी हमें बताओ कि तुमने क्यों न बांधा?

उसने कहा, न तो मेरे पास चादर थी जिसमें मैं बांधता। पहली तो दिक्कत यही थी कि चादर नहीं थी जिसमें मैं बांधता। फिर चादर भी तुमसे मैं मांग ले सकता था, क्योंकि तुम सभी उस वक्त दानी हो जाते। क्योंकि भारी सुख आ रहे थे, तुम्हें कोई चिंता भी नहीं होती। एक चादर तो कोई भी मुझे दे देता। लेकिन उसमें क्या बांधता, यह भी दिक्कत थी। मेरे पास दुख भी नहीं थे बांधने को। फिर अगर खाली गठरी ही लेकर चला चलता तुम्हारे साथ, तो वहां से लौटते में क्या बांधता, मुझे कोई सुख की आकांक्षा नहीं है, मैं आनंद में प्रतिष्ठित हूं।

जो आदमी आनंद में है वह सुख नहीं चाहता है। जो आदमी दुख में है वही सुख चाहता है। और जो दुख में है वह कितना ही सुख चाहे, सुख मिल नहीं सकता, सुख के साथ दुख वापस लौट आते हैं। ऐसे दौड़ चलती है--दुखों को छोड़ने की, सुखों को लाने की, संग्रह की, गठरियां बांधने की। दौड़ते हैं, दौड़ते हैं, दौड़ते हैं और थकते हैं एक दिन और पाते हैं कि कुछ हुआ नहीं। किसलिए? वह भीतर है एक अभाव गहरा। दुख यह नहीं है कि बाहर अभाव है, दुख यह नहीं है कि बाहर चीजें कम हैं, दुख यह है कि भीतर संपूर्ण अभाव है।

इस तथ्य के प्रति जागना जरूरी है। जो मनुष्य इस तथ्य के प्रति जागता है कि मैं भीतर की एंप्टीनेस को, खालीपन को भरने की कोशिश में लगा हूं, उसे यह सोच लेना चाहिए कि क्या खालीपन कभी भरा जा सकता है? और ऐसा खालीपन जो भीतर है और भरने की ऐसी चेष्टा जो बाहर है! बाहर इकट्ठा करूंगा तो भीतर कैसे जाएगा? क्या एक भी वस्तु आज तक मनुष्य के भीतर जा सकी है?

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि इंजेक्शन किसी के शरीर में लगा दिया और दवा भीतर डाल दी। वह भी भीतर नहीं है। जहां तक वस्तु जा सके, समझ लेना वहां तक भीतर नहीं आया, वहां तक सब बाहर है। क्योंकि वस्तु बाहर है, वह जहां तक जा सके शरीर के भीतर, समझ लेना वहां तक बाहर है अभी।

मनुष्य के भीतर कुछ भी नहीं जा सका है। भीतर का अर्थ ही यह होता है जहां कुछ भी न जा सके। वह एनटाइटी जो आत्यंतिक रूप से आंतरिक है, उसमें कुछ भी बाहर से नहीं जा सकता। वही आत्मा है। उसको ही भरने की बाहर से कोशिश असफल हो जाती है।

फिर क्या हो? फिर क्या रास्ता है? ऊब जाते हैं लोग, घबड़ा जाते हैं लोग, फिर धन छोड़ते हैं, दुकान छोड़ते हैं, मकान छोड़ते हैं, साधु हो जाते हैं, संन्यासी हो जाते हैं। घबड़ा गए जीवन से, संसार से, इसकी निंदा करने लगे, कंडेमनेशन करने लगे कि यह गलत है, व्यर्थ है, इसमें दुख ही दुख है। तो हम तो अब मोक्ष की खोज में जाते हैं, ईश्वर की खोज में जाते हैं। वे फिर ईश्वर से और मोक्ष से अपने को भरने की कोशिश में लग जाते हैं। भराव का काम जारी रहता है। पहले वे धन से भरते थे, अब वे मोक्ष से भरते हैं--कि मोक्ष कैसे मिल जाए? ईश्वर कैसे मिल जाए? सत्य कैसे मिल जाए? मुक्त कैसे हो जाऊं? बंधन कैसे टूट जाएं? दुख से कैसे अलग हो जाऊं? लेकिन बुनियादी बात कायम है--वे जैसे हैं भीतर, उसके साथ वैसे ही होने को अभी भी राजी नहीं हैं। जो भीतर वह रिक्तता है, जो एंप्टीनेस है, उसके साथ वहीं होने को वे अभी भी राजी नहीं हैं। अभी भी वे मोक्ष जाना चाहते हैं, अभी भी वे स्वर्ग जाना चाहते हैं, अभी भी वे देवता होना चाहते हैं या कुछ और होना चाहते

हैं। अभी भी वे कुछ होना चाहते हैं। अभी बिकमिंग जारी है। अभी होने की दौड़ जारी है। पहले धन चाहते थे, अब मोक्ष चाहते हैं। धन की चाह मोक्ष बन गई, लेकिन चाह मौजूद है, डिजायर मौजूद है।

संसारी और संन्यासी, दोनों के भीतर चाह मौजूद है। और जहां चाह है वहां संसार है, जहां चाह है वहां संसार है। वे भी दौड़ते हैं, वे भी परेशान होते हैं, उनको भी कुछ मिलता नहीं, उनको भी कुछ मिल सकता नहीं। फर्क कोई भी नहीं पड़ा है। आप इधर धन को खोजते थे, वे उधर दूर के धन को खोजने लगे हैं। लेकिन भीतर के धन से न तो आप राजी थे, न वे राजी हैं।

मोक्ष खोजा नहीं जा सकता। वह आदमी जो अपने होने से, वह जो है, भीतर वह जो अभाव है, उस अभाव के साथ सहमत हो जाता है, उस अभाव में जीने को राजी हो जाता है, उस अभाव को ही होने को राजी हो जाता है, वह आदमी उसी क्षण मोक्ष को उपलब्ध हो जाता है। लेकिन जो भी उससे दौड़ रहा है--चाहे वह दौड़ कोई भी हो, पूरब में हो कि पश्चिम में हो, उससे फर्क नहीं पड़ता--वह अपने से भाग रहा है।

तो मैं आज की सुबह आपसे अंतिम रूप से यह कहना चाहता हूं कि भीतर जो अभाव है उससे भागें नहीं, भागने वाला कहीं भी नहीं पहुंचता है। उस अभाव में प्रवेश करें। भागने के लिए बाहर जाना पड़ता है अभाव से, प्रवेश के लिए भीतर जाना पड़ेगा अभाव में। उस नथिंगनेस में प्रवेश करें जो भीतर है। भागें नहीं, उसमें प्रवेश करें, रुकें, ठहरें और उसमें जाएं। और अपने नोबडी होने से जो सहमत हो जाता है, ना-कुछ होने से, वह आदमी धार्मिक है। उसके अतिरिक्त कोई आदमी धार्मिक नहीं है। जो अपने ना-कुछ होने से सहमत हो जाता है... ।

एक फकीर हुआ चीन में, लाओत्से। अनेक-अनेक लोगों ने उस समय के राजा से कहा कि लाओत्से से मिलें। बहुत-बहुत एक्सट्राआर्डिनरी, बहुत अदभुत, बहुत असाधारण व्यक्ति है। तो राजा भी प्रभावित हो गया होगा। जब अनेक-अनेक लोगों ने कहा तो कौन प्रभावित नहीं हो जाता है? जब बहुत-बहुत लोगों ने कहा तो राजा भी प्रभावित हो गया, वह भी गया मिलने के लिए। मिलने के लिए गया तो हैरान हुआ! लाओत्से उस समय गड्ढा खोद रहा था अपने झोपड़े के बाहर। साधारण आदमी था, बिल्कुल साधारण, कोई असाधारण बात न थी।

राजा ने अपने मित्रों से कहा, यह आदमी तो बिल्कुल ही साधारण मालूम होता है। इसमें तो कुछ असाधारण नहीं दिखाई पड़ता। न तो इसके सिर के आसपास प्रकाश का गोल घेरा है, जैसा तीर्थंकरों, अवतारों के आसपास होता है।

कभी हुआ नहीं, लेकिन न हो तो उनको हम सोचेंगे कि छोटा आदमी होगा।

उसने कहा, यह तो कोई इसके आसपास कोई प्रकाश का वृत्त नहीं दिखाई पड़ता, मंडल नहीं दिखाई पड़ता। सीधा-सादा सा किसान दिखता है। न इसकी वेशभूषा में कुछ विशेषता है, न इसकी देह में, शरीर में कोई विशेषता है। यह बात क्या, तुम कहां ले आए मुझे? यह बातचीत भी बड़ी साधारण करता है। कह रहा है कि अब मौसम अच्छा आ गया, अब बीज बोने का वक्त हो गया। यह क्या बातें कर रहा है! कोई अध्यात्म, कोई आत्मा, कोई ब्रह्म!

उसके मित्रों ने कहा, इस आदमी की यही खूबी है कि यह बिल्कुल साधारण है। और ऐसा आदमी होता ही नहीं जमीन पर--बिल्कुल साधारण। इसकी यही एक्सट्राआर्डिनरीनेस है। इसकी यही असाधारणता है कि यह बिल्कुल साधारण आदमी है। साधारण से साधारण आदमी भी साधारण नहीं होता। यह बिल्कुल ही साधारण है, इसमें कुछ भी विशेषता नहीं है।

उस राजा ने लाओत्से से पूछा कि तुम साधारण कैसे हुए?

उसने कहा, साधारण तो कोई हो नहीं सकता, क्योंकि होने की कोशिश करेगा तो असाधारण हो जाएगा। यह तो बात ही गलत पूछते हो। अगर कोई साधारण होना चाहेगा तो असाधारण हो जाएगा। अगर कोई सिंपल होना चाहेगा तो कठिन हो जाएगा। सरल होना चाहेगा तो कठिन हो जाएगा, कठोर हो जाएगा। होने की चेष्टा ही तो गड़बड़ है। उसने कहा, मैंने तो सब होने की चेष्टा छोड़ दी। मैं समझा कि व्यर्थ है, जो हूं वही ठीक है। मिट्टी तो मिट्टी, पत्थर तो पत्थर, पत्ता तो पत्ता, जो हूं सो ठीक है। मैंने तो समझा कि दौड़ कर कोई कहीं पहुंचा नहीं, सो दौड़ छूट गई। साधारण मैं हुआ नहीं; असाधारण होने की व्यर्थता मुझे दिखाई पड़ी। बस बात खत्म हो गई।

कैसे यह घटना घटी?

तो उसने कहा, मैं एक जंगल गया था, कुछ मित्र भी मेरे साथ थे। वहां जाकर मैंने देखा कि अनेक-अनेक दरख्तों को बढ़ई काटते हैं। मजदूर लगे हैं, दरख्त काटे जा रहे हैं। बड़े सीधे दरख्त थे आकाश को छूने वाले, बड़े मोटे दरख्त थे बिल्कुल सीधे, सुंदर, वे सब काटे जा रहे थे। एक दरख्त बहुत बड़ा था, इतना बड़ा कि उसके नीचे एक हजार बैलगाड़ियां ठहर सकती थीं, उसकी बड़ी घनी छाया थी। तो मैंने अपने मित्रों से कहा कि इस दरख्त को किसी ने नहीं काटा, यह क्या बात हो गई? सब दरख्त टूटे हैं, कटे हैं, काटे जा रहे हैं, मजदूर लगे हैं। इस दरख्त को कोई क्यों नहीं काटता?

तो मैंने उन बढ़इयों से जाकर पूछा कि इस दरख्त को क्यों नहीं काटते हो?

उन्होंने कहा, यह दरख्त बिल्कुल साधारण है। यह किसी मतलब का ही नहीं, यह बिल्कुल यूजलेस, वर्थलेस है। इसके पत्ते तक जानवर नहीं खाते, आदमी की तो बात दूर। इसकी लकड़ियां सब ऐसी टेढ़ी-मेढ़ी हैं कि उनसे कोई फर्नीचर नहीं बनता, कोई द्वार-दरवाजे नहीं बनते। यह ऐसा गड़बड़ दरख्त है कि इसको जलाओ तो इतना धुआं फेंकता है कि आग निकलती नहीं, धुआं ही धुआं निकलता है। यह बिल्कुल ही बेकार है, यह बिल्कुल ही साधारण है, इसलिए इसको कोई नहीं काटता, सो यह बड़ा से बड़ा होता जा रहा है। और ये दरख्त जो सीधे हैं और जिन्होंने आकाश छूने की कोशिश की, इनको काटते हैं। इनसे खंभे बनते हैं, इनसे और फर्नीचर बनता है।

तो लाओत्से ने कहा, बस, उसी दिन मैं समझ गया कि अगर बढ़ना है तो साधारण हो जाओ, नहीं तो काटे जाओगे। अगर कुछ होना है तो ना-कुछ हो जाओ, वर्थलेस, जिसका कोई मूल्य नहीं, कोई अर्थ नहीं, तुम्हें लोग भूल जाएंगे और तुम बढ़ोगे और तुम्हारे भीतर कुछ होगा विस्तार। और तुम्हारे नीचे हजारों बैलगाड़ियां ठहर सकेंगी और छाया ले सकेंगी।

उस व्यर्थ झाड़ के नीचे, जिसका कोई उपयोग नहीं, हजारों को छाया मिलने लगी। ये महावीर और बुद्ध व्यर्थ झाड़ हैं, जिनके नीचे हजारों को छाया मिली है। ये कोई एक्सट्राआर्डिनरी लोग नहीं हैं। ये कोई महान लोग नहीं हैं। अति साधारण जो हो गए, जिन्होंने सब महान होने की... क्योंकि महान होने की कोशिश मूर्खतापूर्ण है। बड़े होने की चेष्टा में छोटा आदमी बैठा हुआ है भीतर। जो छोटा है वही बड़ा होना चाहता है। ये राजी हो गए जो हैं उस बात से, छोड़ दी सारी फिक्र। जो हैं, सहमत हो गए। महावीर नंगे हैं तो नंगे से ही सहमत हो गए। काहे को कपड़ा ओढ़ें? काहे को ढांकें? सहमत हो गए इससे कि ठीक है, नंगा हूं तो नंगा ही सही। किससे छिपाऊंगा? अपने से तो छिपा नहीं सकता। कितने ही कपड़े पहनूं, मुझे तो पता ही है कि नंगा हूं। तो नंगे होने से ही राजी हो गए। जो है भीतर उससे राजी हो गए, भीतर के अभाव को स्वीकार कर लिया, तो एंबीशन चली गई। एंबीशन पैदा होती है, महत्वाकांक्षा पैदा होती है अभाव को स्वीकार न करने से, अस्वीकार

करने से। फिर हम कुछ होना चाहते हैं, कुछ बनना चाहते हैं। यह जो कुछ बनने, होने की दौड़ है, वह इस बात की सूचना है कि भीतर हम अभाव से राजी नहीं होना चाहते जो हम हैं ना-कुछ।

तो लाओत्से ने कहा कि उस दिन तो मुझे सब राज खुल गया, तब से हम उसी दरख्त जैसे हो रहे। फिर हमने सब दौड़ छोड़ दी। न हमें मोक्ष पाना है, न हमको परमात्मा पाना है, न हमको कुछ और पाना है। हम तो हो गए अति साधारण। भूख लगती है, खाना खा लेते हैं; प्यास लगती है, पानी पी लेते हैं; नींद आ जाती है, सो जाते हैं; नींद खुल जाती है, उठ जाते हैं। यही हमारी जिंदगी है। अब हमें कुछ और पाना नहीं, कुछ करना नहीं। कोई हमारी भीतर चाह नहीं कि हम यह हो जाएं और वह हो जाएं, कोई बिकमिंग नहीं। और लाओत्से ने कहा, जिस दिन से हमने सब दौड़ छोड़ दी उस दिन से हम हैरान हो गए, जिसको पाने के लिए दौड़ते थे वह मिल गया वहीं जहां हम थे! दौड़ते थे इसलिए खोते थे, रुक गए इसलिए पा लिया है।

जो दौड़ता है वह खो देता है, जो रुक जाता है वह पा लेता है। तो अगर सच में ही जीवन में कुछ होना है तो एक ही द्वार हैः ना-कुछ हो जाएं। यह कुछ होने का खयाल और पागलपन छोड़ दें, यह मैडनेस है। अभी जमीन पर पागलखानों में आप जाएं... और मुझे याद आ गई पागलखानों की, एक मित्र ने मुझे कल एक पत्र लाकर दिया और कहा कि उन्होंने एक सपना देखा कि मैं एक पागलखाने के बाहर बैठा हुआ कुछ मित्रों को समझा रहा हूं। मैं उनके सपने में मौजूद हुआ और एक पागलखाने के बाहर बैठा हुआ हूं, कुछ को समझा रहा हूं। फिर वह पागलखाने का पहरेदार कुछ प्रभावित हो गया और उसने कहा कि बेहतर हो महाराज, भीतर ही आ जाइए। तो मैं उन सारे मित्रों को जिनको समझा रहा था लेकर भीतर चला गया। और वहां पागल भी इकट्ठे हो गए और उनको समझाने लगा। इसलिए मुझे याद आ गया पागलखाना। उनको सपना बड़ा अच्छा आया। सच तो यही है, पागलखाने के बाहर ही समझा रहे हैं, बल्कि ठीक ही समझिए कि भीतर ही समझा रहे हैं।

जहां मन जो है बहुत महत्वाकांक्षा से भरा है वहां आदमी पागल है, अस्वस्थ है। कुछ होने चाहने की जो दौड़ है वह अस्वस्थ है, ज्वरग्रस्त है। वही आदमी स्वस्थ है जो कुछ होना नहीं चाहता और जिसने अपने भीतर के ना-कुछ होने को स्वीकार कर लिया। यही ध्यान है, यही समाधि है। इस अभाव को, इस नथिंगनेस को भीतर राजी हो जाना कि ठीक है, मैं नहीं कुछ हूं। मैं कुछ भी नहीं हूं, इस बोध को सहजता से उपलब्ध हो जाना, सब कुछ पा लेना है।

लेकिन इसे कैसे? क्या कोशिश करिएगा, प्रयास करिएगा, एफर्ट करिएगा कि मैं ना-कुछ हो जाऊं? फिर नहीं होगा मामला, फिर तो गड़बड़ हो गया, फिर तो आप कुछ होने लगे। नहीं, समझिए, सोचिए, देखिए कि दौड़ से कहीं कोई पहुंचता है? मैं कहीं पहुंचा? इतने दिन तो हम सब दौड़ लिए हैं, कहीं पहुंचे? इतना तो हमने संग्रह किया, कुछ भरा? अगर थोड़ा-बहुत भी भर गया हो तो विश्वास बढ़ेगा कि और ज्यादा संग्रह करेंगे तो और भर जाएगा। अगर बिल्कुल भी न भरा हो इतने संग्रह से, तब तो समझ जाइए कि जब इतने संग्रह से बिल्कुल भी नहीं भरा, रत्ती भर भी, तो फिर और कितने ही संग्रह से भी कैसे भरेगा? आखिर वह तो इसी की गणना आगे होती चली जाएगी।

अगर एक तराजू पर हम कोई वजन रखें और तराजू जरा भी हिल जाए, तो भी यह विश्वास पड़ता है कि और वजन रखेंगे तो एकदम तराजू जमीन से लग जाएगा। लेकिन हम वजन कितना ही रखें और तराजू बिल्कुल न हिले और वैसा ही बना रहे, तब तो खयाल आना चाहिए कि शायद तराजू हिलने वाला नहीं है। तो हमने जब एक सेर रखा और नहीं हिला, तो दो सेर रखा तो नहीं हिला, तो हजार मन रखेंगे तो भी कैसे हिलेगा। क्योंकि हजार मन दो सेर की ही तो बढ़ी हुई संख्या है।

एंड्रू कारनेगी जब मरा तो एक अरब डालर छोड़ गया। लेकिन वह भी अतृप्त मरा, क्योंकि उसकी योजना दस की थी। वह भी हो सकता है, वह दस भी छोड़ सकता है। उसके बच्चों ने दस कर ही लिए होंगे। लेकिन वे भी अतृप्त मरेंगे, उनकी योजना सौ की हो गई होगी।

योजना इसलिए आगे बढ़ जाती है कि तराजू हिलता नहीं, हम जितना रख देते हैं, व्यर्थ हो जाता है। हम सोचते हैं, और ज्यादा रखें। लेकिन थोड़ी समझ हो तो यह दिखाई पड़ना चाहिए--तराजू जब इतना रखने से हिला भी नहीं, तो तराजू कितना भी रखने से हिलने वाला नहीं है।

यह बोध--भीतर के अभाव का बोध और बाहर के भरने की कोशिश की व्यर्थता का बोध जिस मनुष्य को जितना स्पष्ट होता चला जाता है, उतना ही उस मनुष्य के जीवन में अपने आप दौड़ क्षीण होती चली जाती है। तब वह जीता है, दौड़ता नहीं। तब वह होता है, होने की कोशिश नहीं करता। तब वह न धन चाहता है, न धर्म चाहता है। न वह संसार जीतना चाहता है, न मोक्ष जीतना चाहता है। वह कुछ पाने की उसकी इच्छा, धीरे-धीरे जैसे-जैसे वह समझता है कि पाना और इच्छा मूढ़तापूर्ण है, अपने आप यह अंडरस्टैंडिंग, यह समझ, यह अवेयरनेस, क्षीण करती जाती है। एक दिन वह पाता है कि वह खड़ा रह गया है और वहां कोई दौड़ नहीं, कोई चाह नहीं, वहां कोई होने की इच्छा नहीं, वहां भीतर के अभाव से वह सहमत हो गया।

एक बार ऐसा हुआ, एक आदमी रात अंधेरे में पहाड़ से निकलता था, पैर फिसल गया और गिर पड़ा। अंधेरी रात थी, तो उसने एक झाड़ी को जोर से पकड़ लिया। नीचे अंधेरा था, खड्ड था बड़ा, डर था कि हाथ छूटे कि मरा! तो पकड़े रहा, पकड़े रहा... लेकिन सर्द रात, अंधेरी रात, नीचे भयंकर खड्ड, अतल, कहां गिरेगा, हड्डी-पसली सब टूट जाएंगी, सब समाप्त हो जाएगा, मिट जाएगा... तो पकड़े है। लेकिन कितनी देर पकड़ेगा! हाथ जकड़ने लगे सर्दी के कारण, जड़ होने लगे। तब उसे लगने लगा कि आज तो सुबह होनी कठिन है, आज तो मरना ही पड़ेगा! लेकिन फिर भी कोशिश तो करूं, सुबह तो हो जाए किसी तरह। तो शायद कोई निकले, शायद कोई आ जाए, और कोई बचने का उपाय हो जाए। सुबह हो जाए तो कम से कम मैं भी देख सकूं कि मामला क्या है? कहां हूं? कैसे उलझा हूं? इस अंधकार में न कोई दिखाई पड़ता है। चिल्लाया बहुत, लेकिन वहां कौन सुनता था! खुद की ही आवाजें पहाड़ी से गूंजती थीं और लौट आती थीं। वहां कोई था ही नहीं जो सुनता।

और करीब-करीब हम सबकी आवाजें पहाड़ी से गूंजती हैं और लौट आती हैं। कोई सुनने वाला नहीं किसी की। कोई है ही नहीं। अंधेरा है चारों तरफ, अटके हैं, पकड़े हैं, कहीं मर न जाएं।

लेकिन आधी रात होते-होते असंभव हो गया, हाथ जड़ हो गए, सरकने लगे, डाल छूटने लगी। ताकत इतनी देर जितने जोर से लगाई थी उतनी जल्दी खत्म हो गई। अब वह घबड़ाया कि मरने के सिवाय कोई उपाय न रहा। अब राम, कृष्ण, बुद्ध, जिसको मानता होगा उसका जप करने लगा। मुझे पता नहीं किसको मानता था। जरूर किसी को मानता ही रहा होगा। क्योंकि ऐसे आदमी कहां हैं जो किसी को न मानते हों! जो किसी को नहीं मानता वही स्वयं को जान पाता है। तो किसी न किसी को मानता होगा। तो जपने लगा होगा मंत्र-तंत्र, क्योंकि दुख में ये सब याद आते हैं। अब मौत करीब थी तो वह सब याद करने लगा कि हे बचाओ! हे चतुर्भुज भगवान! या कुछ और--कितने मुंह वाले, हाथ वाले--अब मुझे बचाओ! अब मुझे सहारा दो! चिल्लाने लगा होगा।

लेकिन अंधकार घुप्प, वहां कौन सुनने को है। आखिर हाथ उसके छूट गए! छूटते से समझा कि गया! लेकिन हैरान हो गया, हाथ छूटते से पाया कि वह जमीन पर खड़ा है! वहां कोई गड्ढा था ही नहीं, वह अंधेरे की वजह से गड्ढा मालूम हो रहा था। अंधेरे की वजह से! वहां कोई गड्ढा ही न था, वहां तो समतल जमीन थी। वह

व्यर्थ ही इतना कष्ट उठाया। वह किसी भी क्षण छोड़ देता तो जमीन पर खड़ा हो जाता। और व्यर्थ उसने चतुर्भुज भगवान को भी कष्ट दिया। कहीं सो रहे होंगे, उनको भी दिक्कत हुई होगी, उनको भी चिल्लाया, उनको भी परेशान किया। नीचे जमीन थी, वहां कोई गड्ढ था ही नहीं। अंधकार के कारण गड्ढ दिखाई पड़ता था। अंधेरे के कारण भय था, भय के कारण गड्ढा था। गड्ढे में मरने का डर था इसलिए अटका था, जो भी हाथ में था उसी से अटका था। लेकिन ताकत क्षीण होगी एक क्षण और गिरना पड़ेगा। मौत तो हरेक को गड्ढे में गिरा देगी। कितना ही पकड़े रहें! और जो पकड़े रहेगा वह व्यर्थ दुख उठाता रहेगा। लेकिन जब मौत गड्ढे में गिरा ही देगी, तो जो जानते हैं वे खुद छोड़ देते हैं और गिर लेते हैं। और गिरते से ही पाते हैं कि वहां भूमि है।

जो मनुष्य अपने भीतर के अभाव में छलांग लेने का साहस करता है, सोच लेता है कि अगर मिटना ही है तो मृत्यु तो मिटा ही देगी, तो ठीक है अपने भीतर ही मिट जाएं, यह भी एक सौभाग्य होगा अपने हाथ से मिट जाना। मौत तो आती ही है, लेकिन वह हमारे ऊपर आती है, हमारा संकल्प नहीं होता वह, वह हमारा कृत्य नहीं होता। वह हमारी इच्छा नहीं होती, उसमें हम नहीं होते, वह हम पर आती है बाढ़ की तरह और हमको डुबाती और बहा ले जाती है। तो जब मौत ले ही जाने वाली है, तो जो जानते हैं वे इसके पहले कि मौत ले जाए, खुद अपने भीतर मौत को वरण करने को तैयार हो जाते हैं। छलांग लेते हैं भीतर के गड्ढ में। और जिन्होंने छलांग ली वे हैरान हो गए--वहां अभाव नहीं है, वहां आत्मा है। वह अज्ञान की वजह से, भय की वजह से अभाव मालूम होता है, खड्ड मालूम होता है। जिस भगवान को चिल्ला रहे थे बचाने के लिए, वहीं नीचे मौजूद था। अगर छोड़ दें तो वह भूमि है।

परमात्मा तो भूमि है। जब हम सब छोड़ देते हैं तो वही शेष रह जाता है। जो सब छोड़ देने पर शेष रह जाता है वही आत्मा है, वही परमात्मा है। उसे चिल्लाने और पुकारने की जरूरत नहीं है। ये बचकानी बातों की कोई जरूरत नहीं है। और ऐसा कोई सुनने वाला कहीं बैठा हुआ नहीं है। अभाव में जीने को जो राजी हो जाता है वह आत्मा को उपलब्ध होता है, वह परमात्मा को उपलब्ध होता है। दो ही दिशाएं हैं--बाहर भरो या भीतर खाली हो जाओ।

तो आज सुबह की चर्चा में मैं यह कहना चाहता हूंः इस शून्य को, इस अभाव के बोध को उपलब्ध हों। समझें, देखें, पहचानें, सोचें, विवेक का उपयोग करें। तो दिखाई पड़ेगाः अभाव से भागा नहीं जा सकता। तो फिर क्या विकल्प है? विकल्प है कि अभाव से सहमत हो जाऊं, ना-कुछ होने को राजी हो जाऊं। फिर, जो ना-कुछ होने को कभी भी राजी हुआ है, वह सब कुछ को पा लेता है। यह शून्यता है, यह सरलता है, यह संन्यास है, यह है त्याग। भरने की कोशिश छोड़ देना त्याग है। यह है संन्यास, दौड़ने से रुक जाना संन्यास है। यह है धर्म, मंदिर में जाना नहीं है, अभाव में जाना।

और ये तीन सूत्र मैंने तीन दिन में आपसे कहे--अज्ञान का बोध, रहस्य का बोध, अभाव का बोध। अगर इन तीन सूत्रों पर किसी भी जीवन में कोई भी दृष्टि आ जाए तो क्रांति सुनिश्चित है। और उस क्रांति के बाद बिल्कुल एक नया मनुष्य उसके भीतर से जन्म ले लेगा, एक बिल्कुल दूसरा मनुष्य, एक बिल्कुल ही दूसरा मनुष्य--अति साधारण, अति सरल। लेकिन अति साधारण और अति सरल से असाधारण और न कोई है और न हो सकता है। और वैसे व्यक्तित्व के विरोध में कोई नहीं रह जाएगा। उसे काटने की, तोड़ने की कोई जरूरत और कारण नहीं रह जाता। वैसे व्यक्ति की छाया में अनेकों को छाया मिलेगी और आश्रय मिल सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर बहुत बड़ी संभावना लिए है--बहुत बड़ी संभावना, बहुत बड़ा वृक्ष जो विकसित हो सकता है। लेकिन महत्वाकांक्षा उसे विकसित नहीं होने देती, दौड़ उसे विकसित नहीं होने देती। जो सब भांति रुकता है, उस विकास को उपलब्ध होता है।

अंतिम रूप से यह कहता हूंः अगर जीवन में कुछ पाना है तो रुक जाएं, अगर कहीं पहुंचना है तो ठहर जाएं। ठहर जाना, रुक जाना, थिर हो जाना, भीतर सारी चीजों का नया उदघाटन, नया आविर्भाव शुरू हो जाता है। धार्मिक चेतना ऐसे ही पैदा होती है। धार्मिक चेतना का ऐसे ही जन्म होता है।

हमारे टीका लगाने वाले और जनेऊ पहनने वाले धार्मिक से मेरा मतलब नहीं है--कि एक आदमी जनेऊ पहने हुए है तो धार्मिक है, एक आदमी टीका लगाए हुए है तो धार्मिक है, एक आदमी चोटी रखे हुए है तो धार्मिक है। कैसी चाइल्डिश, बचकानी बातें हैं! इनसे कहीं कोई धार्मिक होता है? नहीं, धार्मिक होना बड़ी क्रांति है, बहुत बड़ी रेवोल्यूशन है, बहुत बड़ा आमूल परिवर्तन है व्यक्तित्व का। वह तो सब भांति बाहर से मुक्त होकर भीतर प्रवेश है।

अगर यह हो सके... यह हो सकता है। अगर यह एक व्यक्ति के जीवन में भी कभी हुआ है तो हरेक के जीवन में हो सकता है। तो मैं यह आशा करता हूं कि यह हो सकता है, यह होगा। उस दिशा में थोड़ी आंखें खोलनी जरूरी हैं।

अब हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे। आज का ध्यान कल से और भी सरल हो जाना चाहिए।

नौवां प्रवचन

राजनीति से छुटकारा

मेरे प्रिय आत्मन्!

शिविर का अंतिम दिन है और इसलिए यहां से विदा होने के पूर्व कुछ थोड़ी सी जरूरी बातें आपसे कह देनी आवश्यक हैं। लेकिन इसके पहले कि मैं उन्हें कहूं, एक-दो प्रश्न और, जो महत्वपूर्ण हैं और छूट गए हैं, उनकी भी चर्चा कर लेनी उचित होगी। फिर भी कुछ प्रश्न छूट जाएंगे, तो मैं निवेदन करूंगा कि जिन प्रश्नों के उत्तर दिए गए हैं, जिनकी चर्चा की गई, यदि उनको ठीक से सुना गया होगा, तो जो प्रश्न छूट जाएं उनका भी विचार आपके भीतर पैदा हो सकता है।

बहुत से प्रश्न समान हैं, थोड़ा-बहुत भेद है, और जो-जो उनमें प्रतिनिधित्व करने वाले प्रश्न थे उनको चुन कर मैंने अपने विचार आपसे कहे।

सबसे पहले एक सबसे फिजूल प्रश्न है उसको ले लूं, ताकि उससे छुटकारा हो जाए। वह तीन दिन से मैं उसे फेंक देता हूं, वह फिर कोई लिख कर भेज देता है। फिर उसे अलग कर देता हूं, फिर भेज देता है। फिर जब ऐसा लगा होगा कि मैं फेंकता ही रहूंगा तो फिर मुझसे आज दो-चार लोग आकर निवेदन भी कर गए हैं कि उसका तो उत्तर मुझे देना ही है। तो उसकी ही सबसे पहले--ताकि उससे निपटारा भी हो जाए, उस झंझट से छुट्टी भी हो और फिर हम और कुछ जो जरूरी बातें हैं वे कर सकें। वैसे मैं फिजूल कह रहा हूं, वैसे कई को लगेगा कि बहुत सार्थक है। मुश्किल से कोई होगा जिसको फिजूल लगेगा। क्योंकि हमारे मस्तिष्क जिस भांति काम करते हैं, उन्होंने बहुत सी निरर्थक बातों को बहुत सार्थक और बहुत सी सार्थक बातों को बिल्कुल निरर्थक समझ रखा है।

पूछा है कि राजनीति के संबंध में मेरे क्या विचार हैं?

उसे मैं टालता रहा, क्योंकि सच में तो मैं राजनीति कुछ जानता नहीं हूं तो विचार क्या होंगे! कोई संबंध मेरा नहीं है। लेकिन आप सबका संबंध है, इसलिए सोचता हूं कि विचार कर लेना उस पर भी उपयोगी होगा। चूंकि कुछ जानता नहीं हूं इसलिए बहुत तो नहीं कह सकता, एक छोटी सी कहानी कहता हूं। और उसी कहानी से आप समझने की कोशिश करना कि मेरे क्या विचार हो सकते हैं। वह कहानी भी कल किसी ने मेरे पास भेज दी है, उसी के आधार पर कहता हूं। वह प्रश्न भी किसी का है, वह कहानी भी किसी ने भेजी है। हालांकि कहानी ठीक वैसी नहीं बची है जैसी उन्होंने भेजी है। कहानी में बहुत फर्क करने पड़े हैं और तब वह आपके काम की हो पा रही है।

एक अमावस की रात में, घनी अंधेरी रात में एक उल्लू एक दरख्त पर बैठा हुआ था। अंधेरी रात थी, दो छछूंदर दरख्त के नीचे किसी पोल में रहते होंगे, वे निकले--डरे हुए से, कोई उन्हें देख न ले, कोई पकड़ न ले। तभी उल्लू ने ऊपर से कहा, हू!

छछूंदरों ने समझा कि यह उल्लू क्या अंग्रेजी बोलता है! हालांकि कोई भी उल्लू देशी भाषा बोलना पसंद नहीं करते हैं। इसलिए शक में कोई आश्चर्य नहीं था। छछूंदरों ने भी बहुत से अखबार देखे और पढ़े-सुने थे,

इसलिए थोड़ी-बहुत अंग्रेजी वे भी समझने लगे थे। उन्होंने समझा कि यह पूछ रहा है--कौन? हू? उन्होंने समझा कि यह पूछ रहा है--कौन? छछूंदर तो वैसे ही डरे हुए थे निकलते वक्त, तो उन्होंने देखा कि अंधेरे में भी कौन देख रहा है और किसने पूछा--कौन? तो उन्होंने पूछा, क्या आप हमको देख रहे हैं?

उल्लू ने फिर कहा, हू! लेकिन छछूंदरों ने समझा कि यू! यानी उन्होंने कहा कि तुम! अरे हम तुम्हें भलीभांति पहचानते हैं। छछूंदर तो बहुत घबड़ा गए, उन्होंने कहा, क्या आपको अंधेरे में दिखाई पड़ता है? अंधेरे में तो किसी को दिखाई नहीं पड़ता। सतयुग में ऐसा होता था कि कुछ लोगों को अंधेरे में दिखाई पड़ता था। सर्वज्ञ होते थे, त्रिकालज्ञ होते थे, अंधेरे में देखने वाले लोग होते थे। अब यहां कलियुग में कहां कि अंधेरे में किसी को दिखाई पड़ता हो।

उल्लू ने फिर कहा, हू! छछूंदरों ने समझा कि वह कह रहा है टू। वे दो ही छछूंदर थे, वे तो घबड़ा गए। कहा कि निश्चित ही कोई सतयुगी पुरुष, शायद धर्म की हानि हो गई है, इस कारण अवतार लेकर मौजूद हुए हैं। उन्होंने साष्टांग दंडवत किया और कहा, कितना अच्छा न हो कि आप सब राज्य का कारोबार सम्हाल लें। यहां तो सब गड़बड़ हुआ जा रहा है। सब राज्य का कारोबार आप सम्हाल लें तो कितना अच्छा न हो। वे गए और उन्होंने अपने राज्य के एक मंत्री को जाकर निवेदन किया कि अब राज्य के नेता के लिए किसी को खोजने की जरूरत नहीं। एक ऐसे प्रज्ञाशील व्यक्तित्व को हम खोज कर आ गए हैं, जो न केवल अंग्रेजी बोलना जानता है, बल्कि अच्छी अंग्रेजी बोलना जानता है। और अगर भारत के बाहर जाए तो बहुत से विश्वविद्यालय उसको डॉक्ट्रेट देंगे। इसमें कोई शक-शुबहा नहीं। और भी बड़े आश्चर्य की बात है, उसे अंधेरे में दिखाई पड़ता है। और जिसको अंधेरे में दिखाई पड़ता है उसके हाथ में अगर मुल्क हो, तो सब ठीक अपने आप हो जाएगा। अंधेरे में दिखाई पड़ना!

मंत्री अभी-अभी चुना गया एक गधा था। ऐसा नहीं था कि उस राज्य में और लोग नहीं थे, लेकिन गधों के अतिरिक्त कोई मंत्री बनने को राजी नहीं हो रहा था। वह अभी नया-नया चुना गया था। पढ़ा-लिखा तो नहीं था। इससे बहुत प्रभावित हुआ कि अंग्रेजी भी बोलते हैं! और अंधेरे में भी देखते हैं! तब तो जरूर मैं चलूं, उनकी परीक्षा कर लूं। और अगर यह बात सच है तो क्यों न उन्हें राष्ट्रपति बना दिया जाए!

वह गया। और अपने दो-चार साथी मंत्रियों को भी ले गया। उसी वक्त वे गए। राज्य के लिए नेता की जरूरत थी। उन्होंने जाकर पूछा, कुछ प्रश्न पूछे। और प्रश्न पूछने में उनको वैसे ही दिक्कत हो गई जैसे मंत्रियों को किसी का इंटरव्यू लेते वक्त होती है कि क्या पूछें? उत्तर देने वाले की दिक्कत तो दूर है, पूछने वाले की भी दिक्कत होती है कि क्या पूछें? तो उन्होंने जाकर पूछा, क्या आप बता सकते हैं हमारे पास कितने छछूंदर बैठे हैं? उल्लू ने कहा, हू! छछूंदरों ने कहा, देखो, कहा न उसने टू। गधे ने कहा कि उत्तर तो बिल्कुल साफ दिया। अंधेरे में इसको दो छछूंदर दिखाई पड़ रहे हैं! गधे ने पूछा, हमारे कितने कान हैं? उसने कहा, हू! फिर उन्होंने समझा टू। कहा कि इसको क्या अंधेरे में दिखाई पड़ता है? और अंग्रेजी भी बिल्कुल साफ बोलता है! तो उन्होंने प्रार्थना की कि आप कृपा करें और राष्ट्रपति हो जाएं। उल्लू तो राजी हो गया। कौन उल्लू राजी नहीं हो जाएगा? वे वापस लौटे। कहा कि कल दोपहर में आपका स्वागत होगा, ओथ सेरेमनी हो जाएगी। वहीं फिर आपको शपथ-ग्रहण हो जाएगी। कल दोपहर आप आ जाएं। राजभवन आ जाएं।

वे गए तो रास्ते में एक लोमड़ी मिल गई। वह पत्रकार थी। उससे उस मंत्री महोदय ने कहा कि राष्ट्रपति तो मिल गए, अब देश का भाग्य सुधर जाएगा। न केवल वे अंग्रेजी जानते हैं बल्कि अच्छी तरह अंग्रेजी जानते हैं। हो सकता है इंग्लैंड में ही पैदा हुए हों। यह भी हो सकता है कम से कम एंग्लो इंडियन हों। अगर यह भी न

हो तो इतना तो तय है कि वे किसी साहबी खानदान से संबंधित हैं। और फिर बड़ी बात यह है कि उनको रात में दिखाई भी पड़ता है। और मुल्क में अंधेरा भारी है, जिसको रात में दिखाई पड़ता है वह तो नौका खेकर ले जाएगा। यही तो कठिनाई है कि रात में किसी को दिखाई नहीं पड़ता और मुल्क में घना अंधेरा है।

लेकिन लोमड़ी तो पत्रकार थी, उसने जरा तर्क उठाया। उसने कहा, इसका क्या पक्का भरोसा कि जिसको रात में दिखाई पड़ता हो उसको दिन में भी दिखाई पड़ता होगा?

लेकिन सभी गधे हंसने लगे, वह जो सब मंत्रिमंडल था वह सभी हंसने लगा। उसने कहा, कैसे पागल हो! यह तो बिल्कुल इल्लाजिकल बातें कह रहे हो। अरे यह तो सीधा तर्क है, जिसको रात तक में दिखाई पड़ता है उसको दिन में दिखाई नहीं पड़ेगा? यह तो सीधे तर्क की बात है, सीधा गणित है। जिसको रात में दिखाई पड़ता है उसको दिन में तो दिखाई पड़ेगा ही! जिसको रात तक में दिखाई पड़ता है! वे सब हंसने लगे। उस लोमड़ी की बात तो टाल दी गई।

दूसरे दिन उल्लू सज-धज कर चला। लेकिन तब दोपहर थी, सूरज ऊपर था। अब उसकी बड़ी मुसीबत हो गई। उसको दिखाई नहीं पड़ रहा है, वह किसी तरह चल रहा है। तो वह धीरे-धीरे चलने लगा। क्योंकि टकराने का डर था। लेकिन लोगों ने कहा कि ठीक राष्ट्रपति चुना, कितनी गंभीर चाल से चल रहा है! कितना! जरूर कुलीन है, किसी अच्छे परिवार का है। चाल देखो कितनी धीमी, आहिस्ता, कितनी गंभीर! वह गंभीर चलता हुआ, वह अपना डरा हुआ है, क्योंकि अब उसको दिन में दिखाई नहीं पड़ रहा है। बहुत थोड़ी-थोड़ी झलक मिल रही है। आंखें उसकी झपी जाती हैं। लेकिन वह अपने को साधे हुए है, संयत, चाल-ढाल सब संयत। वह वहां पहुंचा। उन सबने स्वागत किया, उसको मालाएं पहनाईं। वह उस राज्य का राष्ट्रपति हो गया।

अब वह राष्ट्र को आगे बढ़ाने के लिए आगे बढ़ा। अब दिन का वक्त था, दोपहर तेज थी। देर तक धूप पड़ने से और देर तक फूलमालाएं और फोटोग्राफर और उनके फ्लैश लाइट की चमक, उल्लू बड़ी दिक्कत में पड़ गया। उसको अब कुछ भी नहीं सूझ रहा था। अब वह किसी तरह वापस भाग कर अपने घर पहुंचना चाहता था कि इस झंझट से छूटें और अंधे होने का पता न चल जाए। वह चला। तो अब जब नेता चला तो उसके पीछे सारे जानवर चले, सारा मंत्रिमंडल चला।

अब उल्लू को कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है, वह गड्ढों में गिर पड़ता है, रास्तों के उलटे-सीधे हिस्सों पर पहुंच जाता है। तो उसके पीछे उचक-उचक कर वे जानवर भी गिरने लगे जिनको दिखाई पड़ता था। क्योंकि जहां नेता जाता है वहां अनुयायी जाते हैं। और जब उनको चोटें लगने लगीं और टांगें टूटने लगीं तो उस उल्लू ने कहा, घबड़ाओ मत, यह तो बनते हुए राष्ट्र में अनेक मुसीबतें आती ही हैं और अनेक चोटें आती हैं। और जो शहीद हो जाएंगे वे भी न घबड़ाएं। शहीदों की कब्रों पर जुड़ेंगे मेले, उनकी चिताओं पर मेले भरेंगे। इसलिए बिल्कुल मत घबड़ाओ।

लेकिन कुछ मरने लगे पक्षी, पशु। कुछ तो छोड़ कर भाग गए। लेकिन मंत्रिमंडल के लोग कहां जाते भाग कर? क्योंकि जो मंत्रिमंडल में घुस जाए उसके लिए बाहर दुनिया में फिर भागने की कोई जगह नहीं रह जाती। वह तो और ऊपर ही ऊपर जा सकता है, पीछे नहीं जा सकता। तो उनको तो राष्ट्रपति के पीछे जाना ही था, तो वे तो गए। गिरने लगे, लेकिन जहां राष्ट्रपति जाए वहीं उनको जाना पड़े। अनेक उसमें मर गए। तो राष्ट्रपति ने कहा, घबड़ाओ मत, तुम्हारी पत्नियों को महावीर चक्र प्रदान करेंगे, बड़े-बड़े ओहदे देंगे, तुम्हारे फोटो लगाएंगे, देश में तुम्हारा नाम होगा। देश ऐसे ही तो बनता है। जब कोई मरेगा नहीं, तो देश कुर्बानी नहीं देगा तो बनेगा

कैसे? बात तो ठीक ही थी। और विश्वास से पीछा करो, क्योंकि विश्वास फलदायी है। सोच-विचार की इसमें जरूरत नहीं है। सोच-विचार सभी करने लगेंगे तो मुल्क मर जाएगा। सोच-विचार मुझ पर छोड़ो।

आखिरकार किसी तरह वे उस रास्ते पर पहुंच गए जो राजपथ था, कांक्रीट का बना हुआ बड़ा पथ था, तो सब मंत्रिमंडल के लोग प्रसन्न हुए कि देखो आखिर, मुसीबत झेलीं, परेशानी हुई, कई योजनाएं गुजरीं, लेकिन फिर आ तो गए। हम आ तो गए आखिर राजपथ पर। जब नेता का पीछा किया, कुर्बानी दी, तो आखिर राजपथ मिल गया, आ गए राजपथ पर। वह राजपथ पर बीच में उल्लू चलने लगा, आसपास उसका मंत्रिमंडल, और बाकी जनता तो घसिट कर पीछे रह गई थी, अब तो कोई साथ नहीं था। जनता में से तो अब कोई साथ नहीं था। मंत्रिमंडल था और राष्ट्रपति थे और वे चले जा रहे थे। और तभी उधर से जोर से एक ट्रक कोई पचास-साठ मील की रफ्तार से आता हुआ, लेकिन उल्लू को तो दिखाई नहीं पड़ता था, वह तो अकड़ से चला जा रहा था, उसके आसपास मंत्रिमंडल चल रहा था। लेकिन गधों को दिखाई पड़ता था। गधों ने कहा कि देखिए तो, सामने से ट्रक आ रहा है! आप डरते नहीं हैं? बड़े निर्भय मालूम होते हैं! उल्लू ने कहा, हू! कौन डरता है!

अब जब नेता न डरे तो अनुयायी क्यों डरे। और डरे तो फिर मंत्रिमंडल में रहने की गुंजाइश न रह जाए। तो वे बढ़ते ही गए, बढ़ते ही गए... आखिर वह ट्रक ऊपर ही आ गया और वह राष्ट्रपति और मंत्रिमंडल, सब उसके नीचे दब गए। वे सब लाशें पड़ी रह गईं। पीछे ट्रक पर, जहां लिखा रहता है हार्न प्लीज, वहां यह नहीं लिखा था, वहां लिखा थाः समय, काल।

यह छोटी सी कहानी मैं कहता हूं। और जिंदगी की धुरी करीब-करीब ऐसी मूर्खताओं के किनारे पर बहुत अनेक-अनेक सदियों से घूमती रही है और आज भी घूम रही है। और ऐसा नहीं कि किसी एक देश का ऐसा दुर्भाग्य हो, सारी दुनिया का ऐसा दुर्भाग्य है।

जब तक राजनीति सर्वोपरि है तब तक मनुष्य के जीवन में न तो आनंद हो सकता है, न शांति हो सकती है। क्योंकि राजनीति सर्वोपरि होने का अर्थ यह हैः इस जीवन में, इस जगत में जो सबसे ज्यादा एंबीशस होंगे, सबसे ज्यादा महत्वाकांक्षी होंगे, वे सबसे ऊपर पहुंच जाएंगे। और जो महत्वाकांक्षी है उसे अपने अतिरिक्त किसी से कोई मतलब नहीं होता। वह बातें सब करता हो, उसे अपने अतिरिक्त और कोई मतलब नहीं होता। अगर उसे अपने अतिरिक्त किसी और से मतलब होता तो वह महत्वाकांक्षी नहीं हो सकता था। महत्वाकांक्षी व्यक्ति हिंसक होता है। और महत्वाकांक्षी व्यक्ति अंधा होता है। महत्वाकांक्षा अंधा कर देती है। वह कुछ भी कर सकता है। और दुनिया भर में राजनीति इतनी प्रभावी है, उसकी वजह से जो जितने ज्यादा महत्वाकांक्षी लोग हैं, जितने अंधे, जितने क्रूर और कठोर और जितने हिंसक, वे सब ऊपर पहुंच जाते हैं। और वे जीवन को परिचालित करते हैं। और उनके द्वारा जीवन चलता है। इसीलिए तो आए दिन रोज युद्ध हो जाते हैं दुनिया में।

तीन हजार साल में साढ़े चार हजार युद्ध हुए हैं मनुष्य-जाति के इतिहास में! यह घबड़ाने वाला तथ्य नहीं मालूम होता आपको? यह कितना आश्चर्यजनक है! तीन हजार साल के इतिहास में साढ़े चार हजार लड़ाइयां! मसलन रोज ही लड़ाई चलती रही है। और जिन दिनों लड़ाई नहीं चली है वे दिन शांति के दिन नहीं रहे हैं, नई लड़ाई की तैयारी के दिन रहे हैं। उस वक्त नई लड़ाई की तैयारी चलती रही है। मतलब आदमी के इतिहास को दो हिस्सों में बांटा जा सकता है--लड़ने का समय और लड़ाई की तैयारी करने का समय। शांति जैसी चीज आज तक न जानी गई है और न परिचित है। और यह कैसे हुआ है?

राजनीति केंद्र है, तब तक ऐसा ही होगा! क्योंकि जो महत्वाकांक्षी है वह हिंसक है, और जो हिंसक है वह अंततः युद्ध में ले जाएगा। चाहे किसी भी मार्ग से जाए, राजनीति की अंतिम परिणति युद्ध है। राजनैतिक दृष्टि

ही युद्ध और हिंसा पर खड़ी होती है। अगर मेरे भीतर राजनीतिज्ञ होता है तो मैं कोशिश करता हूं कि आपको पीछे हटाऊं और मैं आगे जाऊं। मेरे मन में पोलिटीशियन का अर्थ यह नहीं है कि जो आदमी सिर्फ इलेक्शन लड़ता है वह राजनीतिज्ञ हो गया। मेरी दृष्टि में राजनीतिज्ञ से अर्थ है वह व्यक्ति जो दूसरों को पीछे हटा कर खुद आगे जाना चाहता है--किसी भी दिशा में। जब सारी दुनिया इस भांति पोलिटिकल माइंडेड होगी, इस भांति महत्वाकांक्षी होगी और दूसरों को पीछे हटा कर आगे जाना चाहेगी, तो दुनिया में संघर्ष और कलह अनिवार्य है। व्यक्ति यही करते हैं, समाज यही करते हैं, राष्ट्र यही करते हैं, तो फिर युद्ध अनिवार्य है।

धार्मिक व्यक्ति राजनैतिक व्यक्ति से ठीक दूसरे छोर पर खड़ा होता है। धार्मिक व्यक्ति का आग्रह यह है, उसकी सारी की सारी चिंतना और साधना यह है कि वह अंतिम होने में समर्थ हो जाए। और राजनैतिक की चिंतना यह है कि वह प्रथम होने में समर्थ हो जाए।

क्राइस्ट ने एक वचन कहा है--कि धन्य हैं वे जो अंतिम होने को राजी हैं।

और सच में ही वे धन्य हैं जो अंतिम होने को राजी हैं। सुबह मैंने जो चर्चा की है, अंतिम होने का मेरा क्या अर्थ है, वह आपके खयाल में आया होगा। धार्मिक व्यक्ति वह है जो अंतिम होने को राजी है। और राजनैतिक चित्त वह है जो प्रथम होने के सिवाय तृप्त नहीं हो सकता। और जब तक दुनिया में इस प्रथम होने की दौड़ होगी, तब तक जीवन में कैसे शांति हो सकती है?

राजनीति एक घातक रोग की तरह मनुष्य-जाति को पकड़े रही है। और अभी भी पकड़े हुए है, और रोज बढ़ती जा रही है। बहुत खतरा है। या तो राजनीति बचेगी या मनुष्य-जाति बचेगी। ये दो विकल्प हैं। अगर दुनिया में राजनैतिक चित्तता इसी तरह बढ़ती गई तो मनुष्य नहीं बचेगा। मनुष्य नहीं बच सकता है। राजनीति का अंतिम परिणाम तीसरा महायुद्ध होगा। अंतिम परिणाम! और वह युद्ध होगा विश्वयुद्ध। वह कोई ऐसा युद्ध नहीं होगा कि छोटी-मोटी लड़ाई जो हम पहले लड़ते रहे। वह राणाप्रताप और शिवाजी वाली लड़ाई होने वाली नहीं है--कि निकाल ली तलवार और खड़े हो गए। वह अब नहीं होने वाली है। घोड़े-वा.ेडे पर बैठ कर बहादुरी दिखाने का मौका नहीं है। वह लड़ाई तो बहुत अदभुत होने वाली है। वह तो होने वाली है टोटल वार, वह तो होगा समग्र युद्ध। उसमें तो सारी मनुष्य-जाति नष्ट होगी।

और राजनीतिज्ञ सारी दुनिया में कहते हैं, हम शांति चाहते हैं।

बड़ी आश्चर्य की बात है! राजनीतिज्ञ शांति चाह ही नहीं सकता। क्योंकि जो शांति चाहता है उसे अंतिम खड़े होने के लिए राजी होना चाहिए। जो युद्ध चाहता है उसे प्रथम होने की चेष्टा करनी चाहिए। प्रथम होने की चेष्टा करने वाला कहे कि हम शांति चाहते हैं, तो झूठी बातें कर रहा है। वह वैसी ही बातें कर रहा है जैसे मछलियां पकड़ने को कांटे पर आटा लगा देते हैं। आटा खिलाने की इच्छा नहीं होती मछलियों को, कांटे में फंसाने की इच्छा होती है। लेकिन बिना आटे के मछली नहीं फंसती है। बिना शांति की बातें किए युद्ध नहीं होता है।

सारे दुनिया के सभी युद्ध शांति के नाम पर लड़े गए हैं। शांति चाहते हैं इसलिए युद्ध करेंगे। शांति के लिए युद्ध? अब हिंदुस्तान में ही लोग कहते थे कि अहिंसा की रक्षा के लिए हिंसा! ऐसी मूढ़ताएं भी कहते वक्त कोई संकोच नहीं होता है। शांति के लिए युद्ध! सब युद्ध अच्छे-अच्छे नामों के लिए लड़े गए हैं, क्योंकि आटा लगाना पड़ता है कांटे में तब मछली फंसती है। और राजनीतिज्ञ समझता रहा है मनुष्य के मन को। अच्छे-अच्छे नारे और पीछे युद्ध। अच्छे-अच्छे नारे और पीछे हिंसा। अच्छी-अच्छी बातें और पीछे सब विकृति आगे आ जाती है।

अब वह विकृति इतनी बड़ी हो गई है कि हो सकता है पूरी मनुष्य-जाति समाप्त हो जाए। तो क्या अब और भी मनुष्य-जाति को राजनीतिज्ञ रहने की सुविधा है?

मेरी दृष्टि में नहीं। क्योंकि राजनीति अंतिम मृत्यु हो जाएगी। वक्त आ गया कि मनुष्य का राजनीति से छुटकारा होना चाहिए। उसका चित्त राजनैतिक नहीं रह जाना चाहिए। जीवन में बड़े मूल्य हैं! संस्कृति के मूल्य हैं, धर्म के मूल्य हैं, साहित्य के मूल्य हैं, काव्य के, प्रेम के, सौंदर्य के। सब क्षीण हो गए हैं, सबके ऊपर राजनीतिज्ञ बैठ गया है। सब विलीन हो गया है, सबके केंद्र में राजनीति हो गई है।

यह तो ऐसे ही हुआ है जैसे कि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व में आत्मा तो गौण हो जाए, हाथ-पैर प्रमुख हो जाएं, तो व्यक्तित्व कुरूप और अपंग हो जाएगा। मनुष्य के जीवन में राजनीति केंद्रीय नहीं हो सकती है। नहीं उसे होना चाहिए। धर्म केंद्रीय होगा, होना चाहिए। सौंदर्य केंद्रीय होना चाहिए, काव्य की अनुभूतियां केंद्रीय होना चाहिए। राजनैतिकता केंद्रीय नहीं होना चाहिए।

लेकिन इस समय तो--और इस समय क्या, हमेशा से राजनीति प्रमुख रही है, केंद्रीय रही है। क्या यह संभव नहीं है कि राजनीति केंद्र से हटाई जाए? अगर नहीं हटाई गई तो मनुष्य मिटेगा। और दो ही विकल्प हैं--या तो राजनीति जाए या मनुष्य जाएगा।

मुझे दिखाई पड़ता हैः राजनीति जानी चाहिए। कैसे जाएगी? जाएगी नॉन-एंबीशस माइंड के पैदा होने से, गैर-महत्वाकांक्षी मन के पैदा होने से राजनीति जाएगी, नहीं तो नहीं जाएगी। इस राजनीति, उस राजनीति की बात नहीं कह रहा हूं कि यह पार्टी और वह पार्टी और यह दल और वह दल। नहीं, मैं तो राजनीति की बात कह रहा हूं, किसी राजनैतिक दल की बात नहीं कह रहा हूं। दुनिया से राजनैतिक चित्तता जानी चाहिए और दुनिया में धार्मिक चित्तता आनी चाहिए।

और दोनों का केंद्र क्या है?

राजनैतिक चित्तता का केंद्र है महत्वाकांक्षा और धार्मिक चित्तता का केंद्र महत्वाकांक्षा नहीं है।

इसी संदर्भ में एक प्रश्न और पूछा है कि अगर महत्वाकांक्षा न हो तब तो फिर जीवन में विकास ही नहीं होगा!

निश्चित ही, अभी जिस विकास को हम जानते हैं वह महत्वाकांक्षा के ही द्वारा होता है। लेकिन सच में क्या जीवन का विकास हुआ है? कभी यह सोचा कि विकास हुआ है? क्या विकास हुआ है? आपके पास अच्छे कपड़े हैं हजार साल पहले से, इसलिए विकास हो गया? या कि आपके पास बैलगाड़ियों की जगह मोटरगाड़ियां हैं, इसलिए विकास हो गया? क्या आप झोपड़ी की जगह बड़े मकान में रहते हैं सीमेंट-कांक्रीट के, इसलिए विकास हो गया?

यह विकास नहीं है। मनुष्य के हृदय में, मनुष्य की आत्मा में कौन सी ज्योति जली है जिसको हम विकास कहें? कौन सा आनंद स्फूर्त हुआ है जिसको हम विकास कहें? मनुष्य के भीतर क्या फलित हुआ है, कौन से फूल लगे हैं जिसको हम विकास कहें? कोई विकास नहीं दिखाई पड़ता। कोई विकास नहीं दिखाई पड़ता, एक कोल्हू का बैल चक्कर काटता रहता है अपने घेरे में, वैसे ही मनुष्य की आत्मा चक्कर काट रही है। हां, कोल्हू के बैल पर कभी रद्दी कपड़े पड़े थे, अब उस पर बहुत मखमली कपड़े पड़े हैं। लेकिन इससे विकास नहीं हो जाता। या कोल्हू

के बैल पर हीरे-जवाहरात लगा कर हम कपड़े टांग दें, तो भी विकास नहीं हो जाता। कोल्हू का बैल कोल्हू का बैल है और चक्कर काटता रहता है। और उस चक्कर काटने को ही वह सोचता हैः मैं बढ़ रहा हूं, आगे बढ़ रहा हूं।

मनुष्य आगे नहीं बढ़ रहा है। इधर हजारों साल से उसमें कोई परिलक्षण ज्ञात नहीं हुए जिससे वह आगे गया हो--कि उसकी चेतना ने नये तल छुए हों, कि उसकी चेतना ऊर्ध्वगामी हुई हो, कि उसकी चेतना ने आकाश की कोई और अनुभूतियां पाई हों, कि उसकी चेतना पृथ्वी से मुक्त हुई हो और ऊपर उठी हो, कि वह परमात्मा की तरफ गया हो--यह कोई विकास नहीं हुआ है।

महत्वाकांक्षा अगर है तो इस तरह का विकास हो ही नहीं सकता। विकास हो सकता है कि मकान बड़े होते चले जाएंगे। और यह घड़ी आ सकती है कि मकान इतने बड़े हो जाएं कि आदमी को खोजना मुश्किल हो जाए, वह इतना छोटा हो जाए। और यह घड़ी आ सकती है कि सामान इतना ज्यादा हो जाए कि आदमी अपने ही हाथ के द्वारा बनाए गए सामान के नीचे दबे और मर जाए। और यह हो सकता है कि एक दिन हम इतना विकास कर लें, यह तथाकथित विकास, कि हमारे पास सब हो, सिर्फ आदमी की आत्मा न बचे।

एक बार ऐसा हुआ। एक नगर में आग लग गई थी और एक भवन जल रहा था लपटों में। और भवनपति बाहर खड़ा था और रो रहा था और आंसू बह रहे थे, और उसकी समझ में भी नहीं आ रहा था कि क्या करे, क्या न करे! लोग जा रहे थे और सामान ला रहे थे। एक संन्यासी भी खड़ा हुआ देख रहा था। जब सारा सामान बाहर आ गया, तो सामान लाने वाले लोगों ने पूछा, कुछ और बच गया हो तो बताएं? क्योंकि अब अंतिम बार भीतर जाया जा सकता है, उसके बाद फिर आगे संभावना नहीं है, लपटें बहुत बढ़ गई हैं, यह आखिरी मौका है कि हम भीतर जाएं।

उस भवनपति ने कहा, मुझे कुछ भी सूझ नहीं पड़ता, तुम एक दफा और जाकर देख लो, कुछ हो तो ले आओ।

वे भीतर गए, भीतर से रोते हुए वापस लौटे। भीड़ लग गई, सबने पूछा, क्या हुआ? उनसे कुछ कहते भी नहीं बनता है। वे कहने लगे, हम तो भूल में पड़ गए। हम तो सामान बचाने में लग गए, मकान मालिक का इकलौता लड़का भीतर सोया था, वह जल गया और समाप्त हो गया। सामान हमने बचा लिया, सामान का मालिक तो खत्म हो गया।

वह संन्यासी वहां खड़ा था, उसने अपनी डायरी में लिखाः ऐसा ही इस पूरी दुनिया में हो रहा है लोग सामान बचा रहे हैं और आदमी समाप्त होता जा रहा है। और इसको हम विकास कहते हैं!

यह विकास नहीं है। अगर यही विकास है तो परमात्मा इस विकास से बचाए। यह विकास नहीं है, यह कतई विकास नहीं है। लेकिन महत्वाकांक्षा यही कर सकती थी--सामान बढ़ा सकती थी, शांति नहीं बढ़ा सकती थी; शक्ति बढ़ा सकती थी, शांति नहीं बढ़ा सकती थी। महत्वाकांक्षा दौड़ा सकती थी, कहीं पहुंचा नहीं सकती थी। फिर क्या हो? अगर महत्वाकांक्षा न हो तो क्या हो?

महत्वाकांक्षा नहीं, प्रेम होना चाहिए। किससे प्रेम? अपने व्यक्तित्व से प्रेम, अपने व्यक्तित्व के भीतर जो छिपी हुई संभावनाएं हैं उनको विकास करने से प्रेम, अपने भीतर जो बीज की तरह पड़ा है उसे अंकुरित करने से प्रेम। प्रतियोगिता और महत्वाकांक्षा दूसरे की तुलना में सोचती है और विकास की ठीक-ठीक दशा दूसरे की तुलना में नहीं सोचती, दूसरे के कंपेरिजन में नहीं सोचती, अपने विकास की, अपने बीजों को परिपूर्ण विकसित करने की भाषा में सोचती है। इन दोनों बातों में फर्क है।

अगर मैं संगीत सीख रहा हूं, इसलिए सीख रहा हूं कि दूसरे जो संगीत सीखने वाले लोग हैं उनसे आगे निकल जाऊं। मुझे संगीत से न कोई प्रेम है, न अपने से कोई प्रेम है। मुझे दूसरे संगीत सीखने वालों से घृणा है, ईर्ष्या है। न तो मुझे अपने से प्रेम है और न मुझे संगीत से प्रेम है। मुझे दूसरे संगीत सीखने वालों से घृणा है, ईर्ष्या है, जलन है। उनसे मैं आगे होना चाहता हूं। लेकिन क्या यही एक दिशा है सीखने की? और क्या ऐसा व्यक्ति संगीत सीख पाएगा जिसके मन में ईर्ष्या है, जलन है?

नहीं, संगीत के लिए तो शांत मन चाहिए, जहां ईर्ष्या न हो, जहां जलन न हो। संगीत नहीं सीख पाएगा। और सीखेगा तो वह झूठा संगीत होगा। उससे उसके प्राणों में न तो आनंद होगा, और न उसके प्राणों में फूल खिलेंगे और न शांति आएगी।

नहीं, एक और रास्ता भी है कि मुझे संगीत से प्रेम हो। संगीतज्ञों से ईर्ष्या और नफरत और घृणा नहीं, प्रतियोगिता नहीं, प्रतिस्पर्धा नहीं, काम्पिटीशन नहीं, वरन मुझे संगीत से प्रेम हो और अपने से प्रेम हो। और मेरे भीतर संगीत की जो संभावना है वह कैसे बीज अंकुरित होकर पौधे बन सकें, कैसे संगीत के फूल मेरे भीतर आ सकें, इस दिशा में मेरी सारी चेष्टा हो। यह नॉन-काम्पिटीटिव होगी, इसमें कोई प्रतियोगिता नहीं है किसी और से। मैं अकेला हूं यहां और अपनी दिशा खोज रहा हूं जीवन में। किसी से संघर्ष नहीं है मेरा, मैं किसी को आगे-पीछे करने के खयाल में और विचार में नहीं हूं।

जब तक दुनिया में इस भांति की प्रेम पर आधारित जीवन-दृष्टि नहीं होगी तब तक दुनिया में राजनीति से छुटकारा नहीं हो सकता। राजनीति एंबीशन का अंतिम चरम परिणाम है। महत्वाकांक्षा सिखाएंगे, राजनीतिज्ञ पैदा होगा। महत्वाकांक्षा सिखाएंगे, कभी भी अहिंसक चित्त पैदा नहीं होगा, हिंसक चित्त पैदा होगा। यह सारी दुनिया की जो राजनीति फलित हुई है, यह हमारी गलत शिक्षा का फल है जिसने महत्वाकांक्षा सिखाई है। गलत सभ्यता और गलत संस्कृति का फल है, जो सिखाती है--दूसरों से आगे बढ़ो, दूसरों से आगे निकलो, दूसरों से पहले हो जाओ।

नहीं, सिखाना यह चाहिए कि तुम पूरे बनो, तुम पूरे खिलो, तुम पूरे विकसित हो जाओ। दूसरे से कोई संबंध नहीं सिखाया जाना चाहिए। दूसरे से कोई वास्ता भी क्या है। और इस दूसरे के साथ संघर्ष में, इस दूसरे के साथ प्रतियोगिता में अक्सर यह होता है कि जो हम हो सकते थे वह हम नहीं हो पाते हैं। क्योंकि हमें इस तरह के ज्वर पकड़ जाते हैं जो हमारे प्राणों की प्रतिभा नहीं थी, जो हमारे प्राणों के भीतर की वास्तविक पोटेंशियलिटी नहीं थी, जिसके बीज ही हमारे भीतर नहीं थे वह महत्वाकांक्षा में हमारे भीतर पकड़ जाते हैं। तब परिणाम यह होता है कि जो एक अदभुत बढ़ई हो सकता था, वह एक मूर्ख डाक्टर होकर बैठ जाता है। तब परिणाम यह होता है कि जो एक अदभुत डाक्टर हो सकता था, वह किसी अदालत में सिर पचाता है और वकील हो जाता है। तब परिणाम यह होता है कि सब गड़बड़ हो जाता है। जो जहां हो सकते थे वहां नहीं हो पाते और जहां नहीं होने चाहिए थे वहां हो जाते हैं। और जिंदगी सब बोझिल और भारी और कष्टपूर्ण हो जाती है।

जीवन के परम आनंद के क्षण वे हैं जब कोई व्यक्ति उस काम को खोज लेता है जो उसके भीतर की संभावना है। तब उसके व्यक्तित्व में एक निखार, एक प्रकाश, एक प्रफुल्लता आ जाती है।

अभी तो सारी दुनिया परेशान है और बोझिल है, और बोर्ड है और ऊबी हुई है। उसका एकमात्र कारण हैः हर आदमी गलत जगह है। हर आदमी गलत जगह है, मुश्किल से कभी कोई आदमी ठीक जगह हो पाता है। और

क्यों? क्योंकि महत्वाकांक्षा ऐसे ज्वर पैदा कर देती है दूसरों को देख कर कि मैं यह भूल ही जाता हूं, मुझे यह खयाल ही नहीं आता कि मैं क्या होने को पैदा हुआ था।

हर आदमी कुछ होने को पैदा हुआ है। हो सकता है वह एक बहुत अच्छे ढंग का बढ़ई होने को पैदा हुआ हो, या एक बहुत अच्छे ढंग का चमार। लेकिन महत्वाकांक्षा की दुनिया राष्ट्रपति को आदर देती है, चमार को तो आदर देती नहीं। इसलिए सभी राष्ट्रपति होना चाहते हैं, चमार कौन होना चाहेगा? तो जो एक कुशल कारीगर होने को पैदा हुआ था, वह अकुशल राजनीतिज्ञ होकर समाप्त हो जाता है।

नहीं, जिंदगी में प्रत्येक व्यक्ति के भीतर, उसके व्यक्तित्व के भीतर कुछ होने की संभावना है। प्रत्येक के भीतर! और जिस दिन भी दुनिया में नॉन-एंबीशस समाज, गैर-महत्वाकांक्षी समाज के आधार रखे जा सकेंगे, उस दिन दुनिया में बहुत लोग प्रफुल्लता को उपलब्ध होंगे, बहुत लोग आनंद को उपलब्ध होंगे, बहुत लोग प्रसन्नता को उपलब्ध होंगे, बहुत लोगों के जीवन में प्रसाद दिखाई पड़ेगा। क्योंकि वह जो काम जिसको लेने... जो उनके भीतर था, जो निकलेगा और अभिव्यक्ति होगी तो वे कुछ खिलेंगे। जैसे हर फूल खिल जाता है तो एक खुशी और सुवास देने लगता है।

लेकिन मनुष्य-जाति में बहुत कम फूल खिलते हैं। खिल ही नहीं सकते। महत्वाकांक्षा ने सारी जड़ें तोड़ डाली हैं, सारा जीवन नष्ट कर दिया है।

अगर आप अपने बच्चों को प्रेम करते हैं तो एक कृपा करना, उनको महत्वाकांक्षा मत सिखाना। इससे बड़ी शत्रुता और कोई नहीं हो सकती कि कोई मां-बाप अपने बच्चों को महत्वाकांक्षा सिखाएं। क्योंकि महत्वाकांक्षा उनके जीवन को नष्ट कर देगी, जहर की भांति उनके जीवन को नष्ट कर देगी। और यह जहर अंतिम रूप में राजनीति में प्रकट हो रहा है।

राजनीति से मनुष्य-जाति का छुटकारा चाहिए। यह कैसे होगा?

यह होगा धार्मिक चित्तता जितनी विकसित हो, तो होगा। तो ज्यादा इस पर और नहीं कुछ कह सकूंगा। धार्मिक चित्त कैसे विकसित हो, उसका तो मैंने तीन दिन में आपसे विचार किया है, उन आधारों पर धार्मिक चित्त विकसित हो सकता है।

एक नये मनुष्य को जरूर ही पैदा होना चाहिए, क्योंकि जीवन बहुत बोझिल और बहुत दुखी है। और वह नया मनुष्य किसी बिल्कुल नये आधारों पर विकसित हो सकता है। इन पुरानी परिपाटियों पर नहीं, इन लीकों पर नहीं जो अब तक चलती रही हैं। ये सारी लीकें खतरनाक हैं और टूट जानी चाहिए, और ये सारी कड़ियां जला देने योग्य हैं। और मनुष्य का अतीत शुभ नहीं रहा है, सुंदर नहीं रहा है; लेकिन उसका भविष्य सुंदर हो सकता है।

लेकिन आकस्मिक रूप से नहीं हो जाएगा यह। यह कोई नियति नहीं है कि अपने आप हो जाएगा। यह कोई आकाश के ऊपर से आदेश नहीं आएंगे कि अब सब ठीक हो जाएगा। हमें बहुत कुछ बदलाहट करनी होगी। मनुष्य के चित्त को जिन ईंटों से हम बनाते हैं वे बदलनी होंगी। मनुष्य को जो हम ढांचे देते हैं वे बदलने होंगे। और अगर एक सुंदर और स्वस्थ भविष्य लाना है तो हमें पूरी-पूरी परंपराएं फिर से विचार कर लेनी होंगी। उनमें बहुत कुछ कचरा है जो जला देने योग्य है, बहुत कुछ गलत है, बहुत कुछ बीमार है, जो नष्ट कर देने योग्य है। और जब तक इतना विद्रोह और विचार नहीं है तब तक हम इसी कोल्हू के बैल की भांति अपने बच्चों को भी पेरेंगे, उनके बच्चों को वे पेरेंगे। और दुनिया में एक अदभुत बीमारी, महारोग चल रहा है हजारों साल से, जो शायद आगे भी चलता रहेगा। इसे तोड़ने के लिए कुछ चिंतन और विचार आवश्यक है।

मैंने जो कहा उस पर विचार करेंगे। मानने को मैं नहीं कहता हूं कि मैंने जो कहा उसे मान लेंगे। मैंने जो कहा उस पर विचार करेंगे तो शायद खयाल में आ सकता है। निश्चित ही, बहुत नई बात विचार करते वक्त कठिन मालूम पड़ती है, चौंकाती है, बंधी परिपाटी से दूर होने से मन को हिलाती है। लेकिन थोड़ा सोचेंगे, विचार करेंगे--एक कारण से सिर्फ--अगर आज का समाज इतना गंदा, गर्हित और निंदित है, तो जरूर इसकी बुनियादें कहीं न कहीं गलत होंगी। अगर बुनियादें सही होतीं तो यह समाज ऐसा कैसे हो सकता था! यह समाज इतना गलत है, जरूर इसकी बुनियादें गलत होंगी। उन बुनियादों पर पुनर्विचार करने की जरूरत है।

छोटे प्रश्न और ले लेता हूं। किसी-किसी समय ऐसा प्रतीत होता है कि मन दो हैं--एक मन कहता है कि यह रास्ता है, दूसरा कहता है कि वह रास्ता है। आप अपने विचार प्रकट कीजिए।

मन तो एक ही है, लेकिन मनुष्य ने मन को जिस भांति विकसित किया है वह विकास की पद्धति गलत होने से मन अपने भीतर ही विभाजित हो गया है। मनुष्य का मन तो वही कहता है जो अत्यंत प्राकृतिक है, लेकिन मनुष्य की सभ्यता उस प्रकृति पर रोक लगाती है और कहती है कि यह गलत है, यह मत करना। बचपन से हम बच्चे को सिखाना शुरू करते हैं--यह गलत है, यह मत करना; यह बुरा है, यह मत करना; यह पाप है, इससे अहित होगा, इससे नरक होगा, इससे दंड मिलेगा। तो बच्चे के भीतर एक तो प्रकृति है, जो कहती है कि यह ठीक है; और एक उसको सिखाई गई शिक्षाएं हैं, वे कहती हैं कि यह ठीक नहीं है, दूसरी बात ठीक है। परिणाम यह होता है कि हमेशा मन में द्वंद्व खड़ा रहता है। हमेशा! कोई भी बात आ जाए, मन में द्वंद्व खड़ा हो जाएगा। क्योंकि प्रकृति कुछ और कहती है और ये सिखाई हुई बातें कुछ और कहती हैं। इस भांति मनुष्य के भीतर द्वंद्व बढ़ता जाए तो मनुष्य पागल भी हो सकता है। पागल इसी वजह से होता है। इसलिए जितनी सभ्यता बढ़ती है, उतना पागलपन बढ़ता है। जितनी सभ्यता बढ़ती है, उतने विक्षिप्त लोग बढ़ते हैं।

अभी मैं सुनता था कि न्यूयार्क के कुछ हिस्सों में तो हर एक मकान के बाद मनोचिकित्सक का दूसरा मकान और तख्ती लगी है। एक वक्त ऐसा आएगा, वहां के एक मनोवैज्ञानिक ने कहा है, पचास साल बाद न्यूयार्क में आधे मकान सामान्य लोगों के, आधे मकान मन की चिकित्सा करने वाले डाक्टरों के होंगे। कभी ऐसा भी वक्त आ सकता है कि सभी मकान उनके हों।

यदि विकास होगा तो ऐसा ही होगा। सभ्यता जितनी बढ़ी है, अगर उसकी ठीक-ठीक गणना स्पष्ट हो तो आप घबड़ा जाएंगे। जितने असभ्य लोग हैं, उनमें पागल होने की संख्या उतनी ही कम है। जितनी असभ्य जातियां हैं, उनमें पागल होने की मात्रा बहुत कम है। और फिर जैसे सभ्यता बढ़ती है, उतनी ही पागल होने की संख्या बढ़ती चली जाती है।

अमेरिका के हिसाब से, इस समय अमेरिका में चालीस प्रतिशत लोग ठीक मानसिक स्थिति में नहीं हैं। चालीस प्रतिशत! बाकी बीस प्रतिशत लोग किसी भी दिन अपने मानसिक संतुलन को खो सकते हैं। साठ प्रतिशत हुए! शेष जो चालीस प्रतिशत हैं, जरूरी नहीं है कि वे सब स्वस्थ हों, उनमें से बहुत से लोग ऐसे भी हो सकते हैं जो डाक्टरों के पास कभी गए नहीं हैं। अमेरिका इस समय सबसे बड़ा सभ्य मुल्क है, अगर इसका कोई भी कारण पूछना चाहे तो मैं कहूंगा, क्योंकि पागलों की संख्या वहां सर्वाधिक है। जिस दिन कोई मुल्क पूरा का पूरा पागल हो जाएगा वह सभ्यता की चरम स्थिति होगी। ऐसा विकास हो रहा है। यह क्या हो रहा है?

असभ्य आदमी के ऊपर, प्रकृति के ऊपर बहुत कम नियंत्रण होते हैं। जो उसे ठीक-ठीक भीतर से लगता है वह करता है। क्रोध आता है तो क्रोध करता है, गुस्सा आता है गुस्सा करता है, हत्या करने का मन होता है तो हत्या करता है। उसे जो ठीक लगता है। प्रेम होता है तो प्रेम करता है। उसे जो ठीक लगता है वह करता है, जो उसकी प्रकृति कहती है।

हम कहेंगे, यह तो बड़ी पाश्विक स्थिति हो गई, पशु की स्थिति हो गई।

निश्चित ही! यह स्थिति शुभ नहीं है। इस स्थिति को बदलना जरूरी है। तो हम क्या करें? तो हम यह सिखाते हैं कि क्रोध बुरा है, क्रोध को पी जाओ, क्रोध करो मत। हम कहते हैं कि अगर तुम्हें किसी से प्रेम हो जाए तो अपने मन को संयम में रखो, प्रेम करो मत। हम ये बातें सिखाते हैं, ताकि आदमी पशु न रह जाए।

पशु होने से तो बच जाता है, लेकिन फिर पागल हो जाता है। अभी तक दो ही विकल्प हैं--या तो पशु या पागल। ठीक आदमी हम कैसे पैदा करें? जो थोड़े बीच में रहते हैं वे आधे पशु होते हैं, आधे पागल होते हैं, इसलिए चलते चले जाते हैं, उनको ज्यादा दिक्कत नहीं आती। या ऊपर से तो सभ्य होते हैं और भीतर से सभ्य नहीं होते। तो भी चल जाता है। तो तीसरा विकल्प हैः पाखंड, कि दिखाओ ऊपर से कि मैं बहुत अच्छा आदमी हूं, भीतर से जो प्रकृति कहती है वह किए चले जाओ। तो दो मुख पैदा हो जाते हैं आदमी के भीतर। भीतर कुछ होता है, बाहर कुछ होता है। बाहर सभ्य और भीतर अपने पशु को कायम रखता है। या तो पाखंड पैदा होता है और अगर जिद्दी हो और कहे कि मैं तो पूरी तरह सभ्य होकर ही रहूंगा, तो फिर पागल होगा। और यह अगर जिद्दी दूसरा हो और वह कहे कि मैं तो कुछ भी न मानूंगा, मुझे तो जो सुखद लगता है वही करूंगा, जो प्रीतिकर लगता है वही करूंगा, तो वह पशु हो जाएगा। तो अब रास्ता क्या है इन तीन के पीछे?

ये तीनों ही बातें गलत हैं। मनुष्य के भीतर जो-जो वृत्तियां हैं वे दमन से नहीं शुभ की तरफ ले जाती हैं। उसकी मैंने बात की पीछे आपसे कि मनुष्य की वृत्तियों के दमन के दुष्परिणाम होते हैं। उससे वह सभ्य होता नहीं, सिर्फ सभ्य दिखाई पड़ता है। और इसलिए उसके मन में द्वंद्व पैदा हो जाता है।

मनुष्य की पूरी प्रकृति का रूपांतरण होना चाहिए, दमन नहीं।

बच्चे को यह मत सिखाइए कि तुम क्रोध मत करना, क्रोध बुरा है। बच्चे को वह मार्ग सिखाइए जहां से उसे शांति मिलनी शुरू हो जाए। अगर उसका चित्त शांत होगा तो वह क्रोध तो कर ही नहीं पाएगा। यह मत सिखाइए कि क्रोध मत करो, बल्कि यह सिखाइए पाजिटिवली, उस रास्ते पर ले जाइए विधायक रूप से जहां उसके चित्त में शांति का उदय हो। शांति का उदय सिखाइए, क्रोध न करने की बात मत सिखाइए।

सेक्स से बचाना है, काम से बचाना है, तो ब्रह्मचर्य के थोथे उपदेश मत सिखाइए। उससे उसका जीवन खतरनाक हो जाएगा और गलत हो जाएगा। उसका सारा जीवन नष्ट हो सकता है। और ब्रह्मचर्य ने जिन-जिन कौमों के मन को बहुत ज्यादा प्रभावित किया है, उनका सारा दांपत्य जीवन नष्ट हो गया और उनके भीतर इतनी ज्यादा कामुकता पैदा हो गई जिसका कोई हिसाब नहीं। वे कौमें चौबीस घंटे सेक्स के सिवाय कुछ भी नहीं सोच रही हैं। उनका सारा चिंतन वहीं केंद्रित हो गया। बातें वे भगवान की करते हैं, चिंतन वे सेक्स का करते हैं। करेंगे ही! क्योंकि ब्रह्मचर्य जीवन है और सेक्स नरक है, यह सिखाया जा रहा है। इसके दुष्परिणाम हुए हैं। दुष्परिणाम हो रहे हैं, दुष्परिणाम निरंतर होते रहे हैं।

नहीं, सेक्स से अगर बच्चे के जीवन को ऊपर ले जाना है तो उसे प्रेम सिखाइए, उसे ब्रह्मचर्य मत सिखाइए। जितना प्रेम विकसित होता है, सेक्स उतना ही विलीन हो जाता है। और हृदय जिस दिन पूरी तरह प्रेम से भर जाता है उस दिन कामुकता शून्य हो जाती है। क्योंकि सारी की सारी सेक्स की शक्ति प्रेम में

परिवर्तित होती है। प्रेम सिखाइए--पौधों से प्रेम सिखाइए, पत्थरों से प्रेम सिखाइए, पशुओं से प्रेम सिखाइए--बच्चे के हृदय को प्रेम से भरिए, वह जिसके पास जाए प्रेम से भरा हुआ जाए। उसके जीवन में अपने आप प्रेम के कारण ब्रह्मचर्य चला आएगा। वह ब्रह्मचर्य बहुत और बात है जो प्रेम से फलित होता है। और जो ब्रह्मचर्य सेक्स के दबाने से फलित होता है वह बिल्कुल दूसरी बात है। वह बहुत खतरनाक बीमारी है।

एक साध्वी के पास मैं था। मेरा चादर हवा में हिला और उनको छू गया। तो वे घबड़ा गईं, क्योंकि पुरुष का चादर साध्वी को नहीं छूना चाहिए। वे मुझसे आत्मा की बातें कर रही थीं और मुझसे कह रही थीं कि शरीर तो हम नहीं हैं, हम तो आत्मा हैं। तो मैंने उनसे कहा, मैं तो बहुत हैरान हो गया! आप तो कहती हैं कि आप शरीर नहीं हैं और चादर मेरा किसको छू रहा है, आपकी आत्मा को छू रहा है? और मैंने कहा कि मैं यह भी पूछना चाहूंगा, यह चादर पुरुष ने ओढ़ लिया तो यह चादर भी पुरुष हो गया?

यह तो हद दर्जे की सेक्सुअलिटी हो गई, यह तो हद दर्जे की कामुकता हो गई कि चादर भी पुरुष हो गया, चूंकि पुरुष ने ओढ़ लिया! इसको छूने से क्या घबड़ाहट हो रही है? घबड़ाहट यह हो रही है कि वह जो सेक्स दबाया गया है, वह दबाया गया सेक्स हमेशा धक्के मार रहा है। वह तो पुरुष का चादर भी छू जाए तो भी ऊपर आ जाएगा उठ कर। यह ब्रह्मचर्य नहीं हुआ। यह तो अत्यंत मानसिक रूप का व्यभिचार हुआ। और यही व्यभिचार चल रहा है ब्रह्मचर्य के नाम से।

ब्रह्मचर्य तो प्रेम से फलित होता है। जब हृदय परिपूर्ण प्रेम से भर जाता है तो ब्रह्मचर्य अपने आप फलित होता है। ब्रह्मचर्य की शिक्षा मत दीजिए; प्रेम सिखाइए। और फिर देखिए कि जीवन में कैसा रूपांतरण होता है।

मेरा कहना यह है कि हमारी सारी नैतिक शिक्षा गलत होने से मन दो हिस्सों में टूट जाता है। प्रकृति कहती है सेक्स और शिक्षा कहती है ब्रह्मचर्य। बस टूट हो गई, खतरा हो गया। अब जीवन कष्ट में पड़ेगा, दुविधा में पड़ेगा, खंड-खंड हो जाएगा, कांफ्लिक्ट पैदा होगी। और उसी में आदमी टूटता है और नष्ट होता है।

मैं कहता हूं कि प्रकृति का तो विरोध घातक है। प्रकृति का विरोध घातक है। प्रकृति का परिवर्तन, प्रकृति का ट्रांसफार्मेशन, प्रकृति का ऊर्ध्वगमन तो सहयोगी है। सेक्स की दुश्मनी में मत खड़े हो जाइए, प्रेम के पक्ष में जीवन को विकसित करिए। जितना प्रेम विकसित होगा, सेक्स की शक्ति प्रेम में अपने आप समाहित होती चली जाएगी। जिस दिन प्रेम पूरा हृदय में भर जाएगा, उस दिन उस हृदय में कामुकता अपने आप विलीन हो जाएगी। और किसी भांति से कामुकता विलीन नहीं होती। और सब भांति के उपाय असफल हुए हैं।

लेकिन ईमानदारी से चिंतन नहीं है, इसलिए थोथी बातों को भी हम दोहराए चले जाते हैं और उन पर कभी विचार भी नहीं करते। मन दो नहीं हैं, मन दो कर दिए गए हैं। मन एक ही होना चाहिए। और एक ही होने का यह मतलब नहीं है कि मन पशु हो जाए। नहीं, मनुष्य के भीतर जो पशुता जैसी मालूम होती है, उस एक ही मन को बिना खंडित किए विकसित किया जा सकता है। और वही पशुता जो है ठीक-ठीक विकसित हो तो दिव्यता में परिवर्तित हो जाती है।

तो यह मन का जो द्वैत है यह गलत शिक्षा, गलत संस्कृति, गलत सभ्यता, गलत धर्मों की शिक्षा का परिणाम है। और यह द्वैत तो होगा।

मैं एक घर में ठहरा था। गृहिणी ने मुझसे कहा, मैं अपने पति को बहुत प्रेम करती हूं, अथक प्रेम करती हूं, उन्हें परमात्मा ही की तरह मानती हूं। लेकिन फिर भी कलह हो जाती है, रोज कलह हो जाती है, छोटी-छोटी बात पर कलह हो जाती है। तो हैरानी होती है कि जिसको मैं परमात्मा की तरह मानती हूं, इतना प्रेम करती हूं, उससे छोटी-छोटी बात पर कलह क्यों हो जाती है? उसकी छोटी-छोटी आज्ञा मानना भी कठिन हो जाता है।

उसकी छोटी-छोटी इच्छा पर झुकना भी कठिन हो जाता है। मैं ही उसे उलटे झुकाने की कोशिश करती हूं। तो क्या कठिनाई है, मुझे कहें!

तो मैंने उनसे पूछा कि तुम्हारा सेक्स के प्रति क्या दृष्टिकोण है? बचपन से हम बच्चों को, बच्चियों को सिखा रहे हैं कि सेक्स गर्हित है, नरक है, पाप है, नरक का द्वार है, यह सिखा रहे हैं। छोटी बच्चियां, छोटे बच्चे यह सीख रहे हैं कि सेक्स पाप है, सेक्स नरक है, सेक्स से बुरा कुछ भी नहीं है, उसका विचार ही आना बुरा है, उसका खयाल ही आना बुरा है, इसको हम सिखा रहे हैं। फिर बीस वर्ष की लड़की हो गई इस भांति सीखी हुई, फिर उसका विवाह कर दिया। वे ही मां-बाप जिन्होंने सिखाया कि सेक्स पाप है वे ही उसका विवाह भी कराए। उन्होंने शोरगुल भी मचाया, बैंड-बाजे भी बजाए और उसका विवाह भी कर दिया। उन्हीं मां-बापों ने, उसी समाज ने, जिसने सिखाया कि सेक्स पाप है, उसने ही विवाह कर दिया। अब द्वंद्व शुरू होगा। जिसको आपने कहा कि पति हैं, इनको परमात्मा मानना, इनको वह परमात्मा कैसे मानेगी? क्योंकि इनसे उसका संबंध जो होगा वह तो सेक्स का होगा, और सेक्स से बड़ी पाप जैसी कोई चीज नहीं, तो ये परमात्मा कैसे हो सकते हैं? यह पति परमात्मा हो कैसे सकता है? इसका संबंध तो सेक्स का है।

इसलिए पत्नी की बहुत गहरी दृष्टि में पति से पतित और कोई व्यक्ति होता ही नहीं है। हो भी नहीं सकता है। इसलिए वह एक ऐरे-गैरे साधु-संन्यासी के पैर छू सकती है, पति के नहीं। छूती है तो परवश है, लेकिन जानती है भीतर से कि कैसा नीचा आदमी, कैसा निम्न आदमी!

वही पति भी जानता है कि पत्नी नरक का द्वार है। ये साधु-संन्यासी सिखा गए हैं कि नरक का द्वार है, यही तो तुमको लिए जा रही है नरक में।

एक स्त्री, एक महिला मुझसे रास्ते में पूछती थीं ट्रेन में कि मुझे यह बताइए कि स्त्री पर्याय से मुक्ति कैसे मिले?

यह बेवकूफों ने सिखाया हुआ है कि स्त्री पर्याय से मोक्ष नहीं हो सकता। जैसे मोक्ष भी यह देखता है--देह--और नाप-जोख रखता है कि कौन पुरुष, कौन स्त्री।

यह पुरुषों ने सिखाया है स्त्रियों को। और अगर स्त्रियां नरक के द्वार हैं तो फिर स्त्रियां तो अब तक नरक गई ही नहीं होंगी। क्योंकि उनके लिए अगर पुरुष द्वार न हो तो वे नरक कैसे जाएंगी? अगर स्त्रियां किताबें लिखतीं तो वे लिखतीं◌ः पुरुष नरक के द्वार हैं। वे दोनों एक-दूसरे को नरक के द्वार बने हुए हैं, क्योंकि सेक्स की मन में निंदा है।

सेक्स का मन में सम्मान होना चाहिए, निंदा नहीं। सेक्स के प्रति प्रकृतिस्थ स्वस्थ दृष्टिकोण होना चाहिए। जानना चाहिए कि वह जीवन की अत्यंत अनिवार्यता है। और जानना चाहिए कि सारी प्रकृति उस पर खड़ी है, सारा विराट सृजन उस पर खड़ा हुआ है। सेक्स से बड़ी शक्ति नहीं, सेक्स से बड़ी फोर्स नहीं, उसी पर तो सारा खेल है। फूल इसलिए खिलते हैं, वृक्ष इसलिए खिलते हैं, पक्षी इसलिए गीत गाते हैं, बच्चे इसलिए पैदा होते हैं। सारी दुनिया में जो भी क्रिएटिविटी है वह सब बुनियाद में सेक्स से संबंधित है। तो उस सेक्स को निंदित करके तो सब गड़बड़ हो जाएगा।

नहीं, उसकी निंदा की जरूरत नहीं, उसके स्वीकार की जरूरत है। और स्वीकार के द्वारा उसको और कितना विकसित किया जा सकता है, इस दिशा में परिवर्तन, ऊर्ध्वगमन की जरूरत है। सेक्स जरूर एक दिन परिवर्तित होकर ब्रह्मचर्य बन सकता है। लेकिन सेक्स के विरोध में लड़ कर नहीं, वरन सेक्स के प्रति अत्यंत सम्मान, अत्यंत सहृदयता, अत्यंत सहजता, अत्यंत मैत्रीपूर्वक उस शक्ति को परिवर्तित किया जा सकता है। और

मार्ग है कि प्रेम विकसित हो। मार्ग है कि प्रेम विकसित हो, तो सेक्स अपने आप, अपने आप गतिमय होता है। जैसे कि पानी को बहाव देना हो, हम एक नाली बना दें तो पानी उससे बहने लगता है और नाली न हो तो फिर पानी कहीं भी बह जाता है। प्रेम की नाली अगर भीतर चित्त में निर्मित हो तो सेक्स की सारी की सारी एनर्जी प्रेम में परिवर्तित होती है और बहती है।

लेकिन हमारी सारी शिक्षा भूल से भरी है, सारी संस्कृति भूल से भरी है। और इसलिए मनुष्य का चित्त रुग्ण से रुग्ण होता चला गया है।

उस पर और ज्यादा तो फिलहाल मैं अभी नहीं कह सकूंगा। इधर कुछ मित्र सोचते हैं कि एक पूरा का पूरा कैंप ब्रह्मचर्य पर हो। मैं भी सोचता हूं कि यह हो सकता है और होना चाहिए।

अंतिम रूप से, अब प्रश्न तो नहीं लूंगा, छोटी सी कहानी कहूंगा, वह विदा के समय।

एक छोटी सी कहानी मुझे यह कहनी है, अभी आ रहा था तो मुझे खयाल आया।

एक राजा हुआ, उसने दूर-दूर खबर की कि जो भी धर्म श्रेष्ठ होगा उसे मैं स्वीकार करूंगा। अनेक-अनेक पंडित आए, समझाते थे कि हमारा धर्म श्रेष्ठ है, दूसरा पंडित समझाता कि हमारा धर्म श्रेष्ठ है। वे विवाद भी करते, एक-दूसरे को हराने और पराजित करने की कोशिश भी करते। लेकिन राजा के सामने कुछ सिद्ध न हो पाया कि कौन धर्म चरम धर्म है, कौन सर्वोत्कृष्ट धर्म है। और जब यही सिद्ध न हुआ तो राजा अधर्म के जीवन में जीता रहा। उसने कहा, जिस दिन सर्वश्रेष्ठ धर्म उपलब्ध हो जाएगा उस दिन मैं धर्म का अनुसरण करूंगा। जब तक सर्वश्रेष्ठ धर्म का पता ही नहीं है तो मैं कैसे जीवन को छोड़ूं और बदलूं! तो जीवन तो वह अधर्म में जीता रहा, लेकिन सर्वश्रेष्ठ धर्म की खोज में पंडितों के विवाद सुनता रहा। सभी धर्मों के लोग आए। और किसी भी धर्म का आदमी आया, उसने कहा, मेरा धर्म श्रेष्ठ है, दूसरों के नीचे हैं। राजा उनकी दलीलें सुनता; दूसरों को आमंत्रित करता, उनकी दलीलें सुनता। ऐसे जीवन बीता। जीवन तो है छोटा और दलीलें तो हैं बड़ी। तो दलीलों में तो जीवन बिल्कुल बीत ही सकता है, कोई कठिनाई नहीं है।

फिर तो राजा बूढ़ा होने लगा और घबड़ा गया कि अब क्या होगा? अधर्म का जीवन दुख देने लगा, पीड़ा लाने लगा। लेकिन जब श्रेष्ठ धर्म ही न मिले तो वह चले भी कैसे धर्म की राह पर? अंततः एक भिखारी उसके द्वार पर आया और उस भिखारी ने कहा कि मैंने सुना है कि तुम पीड़ित हो और परेशान हो। तुम्हारे चेहरे से भी दिखाई पड़ता है।

उस राजा ने कहा, मैं सर्वश्रेष्ठ धर्म की खोज में हूं।

भिखारी ने कहा, सर्वश्रेष्ठ धर्म? क्या बहुत धर्म होते हैं दुनिया में कि उसमें कोई श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ का भी सवाल उठे? धर्म तो एक है। कोई धर्म बुरा और कोई धर्म अच्छा, यह तो होता ही नहीं, तो सर्वश्रेष्ठ का कोई सवाल नहीं।

राजा बोला, लेकिन मेरे पास तो जितने लोग आए उन्होंने कहा, हमारा धर्म श्रेष्ठ है।

उस फकीर ने कहा, जरूर उन्होंने धर्म के नाम से, मैं श्रेष्ठ हूं, यही कहा होगा। उनका अहंकार बोला होगा। धर्म तो एक है, अहंकार अनेक हैं। राजा से उसने कहा कि जब भी कोई पंथ से बोलता है या किसी धर्म से बोलता है, तो समझ लेना कि वह धर्म के पक्ष में नहीं बोल रहा, अपने पक्ष में बोल रहा है। और जहां पक्ष है, जहां पंथ है, वहां धर्म नहीं होता। धर्म तो वहीं होता है जहां व्यक्ति निष्पक्ष होता है। पक्षपाती मन में धर्म नहीं हो सकता।

राजा प्रभावित हुआ। उसने कहा, तो फिर तुम मुझे बताओ मैं क्या करूं?

उस फकीर ने कहा कि आओ नदी के पार चलें, वहां मैं बताऊंगा। वे नदी के किनारे गए। उस फकीर ने कहा कि जो सर्वश्रेष्ठ नाव हो तुम्हारे राजधानी की वह बुलाओ, तो उसमें बैठ कर उस तरफ चलें। राजा ने कहा, यह बिल्कुल ठीक। राजा जाए तो सर्वश्रेष्ठ नाव आनी चाहिए। बीस-पच्चीस जो अच्छी से अच्छी नावें थीं वे बुलाई गईं। सुबह वे गए थे, दोपहर इसी में हो गई, सब नावें इकट्ठी हुईं। अब वे घाट के किनारे भूखे बैठे हुए हैं। और वह फकीर भी अजीब था, एक-एक नाव में दोष निकालने लगा कि इसमें यह खराबी है, इसमें यह दाग लगा हुआ है, यह तो आपके बैठने योग्य नहीं है। इसमें मैं कैसे बैठ सकता हूं, यह तो बहुत छोटी है।

राजा भी थक गया, सांझ हो गई, सूरज डूबने लगा। राजा ने कहा, क्या बकवास लगा रखी है! नाव कोई भी काम दे सकती है। और अगर नाव कोई भी पसंद नहीं पड़ती तो नदी भी कोई भारी नहीं, चलो हम तैर कर ही निकल चलें। छोटी सी नदी है, अभी कभी के उस तरफ पहुंच गए होते।

फकीर जैसे इसकी प्रतीक्षा में ही था, उसने कहा, मैं इसी की प्रतीक्षा में था। तुम्हें जीवन में यह खयाल नहीं आया कि धर्मों की प्रतीक्षा क्यों कर रहे हो, तैर कर भी निकला जा सकता है। और सच तो यह है कि धर्म की कोई नाव नहीं होती। व्यक्तिगत रूप से ही तैरना पड़ता है। धर्म की कोई नाव नहीं होती। ...